गांधी-साहित्य---९

आत्म-संयम

ब्रह्मचर्यके लाभ तथा भोगकी हानियों पर
महात्मा गांधीके लेखोंका संग्रह

१९५४

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

'नवजीवन ट्रस्ट', अहमदाबादकी सहमतिसे

पहली बार : १९५४

मूल्य

तीन रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशककी ओरसे

इस पुस्तकमे गाधीजीके उन लेखोका सग्रह किया गया है, जिनमे उन्होंने ब्रह्मचर्यके लाभ और भोगकी हानियोपर प्रकाश डाला है। इसमे ३ पुस्तके सम्मिलित है, जो पाठकोके लिए उपयोगिताकी दृष्टिसे अलग-अलग भी छापी गई है: १. अनीतिकी राहपर २. ब्रह्मचर्य—१ ३. ब्रह्मचर्य—२. सन् १९३५ तकके लेख पहलीमे आ गये है, १९३६से १९३८ तकके दूसरीमे और १९३८के बादसे अतिम समय तकके तीसरीमे। इस प्रकार इस समूची पुस्तकमे ब्रह्मचर्य-विषयक गाधीजीके लगभग सभी लेख आ गये है।

विषय और सामग्रीके विचारसे पुस्तक स्थायी महत्वकी है। आशा है, पाठक उसके अध्ययन तथा तदनुसार आचरणसे लाभ उठावेगे।

—मंत्री

विषय-सूची

अनीतिकी राहपर

अनीतिकी राहपर

: १ :

नीतिनाशकी ओर

कृपालु मित्र मुझे भारतीय पत्रोंके ऐसे लेखोकी कतरने भेजा करते है जिनमे गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोसे काम लेकर सन्तति-नियमनके विचारका समर्थन होता है। युवकोके साथ उनके वैयक्तिक जीवनके विषयमे मेरा पत्र-व्यवहार दिन-दिन बढता जा रहा है। मुझे पत्र लिखनेवाले भाई जो सवाल उठाते है उनके बहुत ही छोटे भागकी चर्चा मै इन पृष्ठोमे कर सकता हू। अमरीकावासी मित्र भी इस विषयके लेख, पुस्तके मेरे पास भेजते है। और कुछ तो गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोके उपयोगका विरोध करनेके कारण मुझपर खफा भी है। उन्हे यह देखकर दुःख होता है कि अन्य अनेक विषयोमे तो मै बहुत आगे बढा हुआ सुधारक हू, पर सतति-नियमनके विषयमे मेरे विचार मध्य युगके है। मै यह भी देखता हू कि गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोसे काम लेनेके हिमायतियोमे कुछ ऐसे स्त्रीपुरुष भी है जिनकी गणना दुनियाके बडे-से-बडे विचारशील जनोमे है।

अत. मैने सोचा कि कृत्रिम साधनोसे काम लेनेके पक्षमे कोई बहुत ही पक्की दलील होनी चाहिए, और यह भी सोचा कि अबतक इस विषयपर जो-कुछ मैने कहा है उससे मुझे कुछ अधिक कहना चाहिए। मै इस प्रश्नपर और इस विषयका साहित्य पढनेके बारेमे विचार कर ही रहा था कि 'नीतिनाशकी ओर' ('टुवर्ड्स मॉरल बैकरप्सी') नामकी पुस्तक मुझे पढनेको दी गई। इस पुस्तकमे इसी विषयका विवेचन है और मेरी समझमे

वह शुद्ध शास्त्रीय रीतिसे किया गया है । मूल पुस्तक फरासीसी भाषामे श्रीपाल ब्यूरोने लिखी है, जिसके नामका शाब्दिक अर्थ 'नैतिक अराजकता' होता है । अग्रेजी उलथा कान्स्टेबल एड कपनीने प्रकाशित किया है और उसकी प्रस्तावना डाक्टर मेरी स्कारली सी० वी० ई०, एम० डी० ने लिखी है। उसमे ५३८ पृष्ठ और १५ अध्याय है ।

पुस्तक पढ जानेके वाद मैंने सोचा कि लेखकके विचारोका साराश करनेसे पहले विपयके प्रति न्याय करनेकी खातिर कृत्रिम साधनोसे काम लेनेके पक्षका पोषण करनेवाली प्रमाणभूत पुस्तके मुझे अवश्य पढ लेनी चाहिए । अत मैंने भारतसेवक-समितिसे अनुरोध किया कि इस विषयका जो साहित्य उसके पास हो वह मुझे थोडे दिनोके लिए मॅगनी देनेकी कृपा करे । समितिने कृपा कर अपने सग्रहकी कुछ पुस्तके भेज दी । काका कालेलकरने, जो इस विपयका अध्ययन कर रहे है, हैवलॉक एलिसके ग्रथके इस विषयका विवेचन करनेवाले खड दिये, और एक मित्रने 'प्रैक्टिशनर' पत्रका विशेषाक भेजा जिसमे कुछ सुप्रसिद्ध चिकित्सकोकी वहुमूल्य सम्मतिया सगृहीत है ।

इस साहित्य-सग्रहका उद्देश्य यह था कि श्री ब्यूरोके निष्कर्षोकी परख, जहा तक एक चिकित्साशास्त्रका ज्ञान न रखनेवाला साधारण मनुष्य कर सकता है, कर ले । यह वात अक्सर देखनेमे आती है कि जव शास्त्र-विशेषके पडित किसी प्रश्नपर वहस करते है तव भी उसके दो पक्ष होते है और दोनोके पोषणमे वहुत-कुछ कहा जा सकता है । अत मैं चाहता था कि श्री ब्यूरोकी पुस्तक पाठकोंके सामने रखनेके पहले गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोके समर्थकोका दृष्टिकोण समझ लूँ । अव मेरी पक्की राय है कि कम-से-कम हिन्दुस्तानमे तो कृत्रिम साधनोके उपयोगकी आवश्यकता सिद्ध नही की जा सकती । जो लोग भारतमे उनके उपयोगका समर्थन करते है वे या तो यहाकी हालत नही जानते या जान-बूझकर उसकी ओरसे आखे मूद लेते है । पर अगर यह वात सावित कर दी जाय कि उपदिष्ट उपाय पश्चिममे भी हानिकर सिद्ध हो रहे है तो भारतकी विशेष परिस्थितिकी छान-बीन करनेकी आवश्यकता ही नही रहती ।

अनीतिकी राहपर : नीतिनाशकी ओर

अत. अब हम यह देखे कि श्री ब्यूरो कहते क्या है। उन्होने केवल फ्रासकी स्थिति पर विचार किया है। पर फ्रास कोई छोटी चीज नही। दुनियाके जो देश सबसे आगे बढे हुए है उनमे उसकी गणना है। ऊपर बताए हुए साधन जब वहा विफल हो गये तब अन्यत्र उनके सफल होनेकी आशा नही रखी जा सकती।

विफलताके अर्थके विषयमे मतभेद हो सकता है। अत यहा मै किस अर्थमे उसका व्यवहार कर रहा हू यह मुझे बता देना चाहिए। अगर हम यह दिखा सके कि इन साधनोके व्यवहारसे नीतिके बधन ढीले हुए है, व्यभिचार बढा है और जहा केवल स्वास्थ्य-रक्षा तथा आर्थिक दृष्टिसे कुटुम्बका अति विस्तार न होने देनेके उद्देश्यसे स्त्री-पुरुषोको उनसे काम लेना चाहिए था वहा मुख्यत भोग-वासनाकी तृप्तिके लिए उनका व्यवहार हो रहा है, तो मानना होगा कि उनका विफल होना साबित कर दिया गया। यही मध्यमा वृत्ति है। चरम नैतिक दृष्टि तो प्रत्येक परिस्थितिमे गर्भ-निरोधके साधनोके उपयोगका निषेध करती है। उस पक्षकी दलील तो यह है कि स्त्री-पुरुषका सयोग तभी जायज है जब उसका प्रयोजन सन्तानोत्पादन हो, उस हेतुके बिना उनका काम-वासनाकी तृप्ति करना सर्वथा अनावश्यक है, वैसे ही जैसे शरीर-रक्षाको छोडकर और किसी उद्देश्यसे उनका भोजन करना आवश्यक नही होता। एक तीसरा पक्ष भी है। यह ऐसे लोगोका वर्ग है जिनका कहना है कि दुनियामे नीति नामकी कोई चीज है ही नही, और है तो उसका अर्थ विषय-वासनाका सयम नही बल्कि हर तरहकी भोग-वासनाकी पूर्ण तृप्ति है, हा, इतना ध्यान रहे कि उससे हमारा स्वास्थ्य इतना न बिगड जाय कि हम वासनाओकी तृप्तिके, जो हमारे जीवनका उद्देश्य है, काबिल ही न रह जाय। मै समझता हू कि श्री ब्यूरोने ऐसे अतिवादियोंके लिए अपनी पुस्तक नही लिखी है। कारण यह कि उन्होने उसकी समाप्ति टाममानके इस वचनसे की है—

"भविष्यका मैदान उन्ही जातियोके हाथ है जो सदाचारिणी है।"

२ : अविवाहितोंमें नीतिभ्रष्टता

अपनी पुस्तकके पहले भागमे श्री ब्यूरोने ऐसे तथ्य इकट्ठे किये है जिन्हे पढकर चित्तको अतिशय खेद होता है। उनसे प्रकट होता है कि फ्रासमे कैसे विशाल सघटन खडे हो गये है जिनका काम केवल मनुष्यकी अधम वासनाओकी तृप्तिके साधन जुटा देना है। गर्भ-निरोधके कृत्रिम उपायोके समर्थकोका सबसे बडा दावा यह है कि उनके इस्तेमालसे गर्भपात-का पाप बद हो जायगा। पर यह भी टिक नही सकता। श्री ब्यूरो कहते है—"फ्रासमे इधर २५ बरससे गर्भ-निरोधके उपायोका विशेष रूपसे प्रचार रहा है। पर अपराधरूप गर्भपातोकी सख्या कम न हुई।" श्री ब्यूरोकी रायमे उनकी तादाद उलटे और बढी है। उनका अदाजा है कि वहाँ हर साल २॥ से ३। लाख तक गर्भपात होते है। कुछ बरस पहले लोकमत उनके समाचार सुनकर काप उठता था, अब यह बात भी नही रही।

श्री ब्यूरो लिखते है—"गर्भपातके पीछे-पीछे बाल-हत्या, कुल-कुटुम्बके भीतर व्यभिचार और प्रकृति-विरुद्ध पापोकी पात पहुचती है। बाल-हत्याके बारेमे तो इतना ही कहना है कि अविवाहिता माताओके लिए सब तरहके सुभीते कर दिये गए है, और गर्भ-निरोधके साधनोका उपयोग और गर्भपात बढ गया है, फिर भी यह पाप घटनेके बदले और बढा ही है। सभ्य प्रतिष्ठित कहलानेवाले लोग अब उसे वैसी नफरतकी निगाहसे भी नही देखते, और मुकदमोमें जूरी आम तौरसे अभियुक्तको 'निरपराध' ही ठहराया करते है।"

गदे, अश्लील साहित्यकी वृद्धिपर श्री ब्यूरोने एक पूरा अध्याय लिख डाला है। उसकी व्याख्या वह इस प्रकार करते है—"साहित्य, नाटक और चलचित्र मनुष्यके थके मनको विश्राति देने और फिर तरो-ताजा कर देनेके जो साधन उसे दे रहे है उनका काम-वासनाको जगाने, भडकाने या दूसरे गन्दे उद्देश्यकी पूर्तिके लिए दुरुपयोग करना।" वह कहते है—"इस साहित्यकी हरएक शाखाकी जितनी खपत हो रही है उसका कुछ अदाजा इस बातसे किया जा सकता है कि इस धधेको चलानेवाले कैसे चतुर-

चूड़ामणि है, उनका सघटन कितना बढिया है, कितनी विशाल पूजी इस कारबारमे लगा दी गई है और उसे चलानेके तरीके सर्वांगपूर्णतामे कैसे बेजोड़ है।" "इस साहित्यका मनुष्योके मनपर इतना जबर्दस्त और ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा है कि व्यक्तिका सारा मानस जीवन उसके रगसे रग गया है और एक प्रकारके गौण काम जीवनका निर्माण हो गया है जिसका अस्तित्व सर्वांशमे उसकी कल्पनामे ही होता है।"

अनन्तर श्री ब्यूरो श्री रूइसाका यह करुणा-जनक पैराग्राफ उद्धृत करते है—

"यह सारा अश्लील और कामज क्रूरतासे भरा साहित्य अगणित मनुष्योके लिए अति प्रबल प्रलोभनकी वस्तु बन रहा है, ओर इस साहित्यकी जबर्दस्त खपत असदिग्धरूपमे बताती है कि कल्पनामे दूसरे काम-जीवनका निर्माण कर लेनेवालोकी सख्या लाखो तक पहुचती है। जो लोग इसकी बदौलत पागलखानोमे पहुँच गये है उनका तो जिक्र ही क्या; खासकर आजके-से समयमे जब अखबारो और पुस्तकोका दुरुपयोग सब ओर उन अन्त करणोकी सृष्टि कर रहे है, जिन्हे डब्लू जेम्स 'अन्तर्जगत्‌की अनेकता' कहते है और जिसमे विचरण कर हर आदमी वर्तमान जीवनके कर्त्तव्योको भूल सकता है।"

याद रहे, ये सारे घातक परिणाम एक ही मूलगत भ्रमके कुफल है। वह यह है कि विषय-भोग, सन्तानकी इच्छाके बिना भी मानव-प्रकृतिके लिए आवश्यक है और उसके बिना पुरुष हो या स्त्री किसीका भी पूर्ण विकास नही हो सकता। ज्यो ही यह भ्रम दिमागमे घुसा और मनुष्य जिसे बुराई समझता था उसे भलाईके रूपमे देखने लगा कि फिर वह विषय-वासनाको जगाने और उसकी तृप्तिमे सहायक होनेके नित नये उपाय ढूढने लगता है।

इसके बाद श्री ब्यूरोने प्रमाण देकर दिखाया है कि आजके दैनिकपत्र, मासिक, परचे, उपन्यास, चित्र और नाटक-सिनेमा किस तरह इस हीन रुचिको दिन-दिन अधिकाधिक भडका और उसकी तृप्तिकी सामग्री जुटा रहे है।

३ : विवाहितोंमें नीति-भ्रष्टता

अबतक तो अविवाहित जनोके नीति-नाशकी कथा कही गई है। इसके वाद श्री ब्यूरो यह दिखाते है कि विवाहित जनोकी नीति-भ्रष्टता किस हद तक पहुच रही है। वह कहते है—"अमीर, मध्यवित्त और कृपक वर्गोमे बहुसख्यक विवाह वडप्पन दिखाने या धन-सपत्ति पानेके लिए किये जाते है।" वहुतसे व्याह अच्छा ओहदा पाने, दो जायदादो, खासकर जमीदारियोके मालिक वनने, नाजायज सम्बन्धको जायज वनाने, अवैध सन्तानको वैध वनवाने, बुढापे और गठियेकी बीमारीके समय कोई मनसे सेवा-टहल करनेवाला हो इसका उपाय करने और सेनामे अनिवार्य भरतीके समय कौन-सी छावनी पसन्द करे यह तै कर सकनेके लिए भी किये जाते है। कुछ व्याह व्यभिचारके जीवनसे ऊवकर दूसरे प्रकारका थोडा सयमवाला भोग-जीवन प्राप्त करनेके उद्देश्यसे भी किये जाते है।

इसके वाद श्री व्यूरोने उदाहरण और आकडे देकर सिद्ध किया है कि इन व्याहोसे व्यभिचार घटनेके वदले वस्तुत और बढता है। पत्नीके उन तथोक्त वैज्ञानिक साधनोने, जो सयोगमे वाधक न होते हुए उसके फलसे वचनेके लिए वनाये गये है, इस पतनको जवर्दस्त मदद पहुचाई है। पुस्तकके उस दु खद भागको तो मै छोड देता हू जिसमे व्यभिचार-वृद्धिका विवरण और अदालतकी डिगरीसे होनेवाले पतिपत्नी-विलगाव और तलाकोके चौंकानेवाले ऑकडे दिए गये है। इन विलगावो और तलाकोकी सख्या पिछले वीस वरसके अदर दूनीसे अधिक हो गई है। "स्त्री-पुरुप दोनोके लिए समान नैतिक मानदड होना चाहिए" इस सिद्वातके नामपर स्त्रीको जो भोग-वासनाकीमनमानी तृप्तिकी स्वतत्रता दे दी गई है उसकी भी मै चलती चर्चा भर कर सकता हू। गर्भाधान न होने देनेकी क्रियाओ और गर्भपात करानेके उपायोके पूर्णता प्राप्त कर लेनेसे स्त्री-पुरुष दोनोको नैतिक वधनोने पूर्ण मुक्ति मिल गई है। ऐसी दगामे अगर खुद व्याहका ही मजाक उडाया जा रहा है तो इसमे किसीको अचरज-अचभा न होना चाहिए। ब्यूरोने एक लोकप्रिय लेखकके कुछ वाक्य उद्धृत किये है। उनका आशय

यह है—"मेरे विचारसे ब्याह उन बडे-से-बडे जगली रिवाजोमे से एक है जिन्हे आदमीका दिमाग अबतक सोच सका है। मुझे इस बातमे तनिक शक-शुबहा नही कि मानव-समाज अगर न्याय और विवेककी ओर कुछ भी बढा तो यह प्रथा दफना दी जायगी।....पर पुरुष इतना मट्ठर और स्त्री इतनी कायर है कि जो कानून उनका शासन कर रहा है उससे अच्छे ऊचे कानूनकी माँग करनेकी हिम्मत वे नही कर सकते।"

श्री ब्यूरोने जिन क्रियाओकी चर्चा की है उनके नतीजो और जिन सिद्धातोसे उन क्रियाओका समर्थन किया जाता है उनकी उन्होने बडी बारीकीसे समीक्षा की है। वह कहते है—"यह नीति-बधन तोड फैकनेका आदोलन हमे नई भवितव्यताओकी ओर खीचे लिये जा रहा है। पर वे है क्या? जो भविष्य हमारे आगे आ रहा है वह क्या प्रगति, प्रकाशन-सौन्दर्य और उत्तरोत्तर बढनेवाले अध्यात्म-भावका होगा? या पीछे लोटने, अधकार, कुरूपता और पशुभावका होगा जिसकी भूख दिन-दिन बढती जा रही है? यह नैतिक स्वच्छदता जिसकी स्थापना की गई है क्या दकियानूसी नियमोके विरुद्ध किये जानेवाले उन फलजनक विद्रोहो, हितकर विप्लवोमेसे है जिन्हे आनेवाली पीढिया कृतज्ञताके साथ याद किया करती है, इसलिए, कि उनकी प्रगति उनके उत्थानके लिए विशेष कालोमे अनिवार्य हो जाती है? अथवा वह मानव-मनकी वही आदिम वृत्ति है, जिसकी विरासत उसे अपने आदि पुरुष बाबा आदम[1]से मिली है—जो उन नियमोके विरुद्ध विद्रोह किया करती है जिनकी कठोरता ही उसे इस योग्य बनाती है कि वह अपनी पाशव प्रेरणाओके हमलोके सामने टिक सके?

---

[1]आदम और हौवाको ईश्वरने अदनके बागमे रखा और मालीका काम सौंपा था। उन्हे बगीचेके सब पेड़ोके फल खानेकी इजाज़त थी; पर एक ज्ञान-वृक्षका फल खानेकी मनाही थी। आदमने इस निषेधका उल्लंघन कर ज्ञान-वृक्षका फल चख लिया और इस पापके दंड-स्वरूप अदनके उद्यानसे निकाल दिये गए और देवत्त्व तथा अमरत्त्वसे वंचित होकर मृत्युधर्मा हुए।—अनु०

समाजकी रक्षा और जीवनके लिए आवश्यक नियम-बधनके विरुद्ध यह विनाशकारी विद्रोह तो नही है ?" इसके बाद वह यह साबित करनेके लिए जबर्दस्त सबूत पेश करते है कि इस विद्रोहका फल हर लिहाजसे सत्यानासी हुआ है। वह खुद जीवनकी ही जड काट रहा है।

विवाहित स्त्री-पुरुषोका अपनी वासनाओको अकुशमे रखकर जरूरतसे ज्यादा बच्चे न पैदा करनेका यथासभव यत्न करना एक बात है और मनमाना भोग करते हुए उसके फलसे बचनेके उपायोकी मदद लेकर सन्तति-नियमन करना बिलकुल दूसरी बात है। पहली सूरतमे मनुष्यको सभी प्रकारसे लाभ है और दूसरीमे हानिके सिवा और कुछ हाथ नही लगेगा। श्री ब्यूरोने आकडे और नक्शे देकर दिखाया है कि काम-वासनाकी मनमानी तृप्ति करते हुए भी उसके स्वाभाविक फलोसे बचनेकी गरजसे गर्भ-निरोधक साधनोका उपयोग दिन-दिन बढ रहा है। उसका फल यह हुआ है कि अकेले पेरिसमे ही नही, समूचे फ्रासमे जन्म-सख्या मृत्यु-सख्याकी तुलनामे बहुत घट गई है। फ्रास जिन ८७ प्रदेशोमे बटा हुआ है उनमेसे ६८मे जन्मकी सख्या मृत्युकी सख्यासे नीची है। लोते-गारोमे १६२ मौतोके मुकाबलेमे १०० जन्म होते है। इसके बाद तानें-गारोका नबर है। वहा १५६ मौतोपर १०० जन्मोका औसत रहता है। जिन १९ प्रदेशोमे जन्म-सख्या मृत्यु-सख्या-से ऊची है उनमे से भी कईमे तो यह अन्तर महज नामका है। केवल दस ही रकबे ऐसे है जहा मृत्यु-सख्यासे जन्म-सख्याकी अधिकता कहने लायक हो। मोरव्या और पास-दे-कैलेमे मृत्यु-सख्या सबसे कम है—१०० जन्म पीछे ७२। श्री ब्यूरो हमे बताते है कि आबादी घटनेका यह क्रम जिसे वह 'मागी हुई मौत' कहते है। अभी तक चल ही रहा है।

अनन्तर श्री ब्यूरो फ्रासके सूबोकी हालतकी तफसीलसे जाच-पडताल करते है और १९१४मे नारमडीके बारेमें लिखी हुई श्री जीदकी पुस्तकसे नीचे लिखा पैराग्राफ उद्धृत करते है—"५० बरसके अदर नारमडीकी आबादी ३ लाखसे अधिक घट चुकी है। यानी उसकी जन-सख्यामे उतनेकी कमी हो चुकी जितनी समूचे ओर्न जिलेकी आबादी है। हर २० सालमे वह एक जिलेकी जितनी आबादी गवा देता है और चूकि उसमें कुल पाच

जिले है इसलिए सौ सालमे ही उसके हरे भरे मैदान फ्रेच जनोसे बिलकुल खाली हो जायगे। 'फ्रेच जन' शब्दका व्यवहार मै जान-बूझकर कर रहा हू, क्योकि निश्चय ही दूसरे लोग आकर उनपर कब्जा जमा लेगे। और ऐसा न हुआ तो यह बडे दु.खकी बात होगी। जर्मन आस-पासकी खानोको खोद रहे है और अभी कल ही पहली बार चीनी मजदूरोका अग्रगामी दस्ता उस जगह उतरा है जहासे विजयी विलियम[1]का जहाज इग्लैड-विजयके लिए रवाना हुआ था।" इस पैराग्राफकी आलोचनामे श्री ब्यूरो कहते है—"अन्य अनेक प्रात है जिनकी दशा इससे कुछ अच्छी नही।"

इसके बाद श्री ब्यूरो यह लिखते है कि जनसख्याके इस ह्राससे राष्ट्रकी शक्ति भी घटती जा रही है। उनका विश्वास है कि फ्रासमे जो दूसरे देशोमे जाकर लोगोका बसना बद हो गया है उसका कारण भी यही है। फ्रासके औपनिवेशिक साम्राज्य, व्यापार, फ्रेच भाषा और सस्कृति इन सबके ह्रासका कारण भी वह इसीको मानते है।"

अनन्तर वह पूछते है—"क्या सयत सहवासके पुराने रास्तेको छोड देनेवाले फ्रेचजन सुख, समृद्धि, स्वास्थ्य और मन सस्कारमे आज अधिक आगे है?" इस प्रश्नका उत्तर वह यो देते है—"स्वास्थ्यकी उन्नतिके विषयमे तो दो-चार शब्द कह देना ही काफी होगा। हम कितना ही चाहते हो कि सब एतराजोका एक सिरेसे जवाब दे दे, इस दलीलपर सजीदगीके साथ विचार करना कठिन है कि भोगकी घूटसे किसीका शरीर अधिक सबल ओर स्वास्थ्य अधिक अच्छा हो सकता है। हर तरफसे यही रोना सुनाई दे रहा है कि नौजवान और प्रौढ सभी पहलेसे निर्बल हो रहे है। (प्रथम) महायुद्धसे पहले सैनिक अधिकारियोको रगरूटोकी शारीरिक योग्यताका मानदड बार बार नीचा करना पडता था, और सारे देशमें लोगोकी कष्ट-सहनकी शक्ति काफी घट गई है। अवश्य यह कहना अन्याय होगा कि केवल सयमका अभाव ही इस सारी गिरावटका कारण है।

---

[1]नार्मंडीका ड्यूक—१०६६ से १०८७ ई० तक इंग्लैडपर राज्य किया। (जन्म १०२७, मृत्यु १०८७ ई०)

पर वह और उसके साथ-साथ शराबखोरी, और घर-द्वारकी गदगी आदि मिलकर इसका बहुत बडा कारण बन रहे है। और हम जरा बारीक निगाहसे काम ले तो सहज ही देख सकते है कि असयम और उसके पोषक मनोभाव इन दूसरी बुराइयोके सबसे बडे सहायक है। . जननेन्द्रियके रोगो—गरमी, सूजाक आदिकी भयानक बाढने जन-स्वास्थ्यकी जो हानि की है उसका तो अदाजा ही नही लगाया जा सकता।"

श्री ब्यूरो नव्य माल्थ्यूसियन सिद्धात—कृत्रिम साधनोसे गर्भ-निरोधके समर्थकोकी इस दलीलको भी अस्वीकार करते है कि जन्म-सख्या अथवा सन्तानोत्पादनका नियमन करनेवाले समाजमे व्यक्तियोका धन उसके नियमनकी मात्राके हिसाबसे बढता जाता है। अपने उत्तरकी पुष्टि वह फ्रासकी स्थितिकी जर्मनीके साथ तुलना करके देते है। जर्मनीमे बच्चोकी पैदाइश बढ रही है, और साथ-साथ राष्ट्रकी समृद्धि भी दिन-दिन बढती जा रही है। पर फ्रासमे जन्म-सख्याके साथ-साथ देशकी धन-सम्पत्ति भी बराबर घटती जा रही है। उनका कहना है कि जर्मनीके व्यापारका आश्चर्य-जनक वृद्धि-विस्तार भी इसलिए नही हो रहा है कि वहा श्रमिक वर्गका और देशोकी अपेक्षा अधिक शोषण हो रहा है। वह ऐसिस्नोलका यह कथन प्रमाणमे पेश करते है—"जर्मनीमे जब केवल ४ करोड १० लाख आदमी बसते थे तब सैकडो आदमी भूखो मर गए, पर जबसे उसकी आबादी बढकर ६ करोड ८० लाख हो गई है तबसे वह दिन-दिन अधिक धनवान होता जा रहा है।" इसके बाद वह कहते है कि "ये लोग (जर्मन) जो कोई योगी-वैरागी नही है, साल-ब-साल सेविंग बैकमे इतनी रकमे जमा करनेमे समर्थ हुए है कि १९११ ई० मे उनका जोड २२ अरब फ्राक (फ्रासका सिक्का) हो गया था। १८९५मे उनके कुल ८ अरबही उक्त खातेमे जमा थे। इसके मानी यह हुए कि उन्होने हर साल ८५ करोड अधिक बचाए।"

जर्मनीकी कला-शिल्प-सबधिनी उन्नतिका विवरण देनेके बाद श्री ब्यूरोने उसकी सामान्य सस्कृतिके विषयमे जो पैराग्राफ लिखा है वह बडी दिलचस्पीके साथ पढा जायगा। उसका आशय यह है—

"समाजशास्त्रकी गहराईमे उतरे विना यह बात निश्शक होकर कही

जा सकती है—इसलिए कि वह बिलकुल स्पष्ट है—कि जर्मन मजदूर अगर अधिक सस्कृत न होते, फोरमैन अधिक पढे-लिखे न होते, वहा पूर्ण शिक्षाप्राप्त इजीनियर उपलब्ध न होते, तो शिल्प-कलाकी इतनी उन्नति वहा कदापि न हुई होती।.. जर्मनीके उद्योग-धधे सिखानेवाले विद्यालय तीन तरहके है—१. पेशे (डाक्टरी आदि) सिखानेवाले, जिनकी सख्या ५०० से ऊपर और जिनमे शिक्षा प्राप्त करनेवालोकी सख्या ७० हजार है, २. शिल्प-कलाकी शिक्षा देनेवाले, जिनकी सख्या और बडी है और जिनमेसे कुछमे १ हजारसे अधिक विद्यार्थी है, ३ कालिज, जिनमे ऊचे दर्जेकी शिक्षा दी जाती है और जिनकी शिष्य-सख्या १५ हजार है। ये कालिज विद्यार्थियोकी तरह डाक्टर (आचार्य)की स्पृहणीय उपाधि प्रदान करते है। . ३६५ विद्यालय वाणिज्य-व्यवसायकी शिक्षा देते है, जिनमे कुल ३१ हजार विद्यार्थी शिक्षा पा रहे है। खेती-बारीकी शिक्षाका प्रबध तो अनगिनत विद्यालयोमे है और यह विद्या सीखनेवालोकी सख्या ६० हजारसे ऊपर है। विविध धनोत्पादक धधोकी शिक्षा पानेवाले इन ४ लाख विद्यार्थियो-के सामने हमारे व्यावसायिक विद्यालयोके कुल ३५ हजार विद्यार्थियोकी क्या बिसात है। और जब हमारे १७ लाख ७० हजार जन, जिनमेसे ७,७६,७६८ अठारह सालसे कमके है, खेतीसे ही जीविका चला रहे है तब हमारे कृषि-विद्यालयोमे कुल जमा ३२५५ ही विद्यार्थी क्यो दिखाई देते है?"

श्री ब्यूरो यह स्वीकार करते है कि जर्मनीकी यह सारी आश्चर्य-जनक उन्नति अकेले मृत्यु-सख्यासे जन्म-सख्याके अधिक होनेका ही फल नही है। पर कहते है, और ठीक कहते हैं, कि और अनुकूलताओके साथ-साथ मरनेवालोसे जन्म लेनेवालोंकी तादाद अधिक होना भी राष्ट्रके बढने-पनपनेके लिए लाजिमी होता है। वस्तुत. वह जिस बातको साबित करना चाहते है वह यह है कि आबादीका बढना देशके समृद्धिलाभ और नैतिक प्रगतिका विरोधी नही है। जहा तक जन्म-सख्याका सवाल है, हिन्दुस्तानमे हमारी स्थिति फ्रासकी जैसी नही है। पर यह कह सकते है कि यह जन्मकी अधिकता हमारे यहा राष्ट्रकी बाढमे सहायक नही है, जैसा कि जर्मनीमे है। पर श्री ब्यूरोके तथ्यो, अको और निष्कर्षोकी दृष्टिसे भारतकी परि-

स्थिति पर हमे अलग अध्यायमे विचार करना होगा। इसलिए यहा इस विषयकी चर्चा अकर्त्तव्य है।

जर्मनीकी परिस्थितिकी, जहा मृत्युसे जन्मकी सख्या वढी हुई है, समीक्षा करनेके वाद श्री व्यूरो कहते है—"क्या हमे यह मालूम नही है कि राष्ट्रीय सपत्तिमे फ्रासका स्थान दुनियाके देशोमे चौथा है और तीसरे नवरवाले देशसे वहुत पीछे ? फ्रासने वाणिज्य-व्यवसायमे जो पूजी लगा रखी है उससे उसे सालाना २५ अरव फ्राककी आमदनी होती है, जर्मनी को ५० अरव-की होती है। हमारी जमीनकी मालियत ३५ वरस के अन्दर—१८७९ से १९१४ के वीच–४० अरव फ्राक घट गई–९२ अरवसे ५२ अरवकी हो गई। देशके सभी जिलोमे खेती-किसानीका धधा करनेवालो-की कमी हे ओर कुछ जिलोकी दशा तो यह है कि जहा देखो वहा बूढे-ही-बूढे दिखाई देते है।" वह और कहते है—"नैतिक उच्छृखलता और व्यवस्थित प्रयत्नसे प्राप्त वध्यात्वका अर्थ यह होता है कि समाजकी स्वाभाविक शक्तिया क्षीण हो जाय और सामाजिक जीवनमे वूढोका पक्का प्राधान्य स्थापित हो जाय। फ्रासमे हजार आदमी पीछे केवल १७० वच्चो-का औसत आता है, जव कि जर्मनीमे वह २२० और इग्लैडमे २१० है। . .वूढोकी सख्याका अनुपात जितना होना चाहिए उससे अधिक है, और दूसरे लोग, जिन्होने नीति-रहित जीवन और प्रयत्न-प्राप्त-वध्यात्व-के फल-स्वरूप जवानीमे ही बुढापेको बुला लिया है, गतवल राष्ट्रके सारे वृद्धजनोचित कायरपनमे हिस्सेदार हो रहे है।

इसके वाद श्री व्यूरो कहते है—"हम जानते है कि फ्रासकी जनता-का ७०-८० प्रतिशत भाग अपने शासकोकी इस 'घरेलू वात' (ढीली-ढाली नीति) की ओरसे उदासीन है, क्योकि किसीकी खानगी जिन्दगीके वारे-मे पूछ-ताछ करना ठीक नही समझा जाता।" और श्री लियो पोल्डमोनो-का निम्नलिखित उक्तिको वडे खेदके साथ उद्धृत करते है—

"निन्दित बुराइयोके निष्कासनके लिए युद्ध करना और उनसे पीडित जनोका उद्धार करना प्रशसनीय कार्य है। पर उन लोगोका क्या उपाय है जिनकी भीरुता यह नही जान पाई हे कि प्रलोभनोसे अपनी अन्तरात्मा,

अपनी विवेकवृत्तिकी रक्षा किस तरह करनी चाहिए, जिनका साहस एक प्यार या रूठनेकी एक भावभगीके सामने घुटने टेक देता है, . जो लज्जाको तिलाजलि देकर, बल्कि शायद अपने इस कारनामेपर गर्व करते हुए, उस प्रतिज्ञाको भग करते है जो उन्होने अपनी युवा-कालकी जीवन-सगिनीके साथ बडे उल्लाससे और विधि-विधानके साथ की थी, जो अपनी अति-रजित और स्वार्थमयी अहन्ताके अत्याचारसे अपने कुटुम्बियोको त्रस्त किये रहते है ? ऐसे आदमी दूसरोका उद्धार किस तरह कर सकते है ?"

श्री व्यूरो अपने कथनका उपसहार यो करते है—

"इस प्रकार हम चाहे जिधर निगाह डाले, हम सदा यही देखते है कि हमारे नीति-सदाचारके बन्धन तोड देनेका फल व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज सबके लिए बहुत बुरा हुआ है, उससे हमारी इतनी हानि हुई है कि वह सचमुच अवर्णनीय है। हमारे युवा जनोका कामुक आचरण, वेश्या-वृत्ति, गन्दी पुस्तको, चित्रोके प्रचार और पैसे, बडप्पन या भोग-विलासके लिए ब्याह करना, व्यभिचार और तलाक, अपनेसे बुलाया हुआ बाझपन और गर्भपात—इन सबने मिलकर राष्ट्रका तेजबल नष्ट कर दिया और उसकी बाढ मार दी है। व्यक्तिमे शक्ति-सचयकी योग्यता नही रह गई और जो बच्चे पैदा हो रहे है वे सख्यामे कम होनेके साथ-साथ शारीरिक एव मानसिक शक्तिमे भी पिछली पीढियोसे हीन होने लगे। 'प्रौढ बच्चे और अधिक अच्छे स्त्री-पुरुष'का नारा उन लोगोको मोह लेता है जो वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके विषयमे अपनी जडवादी दृष्टिके कैदखानेमे पडे रहकर यह सोचा करते है कि हम आदमियोकी नस्ल भी भेड़-बकरियो और घोडोकी तरह पैदा की जा सकती है। आगस्त काम्तेने इन लोगोपर तीखा व्यग्य करते हुए कहा था—'अच्छा होता कि हमारे सामाजिक रोगोका इलाज करनेके ये दावेदार पशु-वैद्य बने होते, क्योकि व्यक्ति और समाज दोनोकी जटिल मनोरचनाका समझ लेना तो उनके वशकी बात नही।'

"सच यह है कि मनुष्य जीवनमे जितनी भी दृष्टियोको ग्रहण करता है, जितने भी निश्चय करता है, जितनी भी आदते लगाता है उन सबमे एक भी ऐसी नही, जो उसके वैयक्तिक और सामाजिक जीवनपर वैसा असर डाले

जैसा काम-वासनाकी तृप्तिके विषयमे उसकी दृष्टि, उसके निश्चयो और उसकी आदतोका पडा करता है। चाहे वह उसको वशमे रखे या खुद उसके इशारे पर नाचता रहे, सामाजिक जीवनके दूर-से-दूर कोनेमे भी उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देगी, क्योकि प्रकृतिका यह विधान है कि हमारे गुप्त-से-गुप्त और निजी-से-निजी कामकी प्रतिक्रिया भी अति व्यापक हो।

"इसी गुप्त विधानकी कृपासे जव हम नीति-नियमका किसी रूपमे उल्लघन करने लगते है तो अपने-आपको यह भुलावा देनेकी कोशिश करते है कि हमारे कुकर्मका कोई अधिक बुरा फल न होगा। खुद अपने वारेमे तो पहले हम उससे सन्तुष्ट होते है, क्योकि अपनी रुचि या सुख ही हमारे उस कार्यका हेतु होता है। समाजके विषयमे हम सोचते है कि हमारी तुच्छ हस्तीसे वह इतना ऊचा है कि वह हमारे दुष्कर्मकी ओर आख उठाकर देखनेका कष्ट भी न करेगा। सर्वोपरि, हम मन-ही-मन यह आशा रखते है कि दूसरे सव लोग सच्चे और सदाचारी वने रहेगे। सवसे बुरी वात यह है कि जवतक हमारा आचरण असाधारण और अपवाद-रूप कार्य होता है तवतक यह कापुरुषोचित आशा प्राय सफल होती रहती है। फिर इस सफलतासे फलकर हम वार-वार वही आचरण करने लगते है और जव उसे करना होता है उसे जायज मान लेते है। यही हमारे कर्मका सवसे वडा दण्ड है।

"पर एक वक्त आता है जव इस आचरणके द्वारा उपस्थित किया हुआ उदाहरण हमे और तरहसे धर्म-च्युत करनेका भी कारण होता है। हमारा हर एक दुष्कर्म 'दूसरो' मे जिस धर्मनिष्ठताका हम विश्वास रखते आये है उसको अपनेमे पैदा करना अधिक कठिन, अधिक वीरोचित कार्य वना देता है। हमारा पडोसी भी वार-वार ठगे जानेसे खीझकर हमारी नकल करनेको अधीर हो जाता है। वस उसी दिनसे हमारा अध पात प्रारम्भ होता है और हर आदमी यह सोच सकता है कि उसके दुष्कर्मोके क्या-क्या दुष्परिणाम हो सकते है और उसकी जिम्मेदारी कितनी वडी है।

"अपने गुप्त कर्मको हम जिस तहखानेमे छिपा हुआ मानते थे उससे वह निकल आता है। उसमे अत प्रवेशकी शक्ति होती है जिससे वह समाजके

अगोमे व्याप्त हो जाता है । सभी सवके रोपका फल भुगतते है, क्योकि हमारे कर्मोका प्रभाव भवरसे उठनेवाली नन्ही लहरोकी तरह समाज-जीवनके दूर-से-दूरके कोनो तक पहुचता है ।

“नीति-नाग जातिके रस-स्रोतोको तुरत सुखा देता है और जवानोको झटपट वुढापेकी ओर ढकेलकर शरीर और मन दोनोसे निर्वल वना देता है ।”

४ : इलाज—संयम और ब्रह्मचर्य

नीति-नाश और गर्भनिरोधके कृत्रिम साधनोके उपयोगसे उसकी वृद्धि तथा उसके भयावह परिणामोकी चर्चा करनेके वाद श्री ब्यूरोने इस वुराईको दूर करनेके उपायोपर विचार किया है। उन्होने पहले कानून-कायदोकी मदद-से इसे रोकनेके प्रश्न और उनकी आवश्यकतापर विचार किया है और उन्हे नितात व्यर्थ वताया है । पुस्तकके इस अशकी चर्चा मुझे छोड देनी होगी । उसके वाद उन्होने अविवाहितके लिए ब्रह्मचर्यकी, मानव जातिका जो वहुत वडा भाग सदाके लिए अपनी काम-वासनाको जीत नही सकता उसके लिए व्याहकी, विवाहित स्त्री-पुरुपके लिए एक-दूसरेके प्रति सच्चा, वफादार रहने तथा विवाहित जीवनमे सयमकी और इनके पक्षमे लोकमत तैयार करनेकी आवश्यकतापर विचार किया है । “ब्रह्मचर्य स्त्री-पुरुपकी प्रकृतिके विरुद्ध है और उनके स्वास्थ्यके लिए हानिकारक है । वह व्यक्तिकी स्वत-त्रता और उसके सुखपूर्वक जीने तथा जिस जगह चाहे रहने-सहनेके अधिकार-पर असह्य आघात है ।” इस तर्ककी उन्होने समीक्षा की है । वह इस सिद्धातको सही माननेसे इन्कार करते है कि ‘जननेद्रिय भी और इद्रियो जैसी है और उसे भी काम मिलना ही चाहिए ।’ वह पूछते है—“ऐसा है तो हमारी सकल्प-शक्तिको जो काम-वासनाको पूरी तरह रोक रखनेकी शक्ति प्राप्त है, उसमे या इस तथ्यसे हम इसका मेल किस तरह वैठायगे कि कामवासनाका जगना उन अगणित उत्तेजनाओका फल होता है जिन्हे हमारी सभ्यता वय प्राप्तिके कई वरस पहले ही हमारे नवयुवको और नवयुवतियोके लिए जुटा देती है ?”

सयमसे स्वास्थ्यकी हानि नही होती, वल्कि वह स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है और सर्वथा साध्य है। इस दावेकी पुष्टिमे, पुस्तकमे जो बहुमूल्य डाक्टरी शहादते इकट्ठी की गई है, उन्हे उद्धृत करनेका लोभ मै रोक नही सकता।

टविंगन विद्यापीठ (जर्मनी) के प्रोफेसर ओस्टरलेन लिखते है—"काम-वासना इतनी प्रवल नही होती कि नीति-बल और विवेकसे वह दवाई, वल्कि पूरी तरह वशमे न लाई जा सके। युवतियोकी तरह युवकोको भी योग्य वय प्राप्त होने तक उसे कावूमे रखना सीखना चाहिए। उन्हे जानना चाहिए कि इस इच्छाकृत त्यागका फल तगडा शरीर और हमेशा ताजादम वना रहनेवाला वल-उत्साह होता है।"

"इस वातको चाहे जितनी वार दुहराइये, अधिक न होगा कि भोग-विलास और पूर्ण पवित्र-जीवनका शरीरशास्त्र (फिजियालोजी) और नीतिशास्त्रके नियमोके साथ पूरा मेल है, और असयत विषय-भोगका शरीरशास्त्र तथा मानसशास्त्र भी उतना ही विरोध करते है जितना धर्म और नीति।"

लदनके रायल कालिजके प्रोफेसर सर लायोनल बील कहते हैं—"श्रेष्ठ पुरुषोके उदाहरणोसे यह वात सदा सिद्ध हुई है कि हमारी सवसे दुर्दम वासनाए दृढ और पक्के सकल्पसे और रहने-सहनेके तरीके तथा काम-धवेके वारेमे काफी सावधानी रखकर कावूमे लाई जा सकती है। ब्रह्मचर्यसे कभी किसीको हानि नही हुई वशर्ते कि वह किसी तरहकी लाचारीसे नही वल्कि खुशीसे अपनाई हुई जीवन-विधिके रूपमे धारण किया गया हो। सार यह है कि कौमार्य इतना कठिन नही है कि चल न सके, पर शर्त यह है कि वह मनकी अवस्था-विशेषकी वाह्य अभिव्यक्ति हो। ब्रह्मचर्यका अर्थ केवल इन्द्रिय-सयम नही होता, मनके भावोका निर्मल होना और वह शक्ति भी होती है जो पक्के विश्वाससे मिला करती है।"

स्विट्जरलैंडके मानसशास्त्री फारल कामसवधी अनियमितताओकी चर्चा कैसे सौम्य भावमे करता है—जो उसके पाण्डित्यके सर्वथा अनुरूप है। वह कहता है—"व्यायामसे नाडी-सस्थानकी हर एक क्रिया तेज और सशक्त होती है। इसके विपरीत अगविशेपकी निष्क्रियता उस उत्तेजित करनेवाली

वातोका असर घटा देती है। काम-प्रवृत्तिको छेडनेवाली सभी वाते भोगकी इच्छाको भडकाती है। इन उत्तेजनाओसे वचते रहे तो वह कुछ मन्द हो जाती है और धीरे-धीरे वहुत घट जाती है। युवक-युवतियोमे यह खयाल फैला हुआ है कि सयम प्रकृतिविरुद्ध और अनहोनी वात है। पर वहुसख्यक जन, जो उसका पालन कर रहे है, इस वातको सिद्ध कर रहे है कि स्वास्थ्य-की किसी तरह हानि किये विना ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है।"

रिविगका कहना है—"२५, ३० या इससे भी ऊची उम्रके कितने ही व्यक्तियोको मै जानता हू, जिन्होने पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन किया या जिन्होने व्याह होने तक उस नियमको निवाहा। ऐसे लोग इने-गिने नही है, हॉ वे अपना ढिढोरा नही पीटते फिरते। मुझे तन-मन दोनोसे स्वस्थ कितने ही विद्यार्थियोके गोपनीय पत्र मिले है, जिन्होने मुझे इसलिए कोसा है कि विषय-वासनाको वशमे लाना कितना सहज है, इसपर मैने उतना जोर नही दिया जितना देना चाहिए था।"

डाक्टर ऐक्टन कहते है कि "व्याहके पहले युवकोको पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए।"

ब्रिटिश राज-दरवारके चिकित्सक सर जेम्स पेजेटका कहना है कि "ब्रह्मचर्यसे जिस तरह आत्माकी हानि नही होती, उसी तरह शरीरकी भी नही होती। सयम सर्वश्रेष्ठ आचार है।"

डाक्टर ई० पेरियेे लिखते है—"पूर्ण ब्रह्मचर्यको तन्दुरुस्तीके लिए खतरनाक मानना एक विचित्र भ्रम है। इस भ्रमकी जड खोद डालनी चाहिए, क्योकि यह वच्चोके ही नही वापोके मनको भी विगाड रहा है। ब्रह्मचर्य युवकोके लिए शारीरिक, मानसिक और नैतिक तीनो दृष्टियोसे कवच-रूप है।"

सर ऐड्रू क्लार्क कहते है—"सयमसे कोई हानि नही होती, शरीरकी वाढमे वाधा नही होती। वह शक्तिको वढाता और मन-इन्द्रियोको सतेज करता है। असयम मन-इद्रियोको वशमे रखनेकी शक्ति घटाता, ढिलाईकी आदत लगाता, जीवनकी सारी क्रियाओको मद करता और विगाडता और ऐसे रोगोको निमत्रण देता है जिनकी विरासत कई पीढियो तक चली जाय।

कामवासनाकी असयत तृप्ति युवकोके स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है, यह कहना भूल ही नही उनके प्रति अत्याचार भी है। यह कथन असत्य और हानिकर दोनो है।"

डाक्टर सर ब्लेड लिखते है—"असयत विषयभोगकी बुराइया निर्विवाद है, पर सयमकी बुराइया कपोलकल्पना मात्र है। पहलीके विवेचनमे बडे-बडे पोथे लिखे गए है, पर दूसरीको अभी तक अपना इतिहास लिखनेवाले-का इन्तजार है। सयमसे होनेवाली हानिके बारेमे जो कुछ कहा जाता है, वह कुछ गोल-मटोल बाते है जिन्हे बातचीतके दायरेके बाहर आने और समीक्षाकी कसौटीपर चढनेकी हिम्मत नही होती।"

डाक्टर मोते गाजा 'लाजिफियालोजी देलामृर' (कामका शरीरशास्त्र) नामकी पुस्तकमे लिखते है—"ब्रह्मचर्यसे किसीको कोई रोग हुआ हो यह अबतक मैने नही देखा। सभी लोग, खासकर युवा पुरुष, उसके तुरत होनेवाले लाभोका अनुभव कर सकते है।"

बर्न (स्विट्जरलैंड)के नाडीसस्थानके रोगोकी चिकित्साके यशस्वी अध्यापक डाक्टर दुब्रॉय लिखते है—"नाडीसस्थानकी दुर्बलता—दिल-दिमागकी कमजोरीके मरीज जितने उन लोगोमे मिलते है, जो अपनी कामवासनाकी लगाम बिलकुल ढीली किये रहते है, उतने उन लोगोमे नही जो जानते है कि अपनी पाशव-प्रवृत्तियोकी गुलामीसे कैसे बचा जा सकता है। विसेत्र अस्पतालके चिकित्सक डाक्टर फेरे उनकी इस शहादतकी पूरी तरह पुष्टि करते है। वह कहते है कि जो लोग अपने मनको निर्मल रख सकते है वे अपने स्वास्थ्यकी ओरसे निर्भय रहकर ब्रह्मचर्यका पालन कर सकते है। स्वास्थ्य कामवासनाकी तृप्तिपर अवलबित नही होता।

प्रोफेसर आलफ्रेद फर्नियं लिखते है—"ब्रह्मचर्य रखनेसे युवकोके स्वास्थ्यके लिए खतरा होनेके बारेमे कुछ अयुक्त और गम्भीरतारहित बातें कही जाती है। मै आपको विश्वास दिलाता हू कि ये खतरे अगर सचमुच है तो मै उनके बारेमे बिलकुल ही अनजान हू और एक चिकित्सककी हैसियतमे मुझे अबतक उनके अस्तित्वका प्रमाण नही मिला है, यद्यपि अपने धधेके सिलसिलेमे मुझे उनकी जानकारी होनेका पूरा मौका हासिल

था। इसके सिवा शरीर-शास्त्रका अध्ययन करनेवालेकी हैसियतसे मै यह भी कहूगा कि मोटे हिसाब २१की उम्रके पहले सच्चा वीर्य या पुरुषत्व नही प्राप्त होता, और दूषित उत्तेजनाए कामवासनाको समयसे पहले जगा न दे तो तबतक सहवासकी आवश्यकता भी नही पैदा होती। कामवासनाका समयसे पहले जगना अस्वाभाविक बात है और आम तौरसे बच्चोका लालन-पालन गलत तरीकेसे किये जानेका फल होता है।

"कुछ भी हो इतना तो पक्का समझिये कि काम-वासनाको समयसे पहले जगाने और तृप्त करनेमे जितना खतरा होता है उसे रोकने-दबानेमे उससे कही कम होता है।"

ये अति प्रामाणिक शहादते, जो आसानीसे बढाई जा सकती है, पेश करनेके बाद श्री ब्यूरो अन्तमे वह प्रस्ताव उद्धृत करते है जिसे १९०२ ई० मे ब्रसेल्स (बेल्जियम) मे हुए रोगोसे बचनेके उपायोपर विचार करनेवाले दूसरे सार्वदेशिक सम्मेलनमे उपस्थित १०२ चिकित्सा-पडितोने एक मतसे स्वीकार किया था। इस सम्मेलनके प्रतिनिधि अपने विषयके दुनियामे सबसे अधिक प्रामाणिक पडित थे। प्रस्तावका भाव यह है—

"युवकोको यह बता देना और सब शिक्षाओसे अधिक आवश्यक है कि सयम और ब्रह्मचर्यसे उनके स्वास्थ्यकी कोई हानि नही हो सकती; बल्कि शुद्ध चिकित्सा-शास्त्र और स्वास्थ्य-विज्ञानकी दृष्टिसे भी इन गुणोको अपनानेकी उनसे पूरे जोरके साथ सिफारिश की जानी चाहिए।"

अनन्तर श्री ब्यूरो लिखते है—"क्रिस्टियानिया (नारवे) विद्यापीठके चिकित्सा-विभागके अध्यापकोने कुछ बरस पहले सर्वसम्मतिसे यह घोषणा की थी कि 'सयमका जीवन स्वास्थ्यकी हानि करनेवाला है' यह कथन हमारे सर्वस्वीकृत अनुभवके अनुसार निराधार है। पवित्र और सदाचारयुक्त जीवनसे कोई हानि होनेकी बात हमे मालूम नही।"

"इस प्रकार सारा मुकदमा सुन लिया गया और समाजशास्त्री तथा नीतिशास्त्री अब श्री रूइसाके स्वरमे स्वर मिलाकर इस बुनियादी और शरीरशास्त्र द्वारा अनुमोदित सत्यकी घोषणा कर सकते है कि 'काम-वासना आहार और अगोसे काम लेनेकी आवश्यकताओं जैसी वस्तु नही है जिसका

एक खास हद तक तृप्त होना आवश्यक हो। यह सत्य है कि कुछ असाधारण कोटिके, किसी तरहकी विकृतिसे पीडित जनोको छोडकर, और सभी स्त्री-पुरुष सयम, पवित्रताका जीवन विता सकते है, इससे न उनके जीवनमे कोई वडा उपद्रव उपस्थित होगा और न कोई क्लेश ही होगा। इस बातको जितनी वार भी दुहराए अधिक न होगा, क्योकि ऐसी वुनियादी सचाइयोकी उपेक्षा होना सामान्य बात है, कि ब्रह्मचर्यके पालनसे साधारण स्त्री-पुरुषोको, जिनके तन-मनकी वनावटमे कोई खास खरावी नही है—और १०० मे ९८-९९ ऐसे ही लोग होते है—कभी कोई रोग कष्ट नही होता, पर अनेक भयानक और सर्वविदित बीमारिया असयत विषय-भोगका ही प्रसाद होती है। शुक्र-शोणितके अतिरेकका अति सरल और अचूक उपाय प्रकृतिने स्वप्नदोष और रजोधर्मके रूपमे कर ही दिया है।

"अत डाक्टर वीरीका यह कहना बिलकुल सही है कि यह प्रश्न किसी सच्ची प्राकृतिक प्रेरणा या आवश्यकताकी तृप्ति-पूर्तिका नही है। हर आदमी जानता है कि क्षुधा की तृप्ति न करने या सास लेना वन्द कर देनेका दण्ड उसे क्या मिलेगा। पर कोई किसी तात्कालिक या लम्बी बीमारीका नाम नही वता सकता जो थोडे दिनो तक या यावज्जीवन ब्रह्मचर्य-पालनसे पैदा होती हो। साधारण जीवनमे हम ऐसे ब्रह्मचर्यधारियोको देखते है जिनका चरित्र किसीसे कम वलवान् नही है, जिनका शरीर भी दूसरोसे कम तगडा नही और व्याह करे तो सन्तानोत्पादनके सामर्थ्यमे भी किसीसे पीछे नही है। जिस आवश्यकतामे इतना उतार-चढाव हो सकता है, जो नैसर्गिक प्रेरणा-तृप्तिके अभावको इतनी आसानीसे सह लेती है, वह न आवश्यकता हो सकती है न प्रकृतिसे प्राप्त प्रेरणा।"

"कामवासनाकी तृप्ति वढनेवाली वयके वालककी किसी शारीरिक आवश्यकताकी पूर्ति नही करती, वल्कि उलटे पूर्ण ब्रह्मचर्य ही उसकी साधारण वाढ-विकासके लिए अत्यावश्यक है, और जो लोग उसको भग करते है वे अपने स्वास्थ्यकी कभी पूरी न हो सकनेवाली हानि करते है। कोई वालक या वालिका जव जवान होने लगती है तो उसके तन-मनमे वहुतसे गहरे उलट-फेर होते है, अनेक शारीरिक क्रियाओमे सच्ची गडवड

पैदा हो जाती है। सारा शरीर बढता, पुष्ट होता है। किशोर अवस्थावाले बालकको अपनी सारी शक्ति बटोर रखनेकी जरूरत होती है, क्योकि इस उम्रमे अकसर रोगोका आक्रमण रोकनेकी शक्ति घट जाती है और इस उम्रवाले और छोटी उम्रवालोकी तुलनामे अधिक बीमार होते तथा मरते है। शरीरकी सामान्य बाढका लम्बा काम, विभिन्न अगो, इन्द्रियोका विकास, देह और मनमे लगातार होनेवाले वे बहु-सख्यक परिवर्तन जिनके अन्तमे बालक पुरुष बनता है, ये सब ऐसे काम है जिनके लिए प्रकृतिको गहरी मेहनत करनी पडती है। ऐसे नाजुक वक्तमे हर तरहका अतिरेक, किसी भी अग-इन्द्रिय-से अधिक काम लेना, खतरनाक है, जननेन्द्रियका समयसे पहले उपयोग तो खास तौरसे खतरनाक है।"

५ : व्यक्ति-स्वातन्त्र्यको दलील

ब्रह्मचर्यके शारीरिक लाभोकी चर्चा करनेके बाद श्री ब्यूरो उसके नैतिक और मानसिक लाभ बतानेके लिए प्रोफेसर मोतेगाजाकी पुस्तकका निम्नलिखित अश उद्‌धृत करते है—

"सभी लोग, खासकर युवक, ब्रह्मचर्यके तत्काल होनेवाले लाभोका अनुभव कर सकते है। स्मृति स्थिर और धारक, मस्तिष्क सजीव और उद्‌भावनाक्षम हो जाता है। सकल्प-शक्ति सबल-सतेज हो जाती है। सारे चरित्रमे वह बल आ जाता है कामुक जिसकी कल्पना भी नही कर सकता। ब्रह्मचर्यका तिनपहला शीशा हमारे आसपासकी सारी चीजोको, हमारी दुनियाको जैसे स्वर्गीय रगोसे रजित कर देता है वैसा और कोई कलम नही कर सकती। विश्वकी छोटी-से-छोटी चीजको भी वह अपनी किरणोसे आलोकित कर देता है, हमे उस नित्य सुखके शुद्धतम आनन्दमे पहुचा देता है जो न घटना जानता है और न छीजना। ब्रह्मचारीका आनन्द, हार्दिक उल्लास और प्रसन्नतासे भरा आत्मविश्वास और उसके विषयवासनाके गुलाम साथियोके बेचैन किये रहनेवाले बद्धमूल विचार और बौखलाहटमे कैसा दिन-रातका-सा अन्तर है!"

सयमके लाभोकी कामुकता और ऐयाशीके कुपरिणामोसे तुलना करते

हुए लेखक कहता है—"सयमसे पैदा होनेवाले किसी रोगका नाम कोई नही वता सकता, पर असयत विषयभोगसे होनेवाली डरावनी वीमारियोको कौन नही जानता ? देह तो सडी-गली चीज वनती ही जाती है, कल्पना-शक्ति, हृदय और वुद्धिकी दशा और भी बुरी हो जाती है। हर तरफसे चरित्रके पतन, युवकोकी उद्दाम कामुकता और स्वार्थपरताकी वाढका रोना सुनाई देता है।"

यह तो हुई वीर्य-व्ययकी तथोक्त आवश्यकता और उसके कारण व्याहके पहले युवकोके नीतिकी लगाम कुछ ढीली रखनेके औचित्यकी बात। इस आजादीके हिमायती यह भी कहते है कि कामवासनाका नियत्रण मनुष्यके अपने शरीरसे चाहे जिस तरह काम लेनेकी स्वतत्रताका हरण है। लेखक सवल दलीलोसे यह सिद्ध करता है कि समाजशास्त्र और मानसशास्त्रकी दृष्टिसे यह रोक आवश्यक है। वह कहता है—

"सामाजिक जीवन केवल वहुविध सवधोका एक जाल, क्रियाओ और प्रतिक्रियाओका ताना-वाना है। उसके वीच कोई ऐसा काम हो ही नही सकता जिसे हम दूसरोसे विलकुल अलग, असम्वद्ध कह सके। हम जो कुछ भी करनेका निश्चय या यत्न करे, हमारी अखण्डता, हमारा एक-दूसरेसे लगा-जुडा होना हमारे निश्चय और कार्यका सबध हमारे भाइयोके विचारो और कार्योसे जोड देगा। हमारे छिपे विचार और छन भरके लिए मनमे उठनेवाली कामवासनाकी प्रतिध्वनि भी इतनी दूर तक पहुचती है कि हमारा मन उस दूरीका अदाजा नही कर सकता। सामाजिकता मनुष्यका ऐसा गुण नही है जो वाहरसे लिया गया हो या जिसका काम किसी और गुप्त वृत्तिका पोषण मात्र हो। वह तो उसका सहज गुण है, उसकी मनुष्यताका ही अग है। वह सामाजिक इसीलिए है कि वह मनुष्य है। हमारे कामोका दूसरा कोई भी मैदान इसके जितना सच्चे अर्थमे हमारा अपना नही। शरीरशास्त्र और नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति, वुद्धि और सौन्दर्य-भावनाके कार्य-क्षेत्र, हमारे धार्मिक और सामाजिक कार्य—सभी एक विश्वव्यापी विधानके साथ रहस्यभरे सूत्रोसे वधे और अनिर्दिष्ट सवधोसे जुडे हुए है। यह वधन इतना दृढ है, जाल इतना गठकर

बुना हुआ है कि बेचारा समाजशास्त्री सम्पूर्ण देश और कालको अतिक्रमण करके उसके सामने खडी इस विराट्सत्ताको देखकर कभी-कभी चक्करमे आ जाता है। वह एक ही निगाहमे इसका अदाजा कर लेता है कि कुछ विशेष अवस्थाओमे व्यक्तिकी जिम्मेदारी कितनी बडी होती है. और कुछ सामाजिक हलके उसे जो आजादी देनेके इच्छुक हो सकते हैं उसे स्वीकार कर वह किस तरह क्षुद्र बन जानेकी जोखिम उठाता है।"

लेखक और कहता है—"अगर हम कह सकते है कि कुछ खास हालतोमे हमे सडकपर थूकनेकी आजादी नही है. .तो अपनी कामशक्ति, अपने वीर्यको जिस तरह चाहे खर्च करनेका अधिकार, जो उससे अधिक महत्त्वकी वस्तु है, हमे कैसे मिल सकता है? क्या यह शक्ति अखण्डताके विश्वव्यापी विधानके बाहर है? उलटा हर आदमी यह देख सकता है कि उक्त क्रियाके आत्यन्तिक महत्त्वके कारण वैयक्तिक कार्यकी समाजपर होनेवाली प्रतिक्रिया और बढ जाती है। इस नवयुवक और नवयुवतीको देखिये जिन्होने अभी-अभी वह नाजायज सबध जोडा है जिसका रूप पाठक को ज्ञात है। उन्होने मान लिया है कि इस समझौतेका सबध केवल उन्हीसे है, और किसीसे नही। अपनी स्वाधीनताके भ्रममे वे यह मान लेते हैं कि हमारे निजी और गुप्त कार्योसे समाजको कोई वास्ता-सरोकार नही, और वे उसके नियन्त्रणसे बिलकुल बाहर हैं। ऐसा सोचना उनकी निरी खामखयाली है। समाजकी जो अखण्डता एक राष्ट्रके लोगोको और उससे भी आगे जाकर सम्पूर्ण मानव-जातिको एक लडीमे पिरोती है उसे सभी तरहकी दीवारो—शयनागारोकी दीवारोका भेदन करनेमे भी कोई कठिनाई नही होती। परस्पर-संबधकी एक जबर्दस्त जजीर हमारे निजी माने जानेवाले कार्योको जिसे समाज-जीवनके विघटनमे वे सहायक हो रहे है उसके हजारो कोस दूरके धर्म-कलापोके साथ भी जोड देती है। हर आदमी जो यह कहता है कि—किसीके साथ कुछ दिनोके लिए या गर्भ-धारणका बचाव करते हुए पति-पत्नी संबध स्थापित करनेका अधिकार है, उसे इसकी आजादी है कि प्रकृतिसे प्राप्त अपनी जनन-शक्ति—अपने वीर्यका—केवल अपने आनदके लिए उपयोग करे, वह चाहे या न चाहे पर वह समाजके अदर भेद-बिलगाव और

विश्रृंखलताके बीज बो रहा है। हमारी सभी सामाजिक सस्थाए हमारी स्वार्थपरता और उनके प्रति अपने कर्त्तव्यके अपालनसे विकृत तो हो ही रही है, वे यह मान लेती है कि कामवासनाकी तृप्तिके साथ जो जिम्मेदारी आती है हर आदमी उसे खुशीसे उठा लेगा। इस स्वीकृतिको मानकर ही समाजने श्रम और सपत्ति, मजदूरी और वरासत, कर और सैनिक रूपमे राष्ट्रकी सेवा आदि अगणित व्यवस्थाए बनाई है। पार्लमेटके चुनावमे मत देनेका अधिकार और नागरिक स्वतत्रताके इस बोझको उठानेमे अपना कधा लगानेसे इनकार करके व्यक्ति सामाजिक समझौतेके मूल तत्त्वपर ही हरताल फेरता है, और चूकि वह ऐसा करके दूसरोका बोझ और बढा देता है इसलिए वह दूसरोका शोषण करनेवाले, दूसरोकी कमाईपर जीनेवाले चोर और ठगसे अच्छा कहलानेका अधिकारी नही है। हम अपनी और सभी शक्तियोके समान अपनी शारीरिक शक्तिके सदुपयोगके लिए भी समाजके सामने जवाबदेह है, और चूकि वह निहत्था और बाहरी दबावके साधनोसे लगभग बिलकुल ही रहित होनेके कारण उस शक्तिको समझदारीके साथ और समाजके भलेका ध्यान रखते हुए काममे लानेका भार हमारे सद्भावको ही सौंप देनेको लाचार है, इसलिए हमारी यह जिम्मेदारी और बडी मानी जा सकती है।

लेखक मानसशास्त्रके आधारपर भी अपनी बात उतनी ही जोरसे कहता है। उसका कहना है—"स्वाधीनता ऊपरसे देखनेमे तो राहत या कष्टसे छुटकारा है, पर वास्तवमे वह एक भारी बोझ है। यही उसकी महत्ता भी है। वह हमे बाधती और विवश करती है। जितनी कोशिश करना हर आदमी पर फर्ज है, वह उससे अधिक करनेका आदेश देती है। व्यक्ति स्वाधीन होना चाहता है, अपनी स्वतत्रताका विकास करके अपने आपको व्यक्त करने, अपनी आकाक्षाओको कार्यरूप देनेकी इच्छा उसके अतरमे प्रज्वलित है। यह काम देखनेमे तो बहुत सहल और बहुत सीधा जान पडता है। पर पहला ही अनुभव उसे बता देता है कि वह कितना टेढा और पेचीदा है। एकता हमारी प्रकृति और हमारे नैतिक जीवनकी प्रधान विशेपता है। हम अपने अतरमे बहुविध और परस्पर-विरोधिनी

प्रेरणाओका अनुभव करते है; उनमेसे हरएकमे हमे अपने-आपका पता होता है। फिर भी हर वात हमे वताती है कि हमे उनमे कुछका ग्रहण और कुछका त्याग करना होगा। युवा पुरुष, तुम कहोगे कि मै अपनी इच्छाओ, विचारोका जीवन बिताना चाहता हू, अपने-आपको व्यक्त करना चाहता हू। पर महान् शिक्षक फारेस्टरके शब्दोम हम तुमसे पूछते है कि तुम अपने व्यक्तित्त्वके किस भागको कार्यरूप देना चाहते हो ? उसका कौन-सा अश अच्छा है—जो तुम्हारी मानसशक्तिका केन्द्र है वह या वह जो तुम्हारी प्रकृतिमे सबसे नीचे रहता है, उसका वासनामय भाग ? अगर यह वात सच है कि व्यक्ति और समाज दोनोकी प्रगतिका आधार अध्यात्मभावकी उत्तरोत्तर वृद्धि और जड प्रकृतिपर आत्माका पूर्ण प्रभुत्व है तो हमारा चुनाव क्या होगा, यह निश्चित है। पर हर हालमे हममे कर्म-शक्ति तो होनी ही चाहिए, और यह काम आसान नही है। इसके जवावमे शायद तुम कहो कि मुझे चुनाव नही करना है—एकको अपनाने दूसरेको छोडनेके पचड़ेमे नही पडना है। मुझे तो अपने जीवनको अखण्ड सत्ताके रूपमे ही उपलब्ध करना है। ठीक है, पर याद रक्खो, यह निश्चय खुद ही एक चुनाव है। क्योकि यह मेल विग्रहके वाद वना है। अमर जर्मन कवि गेटेने कहा था 'मरकर जन्मो' और यह शब्द १९०० साल पहले कहे हुए हजरत ईसाके इस वजनकी प्रतिध्वनि मात्र है—'तथास्तु, मै तुमसे कहता हू कि धरतीपर गिरनेवाला गेहूका दाना जवतक मरता नही वह अकेला रहता है। पर वह मरता है तो वहुतसे नए दाने पैदा कर देता है।'

श्री जव्रील सीले लिखते है—"हम मर्द वनना चाहते है" यह कहना तो वहुत आसान है। पर यह अधिकार कर्त्तव्य, कठोर कर्त्तव्य वन जाता है जिसके पालनमे कमोवेश सभी विफल होते है। हम आजाद होना चाहते है, इसकी घोषणा हम धमकीके लहजेमे करते है। आजादीका मतलव अगर यह हो कि हम जो जीमे आये वह करे, अपनी पशु-प्रवृत्तियोके गुलाम हो जाय, तो यह स्वाधीनता हमारे गर्वकी वस्तु न होनी चाहिए। हा, अगर हम सच्ची स्वाधीनताकी वात कह रहे हो तो हमे कभी समाप्त न होनेवाले संग्रामके लिए कमर कस लेनी चाहिए। हम अपनी एकता, भीतर-वाहरसे

विलकुल एक होने और स्वाधीनताकी वाते करते है और गर्वके साथ मान लेते है कि हम ईश्वरके अमर पुत्र है। पर दु ख है कि इस आत्माको अगर हम पकडना चाहते है तो वह हमारी पकडके वाहर हो जाती है। वह ऐसी असम्बद्ध वस्तुओका समूह वन जाती है जो एक-दूसरेके अस्तित्त्वको अस्वीकार करती है, वह परस्परविरोधी इच्छाओकी खीचातानीका भूला भूलती रहती है। वह जिस स्वाधीनताके उपभोगका दावा करती है वह गुलामीके सिवा और कुछ नही। पर वह उसे गुलामी लगती नही, इसलिए वह उसका विरोध नही करती।"

रूडसॉ कहते है—"सयम शातिसे भरा हुआ गुण और असयम दुर्जय दोषोको निमत्रण देनेवाला दुर्गुण। काम-वासनाका जगना यो तो हर समय कष्टका कारण होता है, पर युवावस्थामे तो वह एक मूलगत विकृति, इच्छा-शक्ति और इन्द्रियोके सन्तुलनके सदाके लिए विगड जानेका सकेत हो सकता है। किसी नवयुवकका किसी स्त्रीके साथ प्रथम सम्पर्क उसे जीवनका एक क्षणिक अनुभव-सा जान पडता है, पर वह नही जानता कि वह वास्तवमे अपने शारीरिक, मानसिक और नैतिक तीनो जीवनोके साथ खिलवाड कर रहा है। वह नही जानता कि यह वासना अव प्रेतकी तरह उसका पीछा करेगी—घर, दफ्तर, जलसा, दावत हर जगह उसको परेशान करेगी, यह दूसरेके मनपर उसकी विजय उसके लिए इन्द्रियोकी जन्मभरकी गुलामी वन जायगी। हम जानते है कि कितने खिलते जीवन, कितने 'होनहार विरवे' इस झझामे झुलस गये, जिसका आरम्भ उनके पहले नैतिक पतन, ब्रह्मचर्यके प्रथम भगसे हुआ।"

एक यशस्वी कविकी ये पक्तिया इस दार्शनिकके इस वचनकी प्रति-ध्वनि है—

"मनुष्यकी आत्मा एक गहरा वरतन है। उसमे पडनेवाली बूदे नमल हो तो सारे समुद्रका पानी भी उस धव्वेको धो नही सकता।" (भावार्थ)

ग्लासगो विद्यापीठके शरीरशास्त्रके अध्यापक जान जी० एम० कड्रिक की, जो अपने विषयके प्रख्यात पडित है, यह सलाह भी उसकी वैसी ही प्रति-ध्वनि है—"उगती हुई कामवासनाकी तृप्ति अविहित नीति-दोष ही नही

है, शरीरकी भयानक क्षति भी है। इस वासनाके आदेशका तुमने एक वार पालन किया कि फिर उसका निरकुश शासन तुम्हारे ऊपर स्थापित हुआ। अपनेको दोषी समझनेवाला तुम्हारा मन उसका हुक्म बजानेमे सुख भोगेगा और उसे और बेकही बना देगा। उसकी आज्ञाका प्रत्येक पालन आदतकी जजीरमे एक नई कडी वनता जायगा। वहुतोमे इस वेडीको तोडनेका वल नही होता और वे अपने तन-मनका बुरी-तरह नाश कर डालते है। वे अपनी आदतके गुलाम हो जाते है, जो आमतौरसे मनकी किसी विकृतिके कारण नही वल्कि ज्ञानवश ही लग जाती है।"

इस मतकी पुष्टिमे श्री ब्यूरो डाक्टर एस्कादे की यह उक्ति उद्धृत करते है—

"कामवासनाके वारेमे हम जोर देकर कहते है कि वुद्धि और सकल्पशक्ति उसे पूरी तरह वसमे रख सकती है। यहा वासना शब्दका ही व्यवहार उचित है, शारीरिक आवश्यकता या हाजतका नही, क्योकि वह शरीरकी ऐसी माग नही है जिसकी पूर्ति किये बिना हम जिदा न रह सके। सच तो यह है कि वह हाजत है ही नही। पर वहुतेरे उसे हाजत मानते है। इस वासना या इच्छाका जो अर्थ वे करते है वह उन्हे सहवासको जीवनकी अनिवार्य आवश्यकता माननेको मजबूर करता है। यहाँ हम कामवासनाकी उस तृप्तिका विचार नही कर रहे है जो प्रकृतिके नियमके सामने सिर झुका देनेका फल होती है, जो हम स्वभावके वश होकर करते है। हमारा मतलब तो उस अपनी इच्छासे किये जानेवाले कामसे है जो हमारे सकल्प या मनकी मौन सम्मतिसे किया जाता है, जिसे हम अकसर पहलेसे सोचे हुए होते है और उसकी तैयारी भी कर रखते हे।"

६ : आजीवन ब्रह्मचर्य

व्याहके पहले और पीछे भी ब्रह्मचर्य-पालनकी आवश्यकतापर जोर देने और वह न हो सकनेवाला या किसी तरहकी हानि करनेवाला नही वल्कि सर्वथा साध्य और मन-देह दोनोके लिए सोलहो आने हितकर कार्य है, इसकी सिद्धिमे सबूतोका ढेर लगा देनेके वाद श्री ब्यूरोने एक अध्यायमे नैष्ठिक

या आजीवन ब्रह्मचर्यके मूल्य, महत्त्व और साध्यतापर विचार किया है। उसका पहला पैराग्राफ उद्धृत करने योग्य है—

"इन उद्धारको, काम-वासनाकी गुलामीसे सच्चा छुटकारा दिलानेवाले इन वीरोकी पहली श्रेणीमे उन युवा पुरुषो और स्त्रियोके नाम लिये जाने चाहिए जो अपना जीवन किसी महत्कार्यमे लगानेके विचारसे आजीवन ब्रह्मचारी रहनेका निश्चय करते और गृहस्थ-जीवनके सुखोका लाभ त्याग देते है। उनके निश्चयके कारण परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न होते है। कोई बूढे अशक्त माता-पिताकी सेवाके लिए यह व्रत लेता है, कोई अपने मातृ-पितृ-हीन भाई-वहनोके लिए मा-बाप वनना चाहता है, किसीको अपने-आपको किसी कला-विज्ञानकी आराधनामे, दीन-दुखियोकी सेवामे अथवा नीति-शिक्षा या धर्म-प्रचारके कार्यमे अपना सारा समय और शक्ति लगानेकी लगन है। इसी तरह इस इच्छाकृत त्यागका मूल्य भी न्यूनाधिक हो सकता है। सुशिक्षा और सदाचारके अभ्यासकी कृपासे कुछका मन ऐसा होता है कि विषय-भोग उसे एक तरहसे ललचा ही नही सकते। दूसरोको अपनी वासनाओपर विजय पानेमे अपनी पाशविक प्रवृत्तियोके साथ घोर युद्ध करना पडता है, जिसकी कठोरताका पता केवल उन्हीको होता है। पर अन्तिम निश्चयका स्वरूप सवके लिए एक ही होता है। ये स्त्री और पुरुष यह सोचते है कि व्याह न करना ही उनके लिए सवसे अच्छा रास्ता है, और चाहे अपनी अतरात्माके, चाहे ईश्वरके सामने यह प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि हम आजन्म अविवाहित रहकर पवित्रताका जीवन वितायेगे। विवाह हमारा कितना ही पक्का असदिग्ध कर्त्तव्य क्यो न हो, हम यह देख सकते है कि विशेष परिस्थितियोमे अविवाह-व्रत जायज होता है, क्योकि वह एक ऊचे, उदात्त उद्देश्यके लिए लिया जाता है। माइकेल एजेलो[1]को जव व्याहकी सलाह दी गई तो उसने जवाव दिया—'चित्र-कला ऐसी प्रेमिका है जो किसीकी सौत वनना नही सह सकती।'

---

[1]इटालियन चित्रकार और मूर्तिकार, जिसकी गणना दुनियाके प्रमुख कलाकारोमें है। (१४७५-१५६४ ई०)।

श्री ब्यूरोने आजीवन ब्रह्मचर्यका व्रत लेनेवालोके जितने वर्ग गिनाये है, अपने यूरोपीय मित्रोमेसे लगभग उन सभी प्रकारके लोगोके अनुभवोसे मैं इस शहादतकी पुष्टि कर सकता हूँ। यह तो केवल हमारे हिंदुस्तानकी ही विशेषता है कि हमे बचपनसे ही अपने ब्याहकी बाते सुननी पडती हैं। मा-वापके मनमे इसके सिवा न कोई दूसरा विचार है न हौसला कि उनके वच्चोकी भावरे फिर जायँ और वे उनके लिए काफी पैसा या जायदाद छोड जायँ। पहली बात उन्हे समयसे पहले ही तन-मनसे वृढा बना देती है, और दूसरी आलसी और अक्सर परोपजीवी——दूसरेकी मेहनतपर पलनेवाला होनेको प्रेरित करती है। ब्रह्मचर्य और स्वेच्छासे लिये हुए दारिद्रय-व्रतकी कठिनाइयोको हम बढा-चढाकर दिखाते और उन्हे साधारण-जनकी शक्तिके परेकी बात वताते है। कहते है कि केवल 'महात्मा' और योगी ही इन व्रतोको निभा सकते है और हम ससारियोमे उनके दर्शन कहा। वे यह भूल जाते हैं कि जिस समाजका साधारण जीवन गिरकर बहुत नीचे आ जाता है उसमे सच्चे महात्मा और योगीकी पहचान नही की जा सकती। बुराईकी चाल खरहेकी और भलाईकी कछुएकी होती है। इस न्यायसे पश्चिमकी विलासिता विद्युत्-वेगसे हमारे पास पहुचती है और अपनी वहुरगी छटासे हमारी आखोमे ऐसी चकाचौध पैदा कर देती है कि हम जीवनकी सचाइया देखनेमे असमर्थ हो जाते है। पश्चिमकी शान-शौकतकी जगमगाहट तारोसे प्रतिक्षण, और पश्चिमके मालसे हमारे देशको पाटनेवाले जहाजोसे प्रति-दिन हमारे पास पहुच रही है। उसे देखकर हम सयम-सदाचारसे लज्जित-से होने लगे है, और अपनेसे लिये हुए दारिद्रय-व्रतको अपराध मान लेनेको तैयार हो गए है। पर पच्छिमको हम हिदुस्तानमे जिस रूपमे देखते है वह बिलकुल वही चीज़ नही है। दक्षिण अफ्रीकाके गोरे जैसे मुट्ठी-भर प्रवासी भारतीयोको देखकर सपूर्ण भारतीयोके रहन-सहन और चरित्रका अदाजा लगाते है तो हमारे साथ अन्याय करते है; वैसे ही पश्चिमसे जो मानव (मनुष्य-रूप) और दूसरी तरहका माल रोज-ब-रोज हमारे यहा पहुच रहा है उसे हम सारे पाश्चात्य जगत्को नापनेका पैमाना बना ले तो हम भी उसके साथ वैसा ही अन्याय करनेके अपराधी होगे। पश्चिम मे भी पवित्रता

और नीति-वलका एक नन्हा-सा पर कभी न सूखनेवाला सोता है और जिनकी आखे परदेके पार जा सकती हैं, वे धोखा देनेवाले ऊपरी सतहके नीचे उसके दर्शन कर सकते है। यूरोपके रेगिस्तानमे हर जगह ऐसे नखलिस्तान, ऐसे हरे-भरे टुकडे मौजूद हे जहा जाकर जो चाहे जीवनके स्वच्छतम जलसे अपनी प्यास बुझा सकता है। सैकडो स्त्री और पुरुप विना ढोल पीटे, विना किसी शेखी-शानके पूरी नम्रताके साथ आजीवन ब्रह्मचर्य और गरीवी-की जिन्दगी वितानेका व्रत लेते हैं। वहुतेरे किसी प्रियजन या स्वदेशकी सेवाके लिए ही उसे ग्रहण करते हैं।

आध्यात्मिकताके वारेमे हम अक्सर इस तरहकी वाते किया करते है जैसे साधारण व्यावहारिक जीवनसे उसका कुछ लगाव ही न हो और वह हिमालयके वनोमे वसने या उसकी किसी अगम्य गुफामे समाधि लगानेवाले योगियोके लिए ही सुरक्षित हो। जिस आध्यात्मिक साधनाका हमारी रोजकी जिदगीसे लगाव न हो, जिसका उसपर कुछ असर न पडता हो, वह महज हवाई चीज है। जिन युवको और युवतियोके लिए 'यग इडिया'मे हर हफ्ते लिखा जाता है उन्हे जान लेना चाहिए कि अगर उन्हे अपने आस-पासके वायु-मडलको शुद्ध और अपनी कमजोरीको दूर करना हो तो ब्रह्म-चर्यका पालन करना उनका कर्त्तव्य है और वह यह भी जान ले कि वह उतना कठिन नही है जितना उन्हे वताया गया है।

श्री व्यूरोकी राय थोडी और सुन लीजिए—"समाज-शास्त्र हमारी जीवन-प्रणालीके विकासको ज्यो-ज्यो समझता जा रहा है त्यो-त्यो आजीवन ब्रह्मचर्यसे इद्रिय-सयमके महान् कार्यमे मिलनेवाली सहायताके मूल्यका उसे अधिकाधिक ज्ञान होता जाता है।" विवाह अगर समाजके वहुत वडे भागके लिए जीवनकी स्वाभाविक स्थिति है तो इसका अर्थ यह नही होता कि सभी व्याह कर सकते है या सवको करना ही चाहिए। जिन असाधारण जीवन-व्यवसायोकी वात हमने अभी-अभी कही है उनको अलग रखिए तो भी अविवाहित रहनेवालोके कम-से-कम तीन वर्ग तो ऐसे है जिन्हे व्याह न करनेके लिए कोई दोप नही दे सकता—(१) जो लोग—स्त्री-पुरुप—दोनो—अपने पेगेकी वाधा या पैसेकी कमीके कारण व्याहको आगेके लिए

टाल रखना जरूरी समझते है। (२) जो लोग अपने मनका वर-वधू न पा सकनेके कारण न चाहते हुए भी अविवाहित रहनेको मजबूर है। (३) जिन लोगोमे कोई ऐसा शारीरिक दोष या रोग होता है जिसके बच्चोको भी होनेका डर हो, और फलतः जिन्हे अविवाहित रहना ही चाहिए बल्कि उसका खयाल भी दिलसे निकाल देना चाहिए।

इन लोगोका यह त्याग उनका अपना सुख और समाजका हित दोनोकी दृष्टिसे आवश्यक है। क्या यह देखकर वह कम क्लेशकर और प्रसन्नता-जनक न हो जायगा कि ऐसे लोगोने भी, जो तन-मनसे पूर्ण स्वस्थ सशक्त है और जिनके पास पैसा भी काफी या काफीसे ज्यादा है, आजीवन ब्रह्मचर्य-धारणका व्रत ले लिया है। ये अपनी इच्छा और पसदसे अविवाहित रहने-वाले, जिन्होने अपना जीवन भगवान्, भगवत-भजन और आत्माकी साधना-को समर्पित करनेका सकल्प किया है, कहते है कि ब्रह्मचारीका जीवन हमारी निगाहमे जीवनकी हीन नही बल्कि अधिक ऊची अवस्था है, जिसमे मनुष्य अपनी पशु-प्रवृति या सहज प्रेरणापर सकल्पके पूर्ण प्रभुत्वकी घोषणा करता है।

वे और लिखते है—"उन नवयुवको और नवयुवतियोको, जो अभी ब्याहकी उम्रको नही पहुचे है, आजीवन ब्रह्मचर्य यह दिखाता है कि अपनी जवानीको पवित्रतापूर्वक विता देना उनके बूतेके बाहरकी वात नही है; विवाहितोको वह इसकी याद दिलाता है कि उनको दाम्पत्य जीवनके नियमोके अधीन होना चाहिए, और नैतिक उदारता या एक-दूसरेके प्रति सच्चे रहनेके धर्मके आदेशोकी अवहेलना कर किसी स्वार्थ-भावनाकी तृप्तिका यत्न, वह कितनी ही न्याय-सगत क्यो न हो, कदापि न करना चाहिए।"

फोस्टर लिखता है—"ब्रह्मचर्यका व्रत ब्याहका दरजा गिराता नही उलटे वह दाम्पत्य सम्बन्धकी पवित्रताका सबसे वडा सहारा है, क्योकि अपनी प्रकृति या पशु-वृत्तिकी अधीनतासे मनुष्यकी मुक्तिकी वह ठोस शक्ल है। वासनाओ और विकारोके हमलेके सामने वह कवचका काम करता है। वह ब्याहकी भी इस अर्थमे रक्षा करता है कि विवाहित स्त्री-पुरुषोको वह यह माननेसे रोकता है कि पति-पत्नीके रूपमे हम

दुर्ज्ञेय प्राकृतिक प्रेरणाओके गुलाम नही है, वल्कि हम स्वाधीन मनुष्यकी तरह उनसे लोहा ले और उनपर विजय प्राप्त कर सकते है। जो लोग आजीवन ब्रह्मचर्यको अस्वाभाविक या अनहोनी वात वताकर उसकी खिल्ली उडाते है वे जानते नही कि वे वास्तवमे क्या कर रहे है। वह यह नही देख पाते कि जो विचार-धारा उन्हे ब्रह्मचर्यका मजाक उडानेको प्रेरित कर रही है वह उन्हे व्यभिचार और वहुपत्नीत्व या वहुपतित्वके गढेमे गिराकर रहेगी। प्रकृतिके आदेशका पालन अगर अनिवार्य है, उसकी उपेक्षा मनुष्यके वूतेके वाहरकी वात है, तो विवाहित स्त्री-पुरुपोसे सदाचारयुक्त जीवनकी आशा कैसे रखी जा सकती है? वे यह भी भूल जाते है कि वैसे व्याहोकी सख्या कितनी वडी होती है जिनमे पति-पत्नीमेसे किसी एकको दूसरेके रोग या दूसरे प्रकारकी असमर्थताके कारण महीनो, वरसो या आजीवन सच्चे ब्रह्मचर्यका पालन करना पडता है। अकेले एक इसी कारणसे सच्चे एक-पत्नी-व्रत या एक-पति-व्रतको हम ब्रह्मचर्यके वरावर ही दर्जा देते है।"

७ : विवाह धार्मिक संस्कार है

आजीवन ब्रह्मचर्यके अध्यायके वाद कई अध्यायोमे विवाहके धर्मरूप और अविच्छेद्य होनेपर विचार किया गया है। श्री व्यूरो यद्यपि नैष्ठिक ब्रह्मचर्यको सर्वश्रेष्ठ जीवन मानते है, पर साधारण जनके लिए उसका पालन शक्य नही, अत ऐसे लोगोके लिए विवाहको धर्मरूप मानना होगा। उन्होने दिखाया है कि व्याहका उद्देश्य और मर्यादा ठीक तौरसे समझ ली जाय तो गर्भ-निरोधके साधनोका समर्थन किया ही नही जा सकता। आज जो समाजमे सर्वत्र नैतिक अराजकताका राज दिखाई दे रहा है वह दूषित नीति-शिक्षाकी ही देन है। व्याहका मजाक उडानेवाले 'प्रगतिशील' लेखकोके विचारोकी समीक्षा करनेके वाद वह लिखते है—"इन नीति-शिक्षक वननेवालो और लेखकोमे वहुतेरे नीति-ज्ञानसे विलकुल कोरे और कुछ साहित्य-सेवाकी सच्ची भावनासे भी रहित है। इसे आनेवाली पीढियोका सौभाग्य समझना चाहिए कि इनकी यह राय हमारे समयके सच्चे मानस-शास्त्रियो

और समाज-शास्त्रियोका मत नही है। अखबार, कहानी, उपन्यास और नाटक-सिनेमाकी शोर-शराबे वाली दुनिया और उस जगत्का, जहां विचारो-का उत्पादन और हमारे मानस और सामाजिक जीवनके गूढ तत्त्वोका सूक्ष्म अध्ययन होता है, बिलगाव जितना पक्का और पूरा यहा दिखाई देता है उतना और कही नही है।"

श्री ब्यूरो स्वच्छन्द प्रेमकी दलीलको अस्वीकार करते है। मोदेस्तॉकी तरह वह भी मानते है कि "विवाह स्त्री और पुरुषका मिलकर एक हो जाना, सारी जिन्दगीका साथ, और दिव्य तथा मानव न्याय्य अधिकारोकी साझेदारी है। वह 'महज कानूनी इकरार' नही बल्कि एक 'सस्कार', एक धार्मिक कर्त्तव्य है। उसने "गोरिल्लाको सीधा खडा होना सिखाया है—बन-मानसको मनुष्य बनाया है।" यह सोचना भारी भ्रम है कि विधिवत् विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए सबकुछ जायज है। और पति-पत्नी सन्तान्नो-त्पादन-विषयक नैतिक सयमका पालन करते हो तो भी उनका मैथुनके अपनेको रुचनेवाले अन्य उपायोको अपनाना नाजायज है। यह रोक खुद उनके हितके लिए भी उतनी ही आवश्यक है जितनी समाजके हितके लिए, जिसका पोषण और वर्धन ही उनके पति-पत्नी बननेका उद्देश्य होना चाहिए। उनका कहना है कि ब्याह काम-वासनाको जिस कडे बधनमे बाधता है उसको व्यर्थ करनेके जो नित नये रास्ते निकल रहे है वे शुद्ध प्रेमके लिए भारी खतरा है। इस खतरेको दूर करनेका उपाय केवल यही है कि हम काम-वासनाकी तृप्ति उस हदके अदर ही रहकर करनेकी सावधानी रखे, जो खुद ब्याहके उद्देश्यने ही बाध दी है।

सन्त फ्रासिस कहते है—"उग्र औषधका व्यवहार हमेशा खतरनाक होता है, क्योकि अगर वह जरूरतसे ज्यादा खा ली गई या ठीक तौरसे न बनी तो उससे भारी अपकार होता है। ब्याह कामुकताकी दवा बताया जाता है और निस्सन्देह वह उसकी बहुत बढिया दवा है, पर साथ ही बहुत तेज काम करनेवाली दवा है, इसलिए सम्हालकर काममे न लाई गई तो बहुत खतरनाक भी होती है।"

श्री ब्यूरो इस मतका खण्डन करते है कि व्यक्तिको इसकी स्वतन्त्रता

है कि जव चाहे विवाह-वन्धनमे बधे या उसे तोड फेके, या उसकी जिम्मेदारिया न उठाते हुए मनमाना विषय-सुख भोगे। वह एक-पत्नी-व्रतपर जोर देते है और कहते है—

"यह कहना गलत है कि व्यक्ति व्याह करने या उसकी स्वार्थबुद्धि कहे तो अविवाहित रहनेको स्वतन्त्र है। यह बात तो और भी गलत है कि यथाविधि-विवाहित स्त्री-पुरुष, आपसकी रजामन्दीसे, जब चाहे अपना विवाह-वधन तोड सकते है। एक-दूसरेको चुनते समय वे स्वतन्त्र थे और उनपर फर्ज है कि पूरी जानकारी और अच्छी तरह सोच-विचार कर लेनेके वाद ही यह चुनाव करे, तथा उसी आदमीको अपना जीवन-सगी वनाये जिसके विषयमे उन्हे विश्वास हो कि जिस नये जीवनमे वे प्रवेश करने जा रहे है उसकी जिम्मेदारियोका बोझ वे उसके साथ उठा सकेगे। पर ज्यो ही सस्कार और व्यवहार-रूपमे विवाह सम्पन्न हुआ, पति-पत्नी शारीरिक अर्थमे पति-पत्नी वने कि उनका काम उन दो आदमियोकी वीचकी ही बात नही रह जाता, उसका असर सब ओर वहुत दूर-दूर तक पडने लगता है, और उससे ऐसे परिणाम होने लगते है जिनका पहलेसे अनुमान करना कठिन है। हो सकता है कि ये नतीजे इस अराजक व्यक्तिवादके युगमे खुद पति-पत्नीके ध्यानमे न आये, पर ज्यो ही गार्हस्थ्य-जीवनकी स्थिरताको धक्का लगा, ज्यो ही व्याह एकनिष्ठ दाम्पत्य जीवनके हितकर सयमके वदले चचल काम-वासनाकी तृप्तिका साधन बना, त्यो ही सारे समाजको जो घोर कष्ट मिलने लगता है वह उन परिणामोके महत्त्वका यथेष्ट प्रमाण है। जो आदमी इन व्यापक परिणामो और इस सूक्ष्म सम्बन्ध-जालको समझता है उसके लिए इस ज्ञानका कुछ अधिक महत्त्व नही कि चूंकि मनुष्यके वनाये सारे धर्म-विधान विकासके विश्व-व्यापी नियमके अधीन है इसलिए औरोकी तरह विवाह-व्यवस्थामे भी आवश्यक परिवर्तन होना ही चाहिए। कारण, यह कि यह वात शका, सन्देहसे परे है कि इस दिशामे हमारा प्रगतिका रूप केवल यही हो सकता है कि व्याहका वन्धन और कडा हो जाय। आज विवाहके जन्मभरका वन्धन होने, कभी तोडे न जा सकनेपर जो हमले किये जा रहे है और पति-पत्नीको आपसका रजामन्दीसे चाहे जब तलाक देनेका

अधिकार मिलनेकी मागकी जा रही है उससे इस बन्धनका समाजके हितके लिए आवश्यक होना और अधिक स्पष्ट हो जायगा। और ज्यो-ज्यो दिन वीतेंगे यह स्पष्ट होता जायगा कि यह नियम जो सदियो तक, जब समाज उसके सामाजिक मूल्यको पहचान न सकता था, धर्मका एक अनुशासन-मात्र बना रहा, व्यक्तिके लिए भी उतना ही हितकर है जितना समाजके लिए।

"विवाह-बन्धनके अटूट होनेका नियम हमारा शृगार, बडप्पनका दिखावामात्र, नही है, वह वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके सबसे नाजुक पुरजोके साथ जुडा हुआ है। और चूकि लोग क्रम-विकासकी बाते किया करते है, उन्हे यह सोचना चाहिए कि मानव-जातिकी यह अनन्त प्रगति, जिसे सभी इष्ट मानते है, किस बातपर अवलबित है।

"फोर्स्टर लिखता है—अपनी जिम्मेदारियोका खयाल बढना, व्यक्तिको अपनेसे नियम-बधनमे बधनेकी शिक्षा मिलना, धैर्य और उदारताकी वृद्धि, स्वार्थ-भावनाका अकुशमे रहना, क्षणिक विकारो-वासनाओके उपद्रवसे रागात्मक जीवनकी रक्षा होना—ये सभी ऐसी बाते है जिन्हे हम उच्च सामाजिक सस्कृतिके लिए सदा अनिवार्य और इस कारण आर्थिक परिस्थितिमे भारी उलट-फेर होनेसे होनेवाली गडवडोका असर उनपर न पडने देना अपना कर्तव्य मान सकते है। सच तो यह है कि आर्थिक प्रगति समाजकी सामान्य प्रगतिकी अनुगामिनी होती है, इसलिए कि आर्थिक सुरक्षा और सफलता अन्तमे हमारे सामाजिक सहयोगकी सचाई पर ही अवलवित होती है। जो आर्थिक परिवर्तन इन बुनियादी शर्तोकी उपेक्षा करता है वह अपनी जड अपने ही हाथो काट देता है। अत· अगर हमे काम-सम्बन्धकी विभिन्न रीतियोके गुण-दोषका नैतिक और सामाजिक दोनों दृष्टियोसे विचार करना है, तो हमे यह देखना होगा कि उसकी कौन-सी रीति, इस प्रकार सम्पूर्ण सामाजिक जीवनके पोपण और दृढीकरणके लिए सर्वोत्तम है। कौन जीवनकी भिन्न-भिन्न मजिलोमे व्यक्तिके अन्दर अपने दायित्वका अधिक-से-अधिक ज्ञान और आत्म-त्यागका भाव उत्पन्न कर सकता है, उसकी असयत स्वार्थ-परता और चचल भोग-वासनापर कडा-से-कडा अकुश रख सकता है? इन प्रश्नोका उत्तर ही इस विचारमे निर्णायक होगा।

प्रश्नपर इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो इसमे तनिक भी सन्देह नही कि एकनिष्ठ विवाह, एक ही स्त्रीको पत्नी और एक ही पुरुषको पति-रूपमे स्वीकार करनेका नियम हर अधिक उन्नत सभ्यताका स्थायी अग होना ही चाहिए, क्योकि समाजके हित और व्यक्तिको सयमकी शिक्षा देनेकी दृष्टिसे वह वहुत ही मूल्यवान् है। सच्ची प्रगति विबाह-वधनकी गाठको ढीली करनेके वजाय और कडी कर देगी। .कुटुम्व मनुष्यके अपने-आपमे सामाजिक जीवनकी योग्यता उत्पन्न करनेके सारे प्रयत्नका, अर्थात् जिम्मेदारी, सहानुभूति, मनोनिग्रह, एक-दूसरेके प्रति सहिष्णुता रखने और एक-दूसरेको शिक्षा देनेकी सारी तैयारीका केन्द्र है। वह इस आसनपर इसलिए विराज रहा है कि वह हमारे जीवनमे सदा वना रहता है, उसके साथ हमारा सम्वन्ध अविच्छेद्य है, अटूट है और इस स्थायित्वके कारण साधारण कुटुम्व-जीवन और व्यवस्थाओकी वनिस्वत अधिक गहराई वाला, अधिक स्थिर और मनुष्य-मनुष्यके परस्पर व्यवहारके लिए अधिक उपयुक्त है। एकनिष्ठ विवाहको हम मनुष्यके सारे सामाजिक जीवनका हृदयरूप कहे तो अनुचित न होगा।"

आगस्त कातेके कथनानुसार—"हमारा चित्त इतना चचल है कि हमारी छन-छनमे वदलनेवाली वासनाओको अकुशमे रखनेके लिए समाजको हस्तक्षेप करना ही होगा। नही तो वे मनुष्यके जीवनको निकम्मे और निरर्थक अनुभवोकी शृखला-मात्र वना देगी।"

डाक्टर तूलूज लिखते है—"यह भ्रम वहुतेरे स्त्री-पुरुपोके दाम्पत्य जीवनको दु खमय वना देता है कि काम-वासना दुर्दम प्रवृत्ति है जिसकी तृप्ति जैसे भी वने करनी ही होगी। पर मनुष्य-स्वभावकी विशेपता यही है और उसके विकासका प्रकट उद्देश्य भी यही मालूम होता है कि अपनी प्रकृतिकी मागो, अपनी हाजतोकी हुकूमतसे दिन-दिन अधिक स्वतन्त्र होता जाय। वच्चा अपनी स्थूल आवश्यकताओको रोकना, दवाना सीखता है, वय प्राप्त स्त्री-पुरुप अपने मनोविकारोपर विजय प्राप्त करना। सुशिक्षा-की यह योजना कोरी कल्पनाकी उडान या व्यावहारिक जीवनके वाहरकी वात नही है। हमारी प्रकृतिकी वनावट यही कहती है कि हम अपने सकल्प

या इच्छा-शक्तिके ही अधीन रहे—जो करना चाहे वही करे। जिसे हम 'मिजाज' या स्वभाव कहा करते है वह आम तौरसे महज हमारी कमजोरी होता है। जो आदमी सचमुच वलवान है वह जानता है कि कव और कैसे अपनी शक्तियोसे काम लेना होता है।"

८ : उपसंहार

अव इस लेख-मालाको समाप्त करना चाहिए। श्री व्यूरोने मालथस[1]के सिद्धान्तकी जो समीक्षा की है उसका अनुसरण हमारे लिए आवश्यक नही है। मालथसने इस सिद्धातका प्रतिपादन कर अपने जमानेके लोगोको चौंका दिया था कि दुनियाकी आवादी हदसे ज्यादा हो रही है और मानव-वर्गको लुप्त होनेसे वचाना हो तो हमे जरूरतसे ज्यादा वच्चे पैदा करना वद करना होगा। फिर भी उसने इद्रिय-सयमका समर्थन किया था। पर उसके सिद्धातके नए अनुयायी कहते है कि अपनी वासनाओसे लडना वेकार वल्कि हानिकारक है। हमे ऐसे रासायनिक द्रव्यो और आलोसे काम लेना चाहिए जिससे हम उनकी तृप्ति तो करते रहे पर उसके नतीजोसे वच जाय। श्री व्यूरो आवश्यकतासे अधिक वच्चे पैदा न करनेके सिद्धातको स्वीकार करते है, पर वह कहते है कि यह काम इद्रिय-सयमके सहारे किया जाय, और जैसा कि हम देख चुके है, दवाओ, यन्त्रो, आलोके उपयोगका जोरोसे विरोध करते है। इस समीक्षाके वाद उन्होने श्रमिक वर्गो, मेहनत-मजदूरी करने-वालोकी दशा और उनमे वच्चोके जन्मके अनुपात पर विचार किया है और अन्तमे उन साधनोकी समीक्षा की है जिनसे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और मनुष्यताके नामपर आज जो भयानक अनीति फैल रही है उसकी रोक-थाम हो सकती है। उन्होने लोकमतको ठीक रास्ता दिखाने और उसपर चलनेके लिए सघटित प्रयत्न होने और इसमे राज्यके दखल देने—कानूनसे रोकथाम करनेकी भी सलाह दी है। पर अन्तमे यही कहा है कि जन-समाजमें धर्म-भावका जगना ही इस रोगका सच्चा इलाज है। नीति-नाशकी वाढ

---

[1] टामस रावर्ट माल्थस, ब्रिटिश अर्थ-शास्त्री, (१७६६-१८३४ ई०)

मामूली उपायोसे नही रोकी जा सकती, खासकर उस दशामे जब व्यभिचार, सद्‌गुण और सदाचार हमारे मनकी दुर्बलता, अध-विश्वास या असदाचार भी बनाया जाने लगा हो। कृत्रिम साधनोसे गर्भ-निरोधके कितने ही समर्थक नि स्सदेह सयमको अनावश्यक बल्कि हानिकारक भी बताते है। ऐसी अवस्थामे धर्मकी सहायता ही जायज मान लिये गए पापको रोकनेमे समर्थ हो सकती है। धर्मको यहा सकीर्ण साम्प्रदायिक अर्थमे न लेना चाहिए। सच्चा धर्म व्यष्टि और समष्टि दोनोके जीवनमे जितनी उथल-पुथल मचाता है उतना और कोई चीज नही मचा सकता। धर्म भावके जागनेका अर्थ व्यक्तिके जीवनमे क्रान्ति होना, उसका रूप बदल जाना, उसे नया जीवन मिलना होता है। ओर कोई ऐसी महाशक्ति ही फ्रासको विनाशके उस गढेमे गिरनेसे बचा सकती है जिसकी ओर श्री ब्यूरोकी रायमे वह अग्रसर हो रहा है।

पर अब हमे श्री ब्यूरो ओर उनकी पुस्तकसे छुट्टी लेनी ही होगी। फ्रासकी स्थिति हिंदुस्तानकी तरह नही है, हमारी समस्या बहुत कुछ भिन्न है। गर्भ-निरोधके साधनोका उपयोग अभी यहा देश-व्यापी नही बना है। यह बुराई अभी अकेले शिक्षित-वर्गमे प्रविष्ट हुई है और उसे भी छू भर पाई है। भारतमे उनका व्यवहार होनेके लिए मेरी समझसे एक भी कारण नही बताया जा सकता। मध्यम-वर्गके दम्पति क्या सचमुच बच्चोकी बाढसे परेशान है? कुछ व्यक्तियोके उदाहरण यह साबित करनेके लिए काफी नही हो सकते कि मध्यवित्त वर्गमे जरूरतसे बहुत ज्यादा बच्चे पैदा हो रहे है। यहा तो मै देखता हू कि विधवाओ और बालवधुओके लिए ही इन साधनोके उपयोगकी आवश्यकता बताई जाती है। इस प्रकार विधवाओके विषयमे तो उनका गुप्त सहवास नही, बल्कि अवैध सन्तानकी उत्पत्ति रोकना हमे अभीष्ट है और बाल वधुओके मामलेमे कोमल वयकी बालिकापर बलात्कार होना नही, बल्कि उसे गर्भ रह जाना ही वह चीज है जिससे हम डरते है। इसके बाद रह जाते है रोगी, दुर्बल, पुरुषोचित गुणोसे रहित युवक, जो चाहते है कि अपनी पत्नी या पराई स्त्रीके साथ शक्ति-भर विषय-भोग करते रहे, पर इन पाप-कर्मके परिणाम उन्हे न भुगतने पडे।

उनसे मैं यह कहनेका साहस कर सकता हूं कि भारतीय जनताके इस महा-समुद्रमे ऐसे स्त्री-पुरुष इने-गिने ही निकलेगे, जो बल-वीर्य सम्पन्न होते हुए भी चाहते है कि हम सहवासका सुख तो ले पर बच्चोका बोझ उठानेसे बच जाय। अपने उदाहरणोका ढिढोरा पीटकर उन्हे इस क्रियाकी आवश्यकता सिद्ध करनेका यत्न और उसकी वकालत न करनी चाहिए, जिसका व्यापक प्रचार इस देशमे हुआ तो यहा के युवक वर्गका सर्वनाश होना निश्चित है। अति कृत्रिम शिक्षा-प्रणालीने हमारे युवकोको शरीर और मनके बलसे यो ही वचित कर रखा है, हममेंसे बहुतेरे बचपनमे ब्याहे हुए मा-बापकी सतान हैं। स्वास्थ्य और शौचके नियमोकी उपेक्षाने हमारे शरीरको घुन लगा दिया है। हमारी गलत, पोषक तत्त्वोंसे रहित और उत्तेजक मसालोंसे भरी खूराकने हमारी पाचन-शक्तिका दिवाला निकाल दिया है। अत हमे गर्भ-निरोधके साधनोसे काम लेनेकी शिक्षा और अपनी पशु-वृत्तिकी तृप्तिमे सहायताकी आवश्यकता नही है। बल्कि उस वासनाको वशमे करने और कुछ लोगोको जिन्दगी-भरके लिए ब्रह्मचर्य-व्रत ले लेनेकी शिक्षा लगातार मिलते रहनेकी आवश्यकता है। उपदेश और उदाहरण दोनोसे हमे यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि ब्रह्मचर्य सर्वथा चलने लायक, और अगर हमे तन-मनसे अक्षम बनकर नही जीना है तो अत्यावश्यक व्रत है। यह बात पुकार-पुकारकर हमारे कानोंमे डाली जानी चाहिए कि अगर हमे बौनोकी जाति नही बनना है तो जो प्राण-शक्ति हमारे पास बच रही है और जिसे हम नित्य नाश कर रहे हैं उसका सचय करना और उसे बढानेका यत्न करना होगा। हमारी युवती विधवाओंको गुप्त व्यभिचारकी शिक्षाकी नही, बल्कि इस उपदेशकी आवश्यकता है कि साहसके साथ सामने आकर समाजसे पुनर्विवाहकी माग करे, जिसका उन्हे भी उतना ही अधिकार है जितना विधुर युवकोंको। हमे ऐसा लोकमत बनाना है जिसमे अबोध, अवय-प्राप्त बच्चोंका ब्याह नामुमकिन हो जाय। हमारे विचार-स्वरूपकी अस्थिरता, हमारा कड़ी [illegible] काम करनेसे भागना, हमारे शरीरका कच्चा और लगातार [illegible] अयोग्य होना, बडी शानसे शुरू किये गए हमारे कामोंका बैठ जाना, हममें [illegible] मौलिकताका अभाव, यह सब हमारे यहा आम तौ

रहा है, और इनका प्रधान कारण अत्यधिक वीर्य-नाश ही है। मै आशा करता हू कि नवयुवक अपने मनको यह भुलावा न देगे कि बच्चे न जनमे तो सभोगसे कोई हानि नही होती, कोई कमजोरी नही आती। सच यह है कि गर्भ-स्थिति पर अस्वाभाविक रोक लगाकर किया जानेवाला सभोग उस सभोगसे कही अधिक शक्तिका क्षय करता है, जो उस कामकी जिम्मेदारी पूरी तरह समझते हुए किया जाय।

"मन एव मनुष्याणां कारण बंधमोक्षयोः"

हमारा मन यह मान ले कि काम-वासनाकी तृप्ति करनेमे कोई हानि और पाप नही है तो हम उसकी लगाम ढीली कर देना पसन्द करेगे और फिर उसको रोकनेकी शक्ति ही हममे न रह जायगी। पर अगर हम अपने-आपको यह समझाये कि इस प्रकारका विषय-भोग हानिकर, पापमय और अनावश्यक है और उसकी इच्छा दबाई जा सकती है, तो हमे मालूम होगा कि अपने मन-इन्द्रियोको कावूमे रखना सर्वथा शक्य बात है। नई सचाई और तथोक्त मानव स्वाधीनताके बहाने मदमत्त पश्चिमी स्वच्छन्द कामुकताकी जो कडी शरावके करावे हमारे सामने लाकर धर रहा है उससे हमे होशियार रहना चाहिए। उलटा अपने पुरखोका प्राचीन ज्ञान अव हमारे लिए बेकार हो गया हो तो पश्चिमकी उस शात-गम्भीर वाणीको ही सुने जो वहाके ज्ञानीजनोके बहुमूल्य अनुभवोसे छनकर जब-तब हमतक पहुच जाया करती है।

चार्ली[1] एड्रूयजने श्री विलियम लाफ्टूस हेयरका एक ज्ञान-गर्भ लेख मेरे पास भेजा है जो 'ओपेन कोर्ट' नामक मासिक पत्रके मार्च १९२६ के अकमे प्रकाशित हुआ था। लेखका विषय 'जनन और पुनर्जनन' है और वह तर्क-युक्तियोसे पूर्णपोषित शास्त्रीय लेख है। लेखकने दिखाया है कि सभी सप्राण पिण्डो, सभी प्राणियोकी देहोमे दो तरहकी क्रियाए सदा होती रहती है—शरीरको बनानेके लिए भीतरी उत्पादन और वश-रक्षाके लिए बाह्य उत्पादन। पहली

---

[1] स्वर्गीय श्री सी० एफ० एड्रूज

क्रियाको वह पुनर्जनन (रीजेनरेशन) और पिछलीको जनन (जेन-रेशन) कहता है। "पुनर्जननकी क्रिया--भीतरी उत्पादन व्यक्ति-जीवनका आधार है, इसलिए आत्यावश्यक और मुख्य कार्य है। जनन-क्रिया कोषोके आधिक्यका परिणाम है, इसलिए गोण कार्य है। .. जीवनका नियम है कि पहले पुनर्जननके लिए बीज-कोषोका पोषण किया जाय, फिर जननके लिए। पोपणकी कमी हो तो पुनर्जननकी क्रिया पहले होगी और जननका काम वन्द रखा जायगा। इससे हम जान सकते है कि जनन क्रियाके विरामकी जड कहा है और वह कहासे चलकर हमारे ब्रह्मचर्य और तपस्याके जीवन तक पहुची है। आन्तरिक उत्पादनकी क्रिया कभी वन्द रह ही नही सकती, उसके वन्द रहनेका अर्थ मृत्यु होगा। यह सूत्र हमे वताता है कि "मृत्यु अपने स्वाभाविक रूपमे क्या चीज है।" पुनर्जनन क्रियाकी शास्त्रीय विवेचना-के वाद श्री हेयर कहते है--"सभ्य समाजमे स्त्री-पुरुषका सयोग अगली पीढीको पैदा करनेकी आवश्यकतासे कही अधिक होता है। इससे आन्तरिक पुनर्जनन-शरीरके पोषणकी क्रियामे वाधा पडती है और इसका फल रोग, मृत्यु ओर दूसरी खराविया होती है।"

जिस आदमीको हिन्दू दर्शनका थोडा भी परिचय होगा उसे श्री हेयरके निवन्धके इस पैराग्राफका भाव समझानेमे कठिनाई न होगी--

"पुनर्जनन यान्त्रिक क्रिया--वेजान कलके पुरजोका हिलना न है और न हो सकता हे। वह तो जीव-सृष्टिमे कोषके प्रथम विभाजनकी तरह प्राण या जीवनका अस्तित्व वतानेवाला व्यापार है। अर्थात् वह कर्तामे वुद्धि और सकल्पकी शक्ति होनेकी सूचना देता है। प्राण-तत्त्वका विभाजन और विलगाव--उसका विशिष्ट कार्योकी योग्यता प्राप्त करना--शुद्ध यान्त्रिक क्रिया है, यह वात तो सोची भी नही जा सकती। इसमे सन्देह नही कि जीवनकी ये मूलभूत क्रियाए हमारी वर्तमान चेतनासे इतनी दूर जा पडी है कि कोई वुद्धिकृत या सहज सकल्प उनका नियमन करता है, यह नही जान पाता। पर क्षण भरके विचारसे ही यह वात स्पष्ट हो जायगी कि पूरी वाढको पहुचे हुए मनुष्यका सकल्प जिस तरह उसकी वाह्य चेष्टाओ और क्रियाओका सचालन, वुद्धिके निर्देशानुसार करता है, वैसे ही यह भी मानना

होगा कि आरभमे होनेवाली शरीरके क्रमिक संघटनकी क्रियाए भी, अपनी परिस्थितिकी सीमाओके अदर, एक प्रकारकी बुद्धिकी रहनुमाईमे काम करनेवाली एक प्रकारकी इच्छा-शक्ति या सकल्पके द्वारा परिचालित होती है। इस बुद्धिको मानस शास्त्रके पडित अचेतन मन या अन्तर-चेतना कहने लगे है। यह हमारी व्यष्टि-सत्ता, हमारे आत्माका ही एक अग है जो हमारे साधारण चिन्तनसे लगाव न रखते हुए भी अपने निजके कर्तव्योके विषयमे अतिशय जागरूक और सावधान रहता है। हमारी बाह्य चेतना सुषुप्ति, बेहोशी आदिमे सो जाती है, पर यह कभी एक क्षणके लिए भी आखे नही मूदती।"

केवल वासना-तृप्तिके लिए किये जानेवाले सभोगसे हमारी सत्ताके अचेतन और अधिक स्थायी अगकी जो लगभग अपूरणीय हानि हो रही है उसकी माप-तौल कौन कर सकता है? पुनर्जननका फल मरण है। "मैथुन पुरुषके लिए मूलत क्षयकी क्रिया—मृत्युकी ओर प्रगति है, और प्रसव स्त्रीके लिए।" इसीलिए लेखकका कहना है कि "पूर्ण ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचर्य-सदृश सयमके पालनका पुरस्कार बलवीर्य और आरोग्य होता है।" "बीजकोषोको शरीर-पोषणके कार्यसे हटाकर सन्तानोत्पादन या केवल वासना-तृप्तिके लिए व्यय करना शरीरके अवयवोको उस पूजीसे वचित कर देता है जिसमे वे अपनी रोजकी छीजन पूरी कर सकते है। फलत कुछ दिनोमे वे अशक्त हो जाते है।" "ये शारीरिक तथ्य ही व्यक्तिके काम-सयमका आधार है, जो हमे वासनाके पूर्ण दमनकी नही तो उसकी सयत तृप्तिकी शिक्षा अवश्य देते है—कम-से-कम इतना तो बता ही देते है कि सयमका मूल कहा है।

लेखक यन्त्रो और दवाओकी सहायतासे गर्भ-निरोधका विरोधी है यह तो हम समझ ही सकते है। उसका कहना है—"इससे अपनी वासनाको दबानेके लिए कोई बुद्धिसगत हेतु नही रह जाता, और यह पति-पत्नीके लिए जबतक भोगेच्छा निर्बल नही हो जाती या बुढापा नही आ जाता, तबतक वीर्य-नाश करते रहनेका दरवाजा खोल देता है। इसके सिवा इसका बुरा असर वैवाहिक सबधके बाहर भी पडे बिना नही रहता। यह

अनियमित, अवैध और अफलजनक सतानरहित सम्बन्धका रास्ता खोल देता है, जो आधुनिक उद्योग-नीति, समाजशास्त्र और राजनीतिकी दृष्टिसे खतरेसे भरी हुई वात है। पर यहा मैं उन हानियोकी चर्चा नही कर सकता। इतना ही कहना काफी होगा कि गर्भ-निरोधके साधनोके उपभोगसे विवाहित या अविवाहित दोनो दशाओमे काम-वासनाकी असयत तृप्तिका सुभीता हो जाता है और शरीर-शास्त्रकी जो दलीले मैंने ऊपर दी है वे ठीक हो तो उससे व्यक्ति और समाज दोनोकी हानि होनी ही चाहिए।

श्री व्यूरोने जिस वाक्यसे अपनी पुस्तक समाप्त की है, वह इस योग्य है कि हर एक भारतीय युवक उसे अपने हृदयकी पटियापर लिख ले—

"भविष्य उन्ही राष्ट्रोंका है जो सदाचारी है।"

: २ :

एकान्तकी बात

ब्रह्मचर्य-पालनके विषयमे तरह-तरहके प्रश्न करनेवाले इतने पत्र मेरे पास आते है और इस विषयमे मेरे विचार इतने पक्के है कि अपने अनुभवके फल पाठकोके सामने न रखना उचित न होगा, खासकर राष्ट्रके जीवनकी इस अति नाजुक घडीमे।

ब्रह्मचर्य सस्कृत भाषाका शब्द है जिसका अर्थ उसके अग्रेजी पर्याय 'सेलिबेसी' (अविवाह-व्रत)से अधिक व्यापक है। ब्रह्मचर्यके मानी है सम्पूर्ण इन्द्रियोपर पूर्ण अधिकार। पूर्ण ब्रह्मचारीके लिए कुछ भी अशक्य नही। पर यह आदर्श स्थिति है जिस तक विरले ही पहुँच पाते है। इसे ज्यामितिकी रेखा कह सकते है, जिसका अस्तित्व केवल कल्पनामे होता है, दृश्य रूपमे कभी खीची ही नही जा सकती। फिर भी रेखा-गणितकी यह एक महत्त्वपूर्ण परिभाषा है जिससे बडे-बडे नतीजे निकलते है। इसी तरह, हो सकता है, पूर्ण ब्रह्मचारी भी केवल कल्पना-जगत्‌मे ही मिल सकता हो। फिर भी अगर हम इस आदर्शको सदा अपने मानस-नेत्रोके सामने न रखे तो हमारी दशा बिना पतवारकी नाव-जैसी हो जायगी। ज्यो-ज्यो हम इस काल्पनिक स्थितिके पास पहुचेगे, त्यो-त्यो अधिकाधिक पूर्णता प्राप्त करते जायगे।

पर तत्काल मै वीर्य-रक्षाके सकुचित अर्थमे ही ब्रह्मचर्यपर विचार करना चाहता हू। मै मानता हू कि आध्यात्मिक पूर्णताकी प्राप्तिके लिए मन, वाणी और कर्म सबमे पूर्ण सयमका पालन आवश्यक है और जिस राष्ट्रमे ऐसे स्त्री-पुरुष न हो वह रक है, पर तत्काल मेरा प्रयोजन इतना ही है कि हमारा राष्ट्र इस समय विकासकी जिस मजिलसे गुजर रहा है उसमे ब्रह्मचर्यको एक अल्पकालिक आवश्यकता सिद्ध करूँ।

रोग, अकाल और कगालीमे हमारा हिस्सा औरोसे बडा है। हमारे लाखो भाइयोको तो रोज भूखे पेट ही सोना पडता है। गुलामोकी चक्कीमे हम ऐसे कौशलके साथ पीसे जा रहे है कि बहुतोको तो पिसनेका पता तक नही चलता। यद्यपि आर्थिक, मानसिक और नैतिक शोषणका तिहरा क्षय हमे खा रहा है, फिर भी हम यही मानते है कि हम आजादीकी राहमे बराबर आगे बढते जा रहे है। दिन-दिन बढनेवाला फौजी खर्च, लकाशायरके कारखानो और दूसरे ब्रिटिश-व्यवसायोके लाभकी दृष्टिसे निर्धारित कर-नीति और राज्यके विविध-विभागोके सचालनमे बरती जानेवाली शाहाना फिजूलखर्ची—यह सब भारतका ऐसा भार बन रहा है जो उसकी गरीबी बढाता और रोगोसे लडनेकी शक्ति घटाता जा रहा है। श्रीगोखलेके शब्दोमे शासनके इस ढगने राष्ट्रकी बाढ इतनी मार दी है कि हमारे बडे-से-बडे आदमी भी कमर सीधी रखकर खडे नही हो सकते। अमृतसरमे तो हिन्दुस्तानियोको पेटके बल रेगना भी पडा। पजाबका जान-बूझकर किया हुआ अपमान—और हिन्दुस्तानके मुसलमानोको दिये हुए वचनको उद्धतपनके साथ तोडनेके लिए माफी मागनेसे इन्कार हमारे नैतिक दारिद्र्यकी ताजा मिसाले है। ये घटनाए सीधे हमारी आत्मापर आघात कर रही है। इन दोनो अन्यायोको हमने सह लिया तो राष्ट्रको नपुसक बना देनेकी क्रियाकी पूर्ति हो जायगी।

क्या हम लोगोके लिए जो स्थितिको जानते, समझते है, ऐसे चरित्र-नाशक वायु-मण्डलमे बच्चे पैदा करना मुनासिब है ? जबतक हम दीन-असहाय, रोगी और क्षुधा-पीडित है तबतक हम बच्चे पैदा करके केवल गुलामो और मरियलोकी ही तादाद बढायेगे। भारत जबतक स्वाधीन और ऐसा राष्ट्र नही हो जाता, जो साधारण ही नही अकालके समय भी अपना पेट भर लेनेमे समर्थ हो और जो मलेरिया, हैजा, इनफ्लुएजा और दूसरी अनेक बीमारियोसे अपना बचाव करना जानता हो, तबतक हमे बच्चे पैदा करनेका हक नही है। इस देशमे किसीके घर बच्चे पैदा होनेकी खबर सुनकर मुझे जितना दुख होता है उसे मै पाठकोसे छिपा नही सकता। [illegible] [illegible] सन्तानोत्पादन रोकनेकी सम्भावनापर मैने बरसो

विचार किया है और इस सभावनासे मुझे सन्तोष हुआ है। हिन्दुस्तान आज अपनी मौजूदा आवादीका बोझ उठानेके काबिल भी नही है, इसलिए नही कि उसकी आवादी बहुत ज्यादा बढ गई है बल्कि इसलिए कि उसकी गरदन ऐसे विदेशी राजके जुएके नीचे है जिसने उसके जीवन-रसको अधिकाधिक चूसते जाना ही अपना धर्म मान रखा है।

सन्तानोत्पादन किस तरह रोका जा सकता है ? यह होगा यूरोपमे काममे लाये जानेवाले नीति-नाशक बनावटी प्रतिबधोसे नही, वल्कि नियमवद्ध जीवन और मन-इन्द्रियोको काबूमे रखनेके अभ्याससे। मा-बापका फर्ज है कि अपने बच्चोको ब्रह्मचर्य-पालनकी शिक्षा दे। हिन्दू शास्त्रोके अनुसार लडकेका व्याह कम-से-कम २५ सालकी उम्रमे होना चाहिए। अपने देशकी माताओसे अगर हम यह मनवा सके कि बालक-वालिकाओको विवाहित जीवनके लिए तैयार करना पाप है तो इस देशमे होनेवाले आधे व्याह अपने-आप बद हो जायगे। हमे इस वहमको भी दिलसे निकाल देना चाहिए कि इस देशकी गरम जलवायुके कारण लडकिया जल्दी ऋतुमती हो जाती है। इससे बडा अधविश्वास मैने दूसरा नही देखा। मै यह कहनेको तैयार हू कि जल्दी या देरसे जवान होनेपर जलवायुका कुछ भी असर नही होता। जो चीज हमारे बालक-वालिकाओको वक्तसे पहले जवान बना देती है वह है हमारे कौटुम्बिक जीवनके आस-पास रहनेवाला मानसिक और नैतिक वातावरण। माताए और घरकी दूसरी स्त्रिया अबोध बच्चोको यह सिखा देना अपना धर्म समझती है कि इतने बरसके होनेपर तुम दूल्हा बनोगे या तुम्हे ससुराल जाना होगा। वे निरे बच्चे, बल्कि माकी गोदमे, होते है तभी उनकी सगाई कर दी जाती है। उन्हे जो खाना खिलाया और कपडे पहनाये जाते है वे भी वासनाओको जगानेमे सहायक होते है। हम उन्हे गुडियोकी तरह सजाते है, उनके नही बल्कि अपने सुखके लिए और अपना बडप्पन दिखानेके लिए। मै बीसो लडकोका पालन-पोषण कर चुका हू। उन्हे जो कपडे भी दिये गए उन्होने बिना किसी कठिनाईके पहन लिये और उन्हीसे खुश रहे। हम उन्हे हर तरहकी गर्म और उत्तेजना पैदा करनेवाली चीजे भी खिलाते रहते है। हमारा अधा प्रेम यह नही देखता

कि वे क्या और कितना पचा सकते है। इन सवका परिणाम निश्चय ही यह होता है कि हम समयसे पहले जवान होते, समयसे पहले माँ-वाप वनते और समयसे पहले ही परलोकको पयान कर देते है। माँ-वाप अपने व्यवहारसे जो वस्तु-पाठ वच्चोके सामने रखते है उसे वे आसानीसे सीख लेते है। अपनी वासनाओकी लगाम ढीली छोडकर वे अपने वच्चोके सामने सयम-रहित भोगका नमूना वनाते है। हर नये वच्चेके जन्मपर उछाव-वधाव होता है। अचरजकी वात तो यह है कि ऐसे वातावरणमे रहकर भी हम और अधिक असयमी नही हुए।

मुझे इस वातमे लेश-मात्र भी शका नही कि हमारे देशके स्त्री-पुरुष सभी देशका भला चाहते है और यह चाहते है कि हिन्दुस्तान सवल, सुन्दर और सुगठित शरीरवाले स्त्री-पुरुषोका राष्ट्र वने, तो उन्हे पूर्ण सयमका पालन करना और फिलहाल तो वच्चे पैदा करना वद कर ही देना चाहिए। मै नवविवाहित पति-पत्नियोको भी यही सलाह देता हू। कोई काम करके छोड देनेसे उसे विलकुल ही न करना आसान होता है। वैसे ही जैसे एक पियक्कड या थोडी शराव पीनेवालेके लिए उसका त्याग कठिन और जिसने कभी उसे मुह न लगाया हो उसके लिए आजन्म उससे दूर रहना आसान होता है। गिरकर उठनेसे सीधा खडा रहना हजार दरजे आसान होता है। यह कहना गलत है कि सयमके उपदेशके अधिकारी केवल वही है जिनकी वासनाए परितृप्त हो चुकी है। वैसे ही जिसका तन-मन शिथिल हो गया है उसको भोग-त्यागका उपदेश देनेका कोई अर्थ नही। मेरा कहना तो यह है कि चाहे हम जवान हो या वडे, भोगसे अघा चुके हो या न अघाये हो, तत्काल हमपर फर्ज है कि अपनी गुलामीके उत्तराधिकारी पैदा करना वद कर दे।

देशके दम्पतियोको मै यह भी वता देना चाहता हू कि वे साथीके हककी दलीलके भुलावेमे न पडे। रजामंदी भोगके लिए दरकार होती है, सयमके लिए नही। यह विलकुल खुला सत्य है।

हम एक शक्तिशाली सरकारके साथ जीवन-मरणके सग्राममे संलग्न है। उनमे हमे अपना सारा शारीरिक, भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक

वल लगाना होगा। यह वल हमे तवतक मिल नही सकता जवतक कि हम उस चीजको वहुत किफायतसे न खर्च करे, जो हमारे लिए सबसे ज्यादा कीमती होनी चाहिए। हमारे व्यक्तिगत जीवनमे यह पवित्रता न आई तो हम सदा गुलामोका राष्ट्र वने रहेगे। हम यह सोचकर अपने-आपको धोखा न दे कि चूकि अग्रेजोकी शासन-पद्धतिको हम पापमय मानते है इसलिए वैयक्तिक सद्गुण सदाचारमे भी हमे उनको अपनेसे हीन, तिरस्करणीय समझना चाहिए। चरित्रके मूलभूत सद्गुणोको वे आध्यात्मिक साधनाका नाम देकर उनका ढिढोरा नही पीटते, पर कम-से-कम शरीरसे तो वे उनका भरपूर पालन करते है। अपने देशके राजनीतिक कार्योमे लगे हुए अग्रेजोमे जितने ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणिया है उतने हमारे यहा नही है। ब्रह्मचर्य-व्रत लेनेवाली स्त्रिया तो हममे एक तरहसे है ही नही। थोडी-सी जोगिने-वैरागिने अवश्य है, पर देशके जीवनपर उनका कोई असर नही। यूरोपमे हजारो स्त्रिया एक साधारण सदाचारकी भाति ब्रह्मचर्यका जीवन विताती है।

अव मै पाठकोके सामने थोडेसे सीधे-सादे नियम रखता हू जो अकेले मेरे ही नही मेरे अनेक साथियोके भी अनुभवके आधारपर वनाये गये है :

१ लडके-लडकियोका पालन-पोषण सरल और प्राकृतिक ढगसे तथा मनमे इस वातका पक्का विश्वास रखकर करना चाहिए कि वे निष्पाप है और सदा वने रह सकते है।

२. मिर्च-मसाले जैसी गरमी और उत्तेजना पैदा करनेवाले और मिठाइया, तली, भुनी चीजो, जैसे पाचनमे भारी पडनेवाले पदार्थोसे परहेज करना चाहिए।

३ पति और पत्नीको अलग-अलग कमरोमे रहना और एकान्तसे वचना चाहिए।

४ देह और मन दोनोको सदा अच्छे, स्वास्थ्य-जनक कामो, विचारोमे लगाये रखना चाहिए।

५ जल्दी सोने और जल्दी उठनेके नियमका कडाईके साथ पालन किया जाय।

६. हर तरहके गन्दे साहित्यसे परहेज किया जाय। मलिन विचारोका इलाज पवित्र विचार है।

७. वासनाओको जगानेवाले थियेटर, सिनेमा और नाच-तमाशोसे बचना चाहिए।

८. स्वप्न-दोषसे घबरानेकी जरूरत नही; तन्दुरुस्त आदमीके लिए उसके बाद ठडे जलसे नहा लेना इस रोगका अच्छे-से-अच्छा इलाज है। यह कहना गलत है कि कभी-कभी सभोग कर लेनेसे स्वप्नमे वीर्य-पात बद हो जाता है।

९. सबसे बडी बात यह है कि पति-पत्नीके बीच भी ब्रह्मचर्यका पालन असाध्य या अति कठिन न माना जाय; उलटा सयमको जीवनकी साधारण और स्वाभाविक स्थिति मानना चाहिए।

१०. प्रतिदिन पवित्रताके लिए सच्चे दिलसे प्रभुसे प्रार्थना की जाय तो आदमी दिन-दिन अधिकाधिक पवित्र होता जायगा।

: ३ :

ब्रह्मचर्य

इस विषयपर कुछ लिखना आसान नही है। पर इस विषयमे मेरा अपना अनुभव इतना विशाल है कि उसकी कुछ बूँदे पाठकोके सामने रखनेकी इच्छा सदा वनी रहती है। मुझे मिली हुई कुछ चिट्ठियोने इस इच्छाको और भी वढा दिया है।

एक भाई पूछते है—"ब्रह्मचर्यके मानी क्या है ? क्या उसका पूर्ण पालन शक्य है ? और है तो क्या आप उसका पालन करते है ?"

ब्रह्मचर्यका पूरा और—सच्चा अर्थ है ब्रह्मकी खोज। ब्रह्म सवमे बसता है इसलिए यह खोज अन्तर्ध्यान और उससे उपजनेवाले अन्तर्ज्ञानके सहारे होती है। अन्तर्ज्ञान इन्द्रियोके सपूर्ण सयमके विना अशक्य है। अत मन, वाणी और कायासे सपूर्ण इन्द्रियोका सदा सव विषयोमे सयम ब्रह्मचर्य है।

ऐसे ब्रह्मचर्यका सपूर्ण पालन करनेवाली स्त्री या पुरुष नितान्त निर्विकार होता है। अत ऐसे स्त्री-पुरुप ईश्वरके पास रहते है। वे ईश्वर-तुल्य होते है।

ऐसे ब्रह्मचर्यका कायमनोवाक्यसे अखण्ड पालन हो सकनेवाली वात है, इस विपयमे मुझे तिल-भरभी शका नही, पर मुझे कहते दु ख होता है कि इस सपूर्ण ब्रह्मचर्यकी स्थितिको मै अभी नही पहुच सका हू। पहुचनेका प्रयत्न सदा चल रहा है। और इस देहमे ही वह स्थिति प्राप्त कर लेनेकी आशा भी मैने नही छोडी है। कायापर मैने कावू पा लिया है, जाग्रत अवस्थामे मै सावधान रह सकता हू। वाणीके सयमका यथायोग्य पालन करना भी सीख लिया है। पर विचारोपर अभी वहुत कावू पाना वाकी है। जिस समय जो वात सोचनी हो उस क्षण वही वात मनमे रहनी चाहिए। पर ऐसा न होकर और वाते भी मनमे आ जाती है इससे विचारोका द्वन्द्व मचा ही रहता है।

फिर भी जाग्रत अवस्थामे मै विचारोका एक-दूसरेसे टकराना रोक सकता हू। मै उस स्थितिको पहुचा हुआ माना जा सकता हू जब गन्दे विचार मनमे आ ही न सके। पर निद्रावस्थामे विचारके ऊपर मेरा काबू कम रहता है। नीदमे अनेक प्रकारके विचार मनमे आते है, अनसोचे सपने भी दिखाई देते है। कभी-कभी इसी देहसे की हुई बातोकी वासना भी जग उठती है। ये विचार अगर गन्दे हो तो स्वप्नदोष होता है। यह स्थिति विकारयुक्त जीवनकी ही हो सकती है।

मेरे विकारोके विचार क्षीण होते जा रहे है। पर अभी उनका नाश नही हो पाया है। अपने विचारोपर मै पूरा काबू पा सका होता तो पिछले दस बरसके बीच जो तीन कठिन बीमारिया मुझे हुई, फेफडेकी झिल्लीका शोथ (प्लूरिसी), अतिसार और ऑतका फोडा (अपेडिसाइटिस), वे न हुई होती। मै मानता हू कि निरोग आत्माका शरीर भी निरोग ही होता है। अर्थात् ज्यो-ज्यो आत्मा निरोग-निर्विकार होती जाती है त्यो-त्यो शरीर भी निरोग होता जाता है। पर निरोग शरीरके मानी बलवान शरीर नही होते। बलवान आत्मा क्षीण देह मे ही बसती है। आत्म-बल ज्यो-ज्यो बढता है, शरीर त्यो-त्यो क्षीण होता जाता है। पूर्णतया निरोग शरीर भी बहुत दुबला-पतला हो सकता है। बलवान शरीरमे अक्सर रोग तो रहता ही है। ऐसा न भी हो तो वैसे शरीरके लोगोकी छूत तुरन्त लग जाती है। पर, पूरी तरह निरोग देहको छूत लग ही नही सकती। शुद्ध रक्तमे ऐसे कीडोको दूर रखनेका गुण होता है।

यह अद्भुत दशा तो दुर्लभ ही है। नही तो मै अबतक उसको पहुच चुका होता, क्योकि मेरी आत्मा गवाही देती है कि इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिए जो उपाय करने चाहिए उनके करनेमे मै पीछे रहनेवाला नही हू। ऐसी एक भी बाहरी वस्तु नही है जो मुझे उससे दूर रखनेमे समर्थ हो। पर पिछले सस्कारोको धो डालना सबके लिए सहज नही होता। इस तरह लक्ष्यतक पहुचनेमे देर लग रही है, पर इससे मैने तनिक भी हिम्मत नही हारी है। कारण यह है कि निर्विकार दशाकी कल्पना मै कर सकता हू। उसकी धुँधली झलक भी जब-तब पा जाता हू। और इस रास्तेमे मै अबतक

जितना आगे वढ सकता हू वह मुझे निराश करनेके वदले आशावान ही वनाता है। फिर भी अगर मेरी आशा फलीभूत हुए बिना मेरा शरीरपात हो जाय तो मै यह न मानूगा कि मै विफल हो गया। मुझे जितना विश्वास अपनी इस देहके अस्तित्वका है उतना ही दूसरी देह मिलनेका भी है। इसलिए जानता हू कि छोटे-से-छोटा प्रयत्न भी व्यर्थ नही जाता।

स्वानुभवकी इस चर्चाकी गरज इतनी ही है कि जिन लोगोने मुझे पत्र लिखे है उनके और उन जैसे दूसरे भाइयोके मनमे धीरज रहे और आत्म-विश्वास उत्पन्न हो। सवकी आत्मा एक ही है। सवकी आत्माकी शक्ति भी समान है। अन्तर इतना ही है कि कुछकी शक्ति प्रकट हो चुकी है, दूसरोकी शक्तिका प्रकट होना अभी वाकी है। प्रयत्न करनेसे उन्हे भी वही अनुभव होगा।

अवतक मैने व्यापक अर्थवाले ब्रह्मचर्यकी वात कही है। ब्रह्मचर्यका लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो मन, वचन और कायासे विपयेन्द्रियका सयम-मात्र माना जाता है। यह अर्थ सही है क्योकि इस सयमका पालन वहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रियके सयमपर इतना ही जोर नही दिया गया। इससे विपयेन्द्रियका सयम अधिक कठिन हो गया है—लगभग अशक्य हो गया है। इसके सिवा वैद्योका अनुभव है कि जो शरीर रोगसे अशक्त हो गया है उसमे विषय-वासना अधिक उद्दीप्त रहती है। इससे भी इस रोगग्रस्त राष्ट्रको ब्रह्मचर्यका पालन कठिन लगता है।

मैने ऊपर दुवले, पर निरोग शरीरकी वात कही है। इसका अर्थ कोई यह न लगाये कि हमे शरीर-वल वढानेका यत्न ही न करना चाहिए। मैने तो सूक्ष्मतम ब्रह्मचर्यकी वात अपनी अति प्राकृत भाषामे लिखी है, उससे कुछ गलतफहमी हो सकती है। जिसे सव इद्रियोके सपूर्ण सयमका पालन करना है उसे अन्तमे शरीरकी क्षीणताका अभिनन्दन करना ही होगा। शरीरका मोह और ममता जव क्षीण हो जायगी तव शरीर-वलकी इच्छा ही न रहेगी।

पर विपयेन्द्रियको जीतनेवाले ब्रह्मचारीका शरीर अति तेजस्वी और वलवान होना ही चाहिए। यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक वस्तु है। जिसकी

विषय-वासना स्वप्नमे भी नही जागती वह जगद्वद्य है। उसके लिए दूसरे सब सयम सहज है, इसमे तनिक भी शका नही।

इसी विषयको लेकर एक दूसरे भाई लिखते है—

"मेरी दशा दयनीय है। दफ्तरमे, रास्तेमे, रातमे पढते समय काम करते हुए, और ईश्वरका नाम लेते समय भी वही विचार मनमे आते रहते है। विचारोको किस तरह काबूमे रखू ? स्त्री-मात्रके प्रति मातृभाव कैसे पैदा हो ? आखोसे शुद्ध वात्सल्यकी किरणे किस तरह निकले ? दूपित विचारोकी जड कैसे उखडे ? ब्रह्मचर्य विषयपर आपका लेख अपने पास रख छोडा है। पर इस जगह मुझे उससे जरा भी मदद नही मिल रही है।"

यह स्थिति हृदय-द्रावक है। यही स्थिति बहुतोकी होती है। पर जबतक मन उन विचारोसे लडता रहे तबतक डरनेका कोई कारण नही। आखे दोष करती हो तो उन्हे बद कर लेना चाहिए। कान दोष करे तो उनमे रुई भर लेनी चाहिए। आखोको सदा नीची रखकर चलनेकी रीति अच्छी है। इससे उन्हे और कुछ देखनेका अवकाश ही नही रहता। जहां गदी बाते होती हो या गन्दे गीत गाये जा रहे हो वहासे तुरन्त रास्ता लेना चाहिए। जीभपर पूरा काबू हासिल करना चाहिए।

मेरा अपना अनुभव तो यह है कि जिसने जीभको नही जीता वह विषय-वासनाको नही जीत सकता। जीभको जीतना बहुत ही कठिन है। पर इस विजयके साथ ही दूसरी विजय मिलती है। जीभको जीतनेका एक उपाय तो यह है कि मिर्च-मसालेका बिलकुल या जितना हो सके त्याग कर दिया जाय। दूसरा उससे अधिक बलवान उपाय यह है कि मनमे सदा यह भाव रखे कि हम केवल शरीरके पोषणके लिए ही खाते है, स्वादके लिए कभी नही खाते। हम हवा स्वादके लिए नही पीते, बल्कि सास लेनेके लिए पीते है। पानी जैसे महज प्यास बुझानेके लिए पीते है वैसे ही अन्न केवल भूख मिटानेके लिए खाना चाहिए। हमारे मा-बाप बचपनसे ही हमे इसकी उल्टी आदत लगाते है, हमारे पोषणके लिए नही बल्कि अपना प्यार दिखानेके लिए हमे तरह-तरहके स्वाद चखाकर हमे बिगाड़ते है। इस वातावरणका हमें सामना करना होगा।

पर विषय-वासनाको जीतनेका रामवाण उपाय तो रामनाम या ऐसा कोई और मत्र है। द्वादशाक्षर मत्र भी इस कामके लिए अच्छा है जिसकी जैसी भावना हो वैसे ही मत्रका जप वह करे। मुझे वचपनसे राम-नाम जपना सिखाया गया था और उसका सहारा मुझे मिलता ही रहता है, इसलिए मैंने उसे सुझाया है। हम जो मत्र अपने लिए चुने उसमे हमे तल्लीन हो जाना चाहिए। जप करते समय भले ही हमारे मनमे दूसरे विचार आया करते हो फिर भी जो श्रद्धा रखकर मत्रका जप करता ही जायगा उसे अन्तमे विघ्नोपर विजय मिलेगी। इसमे मुझे तनिक भी सदेह नही कि यह मत्र उसका जीवन-डोर वनेगा और उसे सभी सकटोसे उवारेगा। ऐसे पवित्र मत्रका उपयोग किसीको आर्थिक लाभके लिए कदापि न करना चाहिए। इन मत्रोका चमत्कार हमारी नीतिकी रक्षा करनेमे है और ऐसा अनुभव हरएक प्रयत्न करनेवालेको थोडे ही दिनोमे हो जायगा। हा, इतना याद रहे कि यह मत्र तोतेकी तरह न रटा जाय। उसमे अपने आत्माको पिरो देना चाहिए। तोता यत्रकी तरह मत्रको रटता रहता है। हमे उसे ज्ञानपूर्वक जपना चाहिए अवाछित विचारोके निवारणकी भावना और मत्रमे इसकी शक्ति है यह विश्वास रखकर।

: ४ :

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य

मुझसे ब्रह्मचर्यके विषयपर कुछ कहनेको कहा गया है। कुछ विषय ऐसे है जिनपर प्रसग आनेपर 'नवजीवन'मे मै कुछ लिखा तो करता हू पर भाषणोमे उनकी चर्चा शायद ही करता हूं, इसलिए मै जानता हू कि ये बाते कहकर नही समझाई जा सकती और अति कठिन है। ब्रह्मचर्य भी वैसा ही विषय है। आप तो जिस ब्रह्मचर्यके बारेमे मुझसे कुछ सुनना चाहते हैं वह सामान्य ब्रह्मचर्य है, जिस ब्रह्मचर्यकी विस्तृत व्याख्या सव इन्द्रियोका सयम है उसके विषयमे नही। पर यह सामान्य ब्रह्मचर्य भी शास्त्रोमे अतिशय कठिन बताया गया है। यह कथन ९९ प्रतिशत सत्य है, सिर्फ एक फीसदीकी कमी रह गई है। ब्रह्मचर्यका पालन इसलिए कठिन लगता है कि हम उसके साथ-साथ दूसरी इन्द्रियोका सयम नही करते। इन दूसरी इन्द्रियोमे मुख्य जीभ है। जो जीभको बसमे रखेगा, ब्रह्मचर्य उसके लिए आसान-से-आसान चीज़ हो जायगा।

प्राणि-शास्त्रका अध्ययन करनेवाले कहते है कि पशु ब्रह्मचर्यका जितना पालन करता है मनुष्य उतना नही करता और यह सच है। हम इसके कारणकी खोज करे तो देखेगे कि पशु अपनी जीभपर पूरा-पूरा काबू रखता है, इरादा और कोशिश करके नही बल्कि स्वभावसे ही। वह केवल घास-चारेपर गुजर करता है और वह भी इतना ही कि पेट भर जाय। वह जीनेके लिए खाता है, खानेके लिए जीता नही। पर हमारा रास्ता तो इसका उलटा ही है। मा बच्चेको तरह-तरहके स्वाद चखाती है, वह मानती है कि अधिक-से-अधिक चीजे खिलाना ही उसें प्यार करनेका तरीका है। ऐसा करके हम चीजोका जायका बढाते नही बल्कि घटाते है। स्वाद तो भूखमे रहता है। भूखवालेको सूखी रोटीमे जो स्वाद मिलता है वह विना

भूखवालेको लड्डूमे नही मिलता। हम तो पेटको ठूस-ठूसकर भरनेके लिए तरह-तरहके मसाले काममे लाते और विविध व्यजन बनाते है। फिर भी कहते है कि ब्रह्मचर्य चलता नही।

जो आखे ईश्वरने हमे देखनेके लिए दी है उन्हे हम मलिन करते है और जो देखनेकी चीजे है उन्हे देखना नही सीखते। माता क्यो गायत्री न सीखे और बच्चेको न सिखाये? उसके गहरे अर्थमे पैठना उसके लिए जरूरी नही। उसका तत्त्व सूर्यकी उपासना है। इतना ही समझकर वह बच्चेसे सूर्यकी उपासना कराये तो काफी है। सूर्यकी उपासना तो सनातनी, आर्य-समाजी सभी करते है। सूर्यकी उपासना तो उस महामन्त्रका स्थूलतम अर्थ है। यह उपासना क्या है? यही कि हम सिर ऊचा रखकर सूर्यनारायणके दर्शन और उससे अपनी आखोकी शुद्धि करे। गायत्री-मन्त्रके रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होने हमे बताया है कि सूर्योदयमे जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है उसके दर्शन हमे अन्यत्र नही होनेके। ईश्वर-जैसा कुशल सूत्रधार दूसरा नही मिल सकता और न आकाशसे अच्छी दूसरी रगशाला मिल सकती है, पर कौन माता बच्चेकी आखे धोकर उसे आकाशके दर्शन कराती है? माताके भावोमे तो अनेक प्रपच ही रहते है। बडे घरोमे जो शिक्षा मिलती है उसके फलस्वरूप लडका शायद बडा अफसर हो जाय। पर घरमे जाने-बेजाने बच्चेको जो शिक्षा मिलती है उसमेसे कितना वह ग्रहण कर लेता है इसका विचार कौन करता है?

मा-बाप हमारे शरीरको ढकते है। कपडोसे हमे लाद देते है, हमे सजाते, सवारते है; पर इससे कही हम अधिक सुदर बन सकते है। कपडे बदनको ढकनेके लिए है, उसे सरदी-गरमीसे बचानेके लिए है, उसे सजानेके लिए नही। बच्चा सरदीसे ठिठुर रहा है तो हमे चाहिए कि उसे अगीठीके पास ढकेल दे, मैदानमे दण्ड लगानेके लिए छोड दे या खेतमे काम करनेको भेज दे। तभी उसकी देह लोहेकी लाट बनेगी। ब्रह्मचर्यके पालनसे तो वह वज्र-जैसी हो ही जानी चाहिए। हम तो उसके शरीरका नाश कर डालते है। घरमे बद रखकर जो गरमी हम उसे पहुचाना चाहते है उससे तो उसकी त्वचामे ऐसी गरमी पैदा होती है जिसकी उपमा खुजलीसे ही दी

जा सकती है । अपने शरीरको वहुत लाड़-प्यारकर हम उसे विगाड़ डालते है ।

यह तो हुई कपडोकी वात । घरमे होनेवाली वातचीतसे भी हम वच्चेके मनपर वुरा असर डालते है । उसके व्याहकी वाते किया करते है । जो चीजे उसे देखनेको मिलती है उनमे भी वहुतेरी ऐसा ही असर डालनेवाली होती है । मुझे तो अचरज इस वातका होता है कि यह सव होते हुए भी हम दुनियामे सवसे वडे जगली क्यो न हो गए ? मर्यादाके टूटनेमे सहायक होनेवाली इतनी वातोके होते हुए भी वह ज्यो-त्यो निवाही जा रही है । ईश्वरने मनुष्यको कुछ ऐसा वनाया है कि विगड़नेके लिए अनेक अवसर आते रहनेपर भी वह वच जाता है। यह ईश्वरकी अलौकिक कला है। ब्रह्मचर्यके रास्तेके ये विघ्न हम दूर कर दे तो उसका पालन शक्य ही नही वल्कि आसान हो जाता है ।

इस दशामे भी हम शरीर-वलमे दुनियाका मुकावला करनेकी इच्छा रखते है। इसके दो रास्ते है—आसुरी और दैवी। आसुरी मार्ग है—शरीर-वल वढानेके लिए चाहे जैसे उपाय करना, चाहे जैसे पदार्थोका सेवन करना, शारीरिक प्रतियोगिता करना, गो-मास खाना इत्यादि । मेरा एक दोस्त वचपनमे मुझसे कहा करता था कि हमे मास खाना ही होगा, नही तो हम अगेजोके जैसे तगडे न हो सकेगे । गुजरातीके प्रसिद्ध कवि नर्मदाशकरने भी अपनी एक कवितामे ऐसी ही सलाह दी है । जापानको भी जव दूसरे देशोका मुकावला करना पडा तव गो-मास उसके आहारमे शामिल हो गया। यो आसुरी-रीतिसे हमे देह वनानी हो तो ऐसे पदार्थोका सेवन करना ही होगा ।

पर दैवी रीतिसे शरीरका विकास करना हो तो ब्रह्मचर्य उसका एक-मात्र उपाय है, मुझे जव कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते है तव मुझे अपने-आपपर दया आती है। यहा मुझे जो मान-पत्र दिया गया है उसमे मै नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया हू । मुझे कहना होगा कि जिन्होने मान-पत्र लिखा है

ब्रह्मचारी कैसे हो सकता है ? नैष्ठिक ब्रह्मचारीको तो न कभी बुखार आता है न कभी सिर-दर्द होता है, न कभी खासी सताती है और न कभी 'अपेडिसाइटिस' (आतका फोडा) होता है। डाक्टर कहते है कि आतोमे नारगीके बीज रह जानेसे भी 'अपेडिसाइटिस' होता है। पर जिसका शरीर स्वस्थ और निरोग है उसकी आतोमे बीज अटक ही नही सकते। जब आते शिथिल हो जाती है तभी इन चीजोको अपने बलसे बाहर नही निकाल सकती। मेरी आते भी शिथिल हो गई होगी इसीसे मै ऐसी कोई चीज न पचा सका हूगा। बच्चे क्या-क्या चीजे खा जाते है माता इसका ध्यान कहा रख सकती है, पर उनकी आतोमे उन्हे पचा लेनेकी स्वाभाविक शक्ति होती है।

इसलिए मै चाहता हू कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके पालनका आरोप करके कोई मिथ्याचारी न बने। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका तेज तो मुझमे जितना है उससे सौ गुना अधिक होना चाहिए। मै आदर्श ब्रह्मचारी नही हू। हा, होनेकी इच्छा अवश्य है। मैने तो अपने अनुभवकी कुछ बूदे आपके सामने रखी है जो ब्रह्मचर्यकी मर्यादा बताती है।

ब्रह्मचर्यका अर्थ यह नही है कि मै स्त्री-मात्रका, अपनी बहनका भी, स्पर्श न करू। ब्रह्मचारी होनेका अर्थ यह है कि जैसे कागजको छूनेसे मेरे मनमे कोई विकार नही उत्पन्न होता वैसे ही स्त्रीका स्पर्श करनेसे भी नही। मेरी बहन बीमार हो और ब्रह्मचर्यके कारण मुझे उसकी सेवा करनेसे हिचकना पडे तो वह ब्रह्मचर्य कौडी कामका नही। मुर्देको छूकर हम जिस अविकार दशाका अनुभव कर सकते है उसी अविकार दशाका अनुभव जब किसी परम सुन्दरी युवतीको छूकर भी कर सके तभी हम सच्चे ब्रह्मचारी है। अगर आप यह चाहते है कि आपके लडके ऐसे ब्रह्मचर्यको प्राप्त करे तो इसका अभ्यास-क्रम आप नही बना सकते। कोई ब्रह्मचारी ही—चाहे वह मुझ जैसा अधूरा ही क्यो न हो—उसे बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम सन्याससे अधिक ऊचा आश्रम है। पर हमने उसे गिरा दिया है इसीसे हमारा गृहस्थाश्रम बिगडा और वानप्रस्थ आश्रम भी बिगडा और सन्यासका तो नाम भी नहीं रहा। आज हमारी दशा ऐसी दीन है।

जो आसुरी मार्ग ऊपर हमने बताया है उसका अनुसरण करके तो पांच सौ सालमे भी हम पठानोका मुकाबला न कर सकेंगे। हाँ, दैवी मार्गका अनुसरण किया जाय तो आज ही उनका मुकाबला किया जा सकता है। कारण यह कि दैवी मार्गके लिए आवश्यक मानसिक परिवर्तन छनभरमें हो सकता है। पर शरीरके बदलनेमे युग लग जाते है। इस दैवी मार्गका अनुसरण हम तभी कर सकेंगे जब हमारे पास पूर्वजन्मका पुण्य-बल होगा और हमारे मा-बाप हमारे लिए जरूरी साधन जुटा देंगे।

: ५ :

सत्य बनाम ब्रह्मचर्य

एक मित्र श्री महादेव देसाईको लिखते है :

"आपको याद होगा कि कुछ दिन पहले 'नवजीवन' मे ब्रह्मचर्य विषयपर एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका आपने 'यग इडिया'मे उलथा किया। उस लेखमे गाधीजीने स्वीकार किया है कि उन्हे अव भी जव-तव स्वप्न-दोप हो जाया करता है। उसे पढते ही मेरे दिलमे यह वात आई कि ऐसे इकवालोका असर अच्छा नही हो सकता। पीछे मुझे मालूम हुआ कि मेरी शका निराधार न थी।

"विलायतमे प्रवासके समय प्रलोभनोके रहते मैंने और मेरे मित्रोने अपने चरित्रपर धब्बा नही आने दिया। हम माँस, मद्य और स्त्रीसे विलकुल दूर रहे। पर गाधीजीका लेख पढनेके वाद एक मित्रने हिम्मत हार दी और मुझसे कहा—'ऐसे भगीरथ प्रयासके वाद भी जव गाधीजीका यह हाल है तो हमारी क्या विसात ? ब्रह्मचर्य-पालनकी कोशिश करना वेकार है। गाधीजीकी स्वीकारोक्तिने मेरी दृष्टि विलकुल ही वदल दी। आजसे मुझे डूवा समझो।' थोडी हिचकके साथ मैंने उन्हे समझानेकी कोशिश की। वही दलील उनके सामने रखी जो आप या गाधीजी देते, 'अगर यह रास्ता गाधीजी जैसे पुरुपोके लिए भी इतना कठिन है तो हम जैसोके लिए तो कही ज्यादा कठिन होना चाहिए। इसलिए हमे दुगनी कोशिश करनी चाहिए।' पर सारी दलील वेकार गई। जिस चरित्रपर अवतक कलुषका छीटा भी न पडा था वह कीचडसे सन गया। अगर कोई आदमी गाधीजीको उनके इस पतनके लिए जिम्मेदार ठहराये तो वह या आप उसे क्या जवाब देगे ?

"जवतक मेरे सामने ऐसा एक ही उदाहरण था तवतक मैंने आपको

नही लिखा। मुमकिन है, आप यह कहकर मुझे टाल देते कि यह दृष्टान्त तो अपवाद-रूप है। पर इधर मुझे इस तरहके और भी उदाहरण मिले है और मेरी आशका सर्वथा साधार सिद्ध हुई है।

"मै जानता हू, कुछ बाते ऐसी है जो गाधीजीके लिए तो बहुत आसान है, मगर मेरे लिए बिलकुल नामुमकिन है। पर ईश्वरके अनुग्रहसे मै यह भी कह सकता हू कि कुछ बाते जो गाधीजीके लिए भी अशक्य हो मेरे लिए शक्य हो सकती है। इस ज्ञान या गर्वने ही मुझे अबतक गिरनेसे बचाया है, नही तो गाधीजीके उक्त इकबालने मेरे खतरेसे बाहर होनेके विश्वासकी जड पूरी तरह हिला दी है।

"क्या आप कृपाकर गाधीजीका ध्यान इस ओर खीचेगे, खासकर जब वह अपनी आत्म-कथा लिखनेमे लग रहे है? सत्य और नग्न सत्यको कहना बेशक बहादुरीकी बात है, पर दुनिया और 'नवजीवन' तथा 'यग-इंडिया'के पाठक इससे उनके बारेमे गलत राय कायम करेगे। मुझे डर है कि एकके लिए जो अमृत है वह दूसरेके लिए विष न हो जाय।"

यह शिकायत पाकर मुझे अचरज नही हुआ। असहयोग-आन्दोलन जब पूरे जोरपर था और उसके दरमियान जब मैने अपनेसे 'समझकी एक भूल' हो जानेकी बात स्वीकार की तब एक मित्रने निर्दोष भावसे मुझे लिखा—"अगर यह भूल थी तो आपको उसे कबूल नही करना चाहिए था। लोगोको यह माननेके लिए उत्साहित करना चाहिए कि दुनियामे कम-से-कम एक आदमी तो है जो भूल-भ्रमसे परे है। लोग आपको ऐसा ही मानते थे। आपके भूल-स्वीकारसे वे हिम्मत हार देगे।" यह आलोचना पढकर मुझे हँसी आई और रोना भी। हँसी आई लिखनेवालेके भोलेपनपर। पर लोगोको एक पतनशील प्राणीके भूल-भ्रमसे परे होनेका विश्वास दिलाया जाय, यह विचार ही मेरे लिए असह्य था। जो आदमी जैसा है उसे वैसा जाननेमे सदा सबका हित है इससे कभी कोई हानि नही होती। मेरा दृढ विश्वास है कि मेरे झट अपनी भूले स्वीकार कर लेनेसे लोगोका हर तरह हित ही हुआ है। कम-से-कम मेरा तो इससे उपकार ही हुआ है।

यही बात मै बुरे सपनोका होना स्वीकार करनेके बारेमे भी कह सकता

हू। पूर्ण ब्रह्मचारी न होते हुए भी मै होनेका दावा करू तो इससे दुनियाकी वडी हानि होगी। यह ब्रह्मचर्यकी उज्ज्वलताको मलिन और सत्यके तेजको धूमिल कर देगा। झूठे दावे करके ब्रह्मचर्यका मूल्य घटानेका साहस मै कैसे कर सकता हू ? आज मै यह देख सकता हू कि ब्रह्मचर्य-पालनके लिए जो उपाय मै वताता हू वे काफी नही सावित होते, वे हर जगह कारगर नही होते, और केवल इसलिए कि मै पूर्ण ब्रह्मचारी नही हू। मै दुनियाको ब्रह्मचर्य-का सीधा रास्ता न दिखा सकू और वह मुझे पूर्ण ब्रह्मचारी माने, यह वात उसके लिए वडी भयानक होगी।

मै सच्चा खोजी हू, मै पूर्ण जाग्रत हू, मेरा प्रयत्न अथक और अडिग है—इतना ही जान लेना दुनियाके लिए क्यो काफी न हो ? इतना ही जानना औरोको उत्साहित करनेके लिए क्यो पर्याप्त न हो ? झूठी प्रतिज्ञाओसे सिद्धात स्थिर करना गलत है। सिद्धियोको उनका आधार वनाना ही वुद्धिमानी है। यह दलील क्यो दी जाय कि जव मुझ-जैसा आदमी मलिन विचारोसे न वच सका तव औरोके लिए क्या आशा हो सकती है ? उसके वजाय यह क्यो न सोचा जाय कि अगर गाधी, जो एक दिन काम-वासनाका गुलाम था आज अपनी पत्नीका मित्र और भाई वनकर रह सकता है और सुन्दर-से-सुन्दर युवतीको अपनी वहन या वेटीके रूपमे देख सकता है तव अदने-से-अदना और पापके गढेमे गिरा हुआ आदमी भी ऊपर उठनेकी आशा रख सकता है। ईश्वर अगर ऐसे कामुक-जनपर दया कर सकता है तो निश्चय ही दूसरे सव लोग भी उसकी दयाके अधिकारी होगे।

पत्र लिखनेवाले भाईके जो मित्र मेरी कमियोको जानकर पीछे हट गए वे कभी आगे वढे ही न थे। वह उनकी झूठी साधुता थी जो पहले ही झोकेमे उड गई। सत्य, ब्रह्मचर्य ओर दूसरे सनातन नियम मुझ-जैसे अधकचरे जनोकी साधनापर आश्रित नही होते। वे तो उन वहुसख्यक जनोकी तपश्चर्याके अटल आधारपर खडे होते है जिन्होने उनकी साधनाका यत्न किया और उनका सपूर्ण पालन कर रहे है। जव मुझमे उन पूर्ण पुरुपोकी वगलमे खडे होनेकी योग्यता आ जायगी तव मेरे शब्दोमे आजसे कही अधिक निश्चय और वल होगा। जिसके विचार इधर-उधर भटकते नही रहते,

जिसका मन बुरी बातोको सोचता नही, जिसकी नीद सपनोसे रहित होती है और जो सोते हुए भी पूरी तरह जागता रह सकता है वही सच्चे अर्थमें स्वस्थ है। उसे कुनैन खानेकी जरूरत नही होती। उसके शुद्ध रक्तमें हर तरहके छूत-विकारसे लड़ लेनेका बल होता है। तन-मन और आत्माकी पूर्ण स्वस्थ दशाकी प्राप्तिका प्रयत्न मै कर रहा हू। पत्र-लेखक तथा उनके अल्प श्रद्धावाले मित्रो और दूसरोको मेरा निमत्रण है कि इस कोशिशमें मेरा साथ दे और मेरी कामना है कि पत्र-लेखककी ही तरह उनके कदम भी आगे बढनेमे मुझसे ज्यादा तेज हो। मुझे जो-कुछ भी सफलता मिली है वह मुझमे कमियो और जब-तब वासनाके अधीन हो जानेकी दुबर्लताके होते हुए मिली है और मिली है केवल मेरे अथक प्रयत्न और भगवान्‌की दयामे मेरी असीम श्रद्धाकी बदौलत।

अतः किसीके लिए भी निराश होनेका कारण नही। महात्मापन कौड़ी कामका नही। यह तो मेरी बाह्य प्रवृत्तियो, मेरे राजनीतिक कामोंका प्रसाद है, जो मेरे जीवनका सबसे छोटा अंग है, फलतः चद रोजा चीज है। जो वस्तु स्थायी मूल्यवाली है वह है मेरा सत्य-अहिसा और ब्रह्मचर्य-आग्रह। यही मेरे जीवनका सच्चा अग है। मेरे जीवनका स्थायी अग कितना ही छोटा क्यो न हो, वह हेय माननेकी चीज नही है। वही मेरा सर्वस्व है। इस मार्गमे होनेवाली विफलताएं और भूल-भ्रमका ज्ञान भी मेरे लिए मूल्यवान् है, क्योकि वे सफलताके मंदिरपर पहुंचनेकी सीढियां है।

: ६ :

ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय

ब्रह्मचर्य और उसके साधनोके विषयमे मेरे पास पत्रोका ताँता लग रहा है। अत दूसरे मौकोपर जो-कुछ कह या लिख चुका हू उसे ही दूसरे शब्दोमें यहा दोहरा देता हू। ब्रह्मचर्यका अर्थ शारीरिक सयम-मात्र नही है, वल्कि उसका अर्थ है सपूर्ण इन्द्रियोपर पूर्ण अधिकार और मन-वचन-कर्मसे काम-वासनाका त्याग। इस रूपमे वह आत्म-साक्षात्कार या ब्रह्म-प्राप्तिका सीधा और सच्चा रास्ता है।

आदर्श ब्रह्मचारीको भोगकी वासना या सन्तानकी कामनासे जूझना नही पडता, वह कभी उसे कष्ट नही देती, उसके लिए सारा ससार एक विशाल परिवार होगा, मानव-जातिके कष्ट दूर करना ही उसकी सारी महत्त्वाकाक्षा होगी और सन्तानकी कामना उसके लिए विष-सी कडवी होगी। मानव-जातिके दु ख-दैन्यका जिसे पूरा पता मिल गया है काम-वासना उसके चित्तको चलायमान कर ही नही सकती। अपने अदर वहने-वाले शक्ति-स्रोतका पता उसे अपने-आप लग जायगा और वह सदा उसे स्वच्छ, निर्मल वनाये रखनेका यत्न करेगा। उसकी छोटी-सी शक्तिके सामने सारा ससार श्रद्धासे सिर झुकायेगा और उसका प्रभाव राज-दण्डधारी सम्राट्के प्रभावसे वढा-चढा होगा।

पर मुझसे कहा जाता है कि यह आदर्श अशक्य है और 'तुम स्त्री-पुरुषमे जो एक दूसरेके प्रति सहज आकर्षण है उसका खयाल नही करते।' पर यहा जिस काम-प्रेरित आकर्पणकी ओर सकेत है मै उसे स्वाभाविक माननेसे इनकार करता हू। वह प्रकृति-प्रेरित हो तो हमे जान लेना चाहिए कि प्रलय होनेमें अधिक देर नही है। स्त्री और पुरुषके वीचका सहज आकर्षण वह है जो भाई और वहन, माँ और वेटे, वाप और वेटीके वीच होता है। ससार

इसी स्वाभाविक आकर्षण पर टिका है। मैं सपूर्ण नारी-जातिको अपनी बहन, बेटी और माँ न मानूँ तो काम करना तो दूर रहे, मेरे लिए जीना भी कठिन हो जायगा। मैं उन्हे वासनाभरी दृष्टिसे देखूँ तो यह नरकका सीधा रास्ता होगा।

सन्तानोत्पादन स्वाभाविक क्रिया अवश्य है, पर बँधी हदके भीतर ही। उस सीमाको लाँघना स्त्री-जातिके लिए खतरा पैदा करता, जातिको हत-वीर्य बनाता, बीमारियोको बुलाता, पापको प्रोत्साहन देता और दुनियाको धर्म तथा ईश्वरसे विमुख करता है। जो आदमी सदा काम-वासनाके वसमे है वह बिना लगरकी नाव है। ऐसा आदमी समाजका पथ-प्रदर्शक हो, अपने लेखोसे उसे पाट रहा हो और लोग उनसे प्रभावित हो रहे हो तो फिर समाजका कहा ठिकाना लगेगा? फिर भी आज यही हो रहा है। मान लीजिए, दीपशिखाके गिर्द चक्कर काटनेवाला पतगा अपने क्षणिक सुखका वर्णन करे और हम उसे आदर्श मान उसका अनुकरण करे तो हमारी गति क्या होगी? नही मुझे अपनी सारी शक्तिके साथ कहना होगा कि कामका आकर्षण पति-पत्नीके बीच भी अस्वाभाविक है। विवाहका उद्देश्य पति-पत्नीके हृदयको हीन-वासनाओसे शुद्ध करके उन्हे भगवान्के निकट ले जाना है। पति-पत्नीके बीच भी कामना-रहित प्रेम होना नामुमकिन नही है। मनुष्य पशु नही है। पशुयोनिमे अगणित जन्म लेनेके बाद वह कही इस ऊँची दशाको पहुंच सका है। उसका जन्म तनकर खडा होनेके लिए हुआ है, घुटनोके वल चलने या रेगनेके लिए नही। पशुता मनुष्यतासे उतनी ही दूर है जितना चेतनसे जड।

अन्तमें संक्षेपमें ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय बताता हूं—

पहला काम है ब्रह्मचर्यकी आवश्यकताको समझ लेना।

दूसरा काम है इन्द्रियोको क्रमशः वशमे लाना। ब्रह्मचारीको अपनी जीभको तो वसमे करना ही होगा। उसे जीनेके लिए खाना चाहिए, रसना-सुखके लिए नही। आँखसे वही चीजे देखनी चाहिए जो शुद्ध, निष्पाप हों, गन्दी चीजोकी ओरसे उसे अपनी आँखे बन्द कर लेनी चाहिए। निगाह नीची करके चलना—उसे इधर-उधर नचाते न रहना, शिष्ट संस्कारवान

होनेकी पहचान है। इसी तरह ब्रह्मचारीको गन्दी अश्लील बाते सुनने और नाकसे तीव्र, उत्तेजक गध सूघनेसे भी परहेज रखना होगा। साफ-सुथरी मिट्टीकी सुगध बनावटी इत्रो, एससोकी खुशबूसे कही मधुर होती है। ब्रह्मचर्य-पालनके अभिलाषीके लिए यह भी आवश्यक है कि जबतक वह जागता रहे अपने हाथ-पैरोको किसी-न-किसी अच्छे काममे लगाये रखे। वह कभी-कभी उपवास भी कर लिया करे।

तीसरा काम है शुद्ध, स्वच्छ आचरणवालोका ही सग-साथ करना, उन्हीसे मित्रता जोडना और पवित्र पुस्तके ही पढना।

आखिरी पर वैसे ही महत्त्वका काम है प्रार्थना। ब्रह्मचारीको नित्य नियमपूर्वक सपूर्ण अन्त करणसे राम नामका जप करना और भगवान्‌के प्रसादकी प्रार्थना करनी चाहिए।

इनमेसे एक भी बात ऐसी नही है जो साधारण स्त्री-पुरुषके लिए कठिन हो। वे अति सरल है, पर उनकी सरलता ही कठिनाई बनी रही है। जिसके दिलमे चाह है उसके लिए राह निहायत आसान है। लोगोमे ब्रह्मचर्य-पालनकी सच्ची इच्छा नही होती, इसीसे वे बेकार भटका करते है। दुनिया ब्रह्मचर्यके कमोबेश पालनपर ही टिक रही है, यही इस बातका प्रमाण है कि वह आवश्यक और हो सकनेवाला काम है।

जनन-नियमन

बहुत झिझक और अनिच्छाके साथ मैं इस विषयपर कलम उठा रहा हूं। मैं जबसे दक्षिण अफ्रीकासे लौटा तभीसे मुझे कितने ही पत्र मिलते रहे हैं, जिनमें जनन-नियमनके कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेके बारेमें मेरी राय पूछी जाती है। उन पत्रोंके उत्तर निजी तौरपर तो मैंने दे दिये हैं; पर सार्वजनिक रूपमें अबतक इस विषयकी चर्चा नहीं की थी। इस विषयने आजसे ३५ साल पहले, जब मैं विलायतमें पढ़ता था, अपनी ओर मेरा ध्यान खींचा था। उन दिनों वहां एक संयमवादी और एक डाक्टरके बीच गहरी बहस चल रही थी। संयमवादी प्राकृतिक उपायों—इन्द्रिय-संयमके सिवा और किसी उपायको जायज़ न मानता था और डाक्टर बनावटी साधनोंका प्रबल समर्थक था। उस कच्ची उम्रमें कृत्रिम उपायोंकी ओर थोड़े दिन झुकनेके बाद मैं उनका कट्टर विरोधी हो गया। अब मैं देखता हूं कि कुछ हिन्दी-पत्रोंमें इन उपायोंका वर्णन इतने नग्नरूपमें हो रहा है कि उसे देखकर हमारी शिष्टताकी भावनाको गहरा धक्का लगता है। मैं यह भी देख रहा हूं कि एक लेखकको कृत्रिम उपायोंके समर्थकोंमें मेरा नाम लेते हुए भी संकोच नहीं हो रहा है। मुझे एक भी अवसर याद नहीं आता जब मैंने इन उपायोंके समर्थनमें कुछ कहा या लिखा हो। उनके समर्थकोंमें दो प्रतिष्ठित पुरुषोंके नाम लिये जाते भी मैंने देखा है। पर उनकी इजाजतके बिना उनके नाम प्रकट करते मुझे हिचक होती है।

जनन-नियमनकी आवश्यकताके विषयमें तो दो मत हो ही नहीं सकते। पर युगोंसे इसका एक ही उपाय हमें बताया गया है और वह है इन्द्रिय-निग्रह या ब्रह्मचर्य। यह अचूक, रामबाण उपाय है, जिससे काम लेनेवालेकी हर तरह भलाई होती है। चिकित्सा-शास्त्रके जानकार गर्भ-निरोधके

अप्राकृतिक साधन ढूंढनेके वदले अगर मन-इन्द्रियोको काबूमे रखनेके उपाय ढूंढे तो मानवजाति उनकी चिर-ऋणी होगी। स्त्री-पुरुषके समागमका उद्देश्य इन्द्रिय-सुख नही बल्कि सन्तानोत्पादन है और जहाँ सन्तानकी इच्छा न हो वहाँ सभोग पाप है।

बनावटी साधनोका उपयोग तो बुराइयोको बढावा देना है। वे स्त्री और पुरुषको नतीजेकी ओरसे बिलकुल लापरवाह बना देते है। और इन उपायोको जो प्रतिष्ठा दी जा रही है उसका फल यह होगा कि लोकमत व्यक्तिपर अभी जो थोडा दाब-अकुश रखता है वह जल्दी ही गायब हो जायगा। अप्राकृतिक उपायोसे काम लेनेका निश्चित परिणाम मानसिक दुर्बलता और नाडी-मण्डलका शिथिल हो जाना है। दवा मर्जसे महगी पडेगी। अपने कर्मके फलसे बचनेकी कोशिश नासमझी और पाप है। जरूरतसे ज्यादा खा लेनेवालेके लिए यही अच्छा है कि उसके पेटमे दर्द हो और उसे उपवास करना पडे। ठूंस-ठूंसकर खाना और फिर चूरन खाकर उसके स्वाभाविक फलसे बच जाना उसके लिए बुरा है। काम-वासनाकी मनमानी तृप्ति करना और उसके नतीजोसे बचना तो और भी बुरा है। प्रकृतिके हृदयमे दया माया नही है, जो कोई उसके नियमोको तोडेगा उससे वह पूरा बदला लेगी। नीति-सगत फल तो नीति-सगत सयमसे ही प्राप्त हो सकते है, और तरहके प्रतिबध तो जिस बुराईसे बचनेके लिए लगाये जाते है उसको उलटा और बढा देते है।

कृत्रिम उपायोके उपयोगके समर्थकोकी बुनियादी दलील यह है कि सभोग जीवनकी एक आवश्यक क्रिया है। इससे बडा भ्रम और कोई हो नही सकता। जो लोग चाहते है कि जितने बच्चोकी हमे जरूरत है उससे ज्यादा बच्चे पैदा न हो, उन्हे चाहिए कि उन नीतिसगत उपायोकी खोज करे जो हमारे पूर्व पुरुषोने ढूंढ निकाले थे, और उनका चलन फिर कैसे चल सकता है इसका उपाय मालूम करे। उनके सामने बहुत-सा आरभिक कार्य करनेको पडा है। बाल-विवाह जन-सख्याकी वृद्धिका एक प्रधान कारण है। रहन-सहनका वर्तमान ढगभी बच्चोकी बेरोक बाढमे बहुत सहायक होता है। इन कारणोकी खोज करके इन्हे दूर करनेका उपाय किया जाय तो समाज

सदाचारकी एक-दो सीढियाँ और चढ जायगा। और अगर जनन-निरोधके उत्साही समर्थकोने उनकी उपेक्षा की, प्राकृतिक साधनोका चलन आम हो गया तो नतीजा नैतिक पतनके सिवा और कुछ नही हो सकता।

जो समाज विविध कारणोसे पहले बलवीर्य-रहित हो चुका है वह जन्म-निरोधके कृत्रिम उपायोको अपनाकर अपने-आपको और निर्बल ही बनायेगा। अत. जो लोग बिना सोचे-विचारे कृत्रिम साधनोसे काम लेनेका समर्थन कर रहे है उनके लिए इससे अच्छी बात दूसरी नही हो सकती कि इस विषयका नये सिरेसे अध्ययन करे, अपने हानिकर प्रचारको रोके और विवाहित-अविवाहित दोनोको ब्रह्मचर्यके रास्तेपर चलानेकी कोशिश करें।

: ८ :

कुछ दलीलोंपर विचार

जनन-नियमन विषय पर मेरे लेखको पढकर बनावटी साधनोके समर्थकोने मेरे साथ जोरोसे पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया है। मुझे इसीकी आशा भी रखनी चाहिए थी। उनकी चिट्ठियोमेसे मै तीनको, जो नमूनेका काम दे सकती है, चुन लेता हू। एक पत्र और भी देने लायक था, पर उसमे अधिकतर धर्म-शास्त्रोकी दलीलें दी गई है, इसलिए उसे छोड देता हू। उन तीन पत्रोमेसे एकका उलथा यह है—

"जनन-नियमन विषयपर आपका लेख मैने बडी रुचिके साथ पढा। इन दिनो इस विषयने वहुतेरे शिक्षित पुरुषोका ध्यान अपनी ओर खीच रखा है। पिछले साल हम लोगोमे इस विषयपर लम्बे और गरम मुबाहसे हुए। उनसे कम-से-कम इतना तो साबित हो गया कि युवक वर्गको इस मसलेसे गहरी दिलचस्पी पैदा हो गई है, इसके बारेमे लोगोमे बहुत-सी गलत धारणाए है और इसकी चर्चामे बनावटी शालीनता बहुत बरती जाती है, और इसकी बहस खुलकर की जाय तो वह सभ्यताकी सीमाका उल्लघन क्वचित् ही करती है। आपका लेख पढकर मै इस बारेमे फिरसे सोचने लगा हू। मेरी प्रार्थना है कि आप इस विषयमे मेरी थोडी रहनुमाई करे, जिससे मेरे मनमे उठनेवाली बहुत-सी शकाए दूर हो जाय।

"मै इस बातको मानता हू कि 'सन्तति-नियमनकी आवश्यकताके बारेमे दो मत नही हो सकते।' मै यह भी मानता हू कि ब्रह्मचर्य इसका अचूक और रामबाण उपाय है और जो उसे काममे लाता है वह उसका भला ही करता है। पर मै जानना चाहता हू कि क्या यह प्रश्न आत्म-सयमसे अधिक जनन-निरोधका नही है? अगर है तो हमे देखना चाहिए कि सयम या इन्द्रिय-निग्रह साधारण मनुष्यके लिए सन्तति-नियमनका सुलभ मार्ग है।

"मै मानता हू कि इस प्रश्नपर दो दृष्टियोसे विचार किया जा सकता है—व्यक्तिकी दृष्टिसे और समाजकी दृष्टिसे। हर आदमीका कर्तव्य है कि अपनी विषय-भोगकी वासनाओको दबाकर अपने आत्मवलकी वृद्धि करे। हर जमानेमे थोडेसे ऐसे महान् पुरुष पैदा होते है जो यह उच्च आदर्श अपने सामने रखते और आजीवन केवल उसीका अनुगमन करते है। पर अनावश्यक बच्चोकी बाढ रोकनेके मसलेको, जिसे हल करनेपर हम तुल रहे है, वे समझते है, इसमे मुझे शक है। सन्यासी मोक्ष-प्राप्तिका प्रयासी होता है, सन्तति-नियमनका नही।

"पर क्या यह उपाय उस आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नको समयकी उचित सीमाके अदर हल कर सकता है जो जन-समाजके बहुत बड़े भागके लिए अतिशय महत्त्वका है? हर एक समझदार और आगेकी बात सोच सकनेवाले गृहस्थके सामने यह समस्या आज भी रास्ता रोककर खडी है। एक आदमी कितने बच्चोंको खिला-पिला, पहना, पढा और उनकी रोजी-रोजगारका उपाय कर सकता है,—यह ऐसा प्रश्न है जिसे हमे तुरन्त हल करना होगा। मनुष्य-स्वभाव कैसा है यह आप जानते ही है। उसका खयाल रखते हुए क्या आप हजारो-लाखो आदमियोसे यह आशा रख सकते है कि सन्तानकी आवश्यकता पूरी हो जानेके बाद वे सभोगका सुख लेना बिलकुल ही बद कर देगे? मै समझता हू कि आप काम-वासनाकी बुद्धि-सगत, सयत तृप्तिकी इजाजत देगे, जैसी कि हमारे स्मृतिकारोकी सलाह है। अधिकाश जनोसे न तो अपनी वासनाकी लगाम बिलकुल ढीली कर देनेको कहा जा सकता है, और न उसे पूरी तरह दबा देनेको। उनसे तो बस यही कहा जा सकता है कि उसे नियमके अदर रखे, बीचके रास्तेपर चलाए। पर यह मुमकिन हो तो भी क्या जरूरतसे ज्यादा बच्चोका पैदा होना बन्द होगा? मै मानता हू कि इससे अधिक अच्छे आदमी पैदा होगे, पर दुनियाकी आबादी घटेगी नही बल्कि जन-सख्याकी वृद्धिकी समस्या इससे और विषम हो जायगी, क्योकि स्वस्थ-सबल समाज निकम्मे लोगोकी बनिस्बत ज्यादा तेजीसे बढता है। जानवरोकी अच्छी नस्ल पैदा करनेकी कला हमे अच्छे गाय-बैल और घोडे देते है। पर पांचके बदले चार नही देती।

"मै मानता हू कि 'स्त्री-पुरुषके समागमका उद्देश्य सभोग-सुख नही, किन्तु सन्तानकी प्राप्ति है।' पर आपको भी यह स्वीकार करना होगा कि एकमात्र सुखकी चाह ही मनुष्यको सभोगके लिए भले ही प्रेरित न करती हो; फिर भी अधिकतर वही इसके लिए उकसाती है। प्रकृति अपना काम निकालनेके लिए हमारे सामने यह चारा फेकती है। सुख न मिले तो कितने उसके प्रयोजनकी पूर्ति करेगे या करते है ? ऐसे आदमी कितने होगे जो सुखके लिए सभोग करते हो और सन्तानका प्रसाद पा जाते हो ? और ऐसे कितने है जो सन्तानकी कामनासे सभोग करते हो और उसके घालमे सुखभी भोग लेते हो ? आप कहते है—'जहा सन्तानकी इच्छा न हो वहा सभोग पाप है, आप जैसे सन्यासीको यह कहना जरूर फवता है। आपने यह भी तो कहा ही है कि जो अपने पास जरूरतसे ज्यादा पैसा या चीजे रखता है वह 'चोर' और 'डाकू' है। और जो दूसरोको अपनेसे अधिक प्यार नही करता वह अपने-आपको कम प्यार करता है। पर बेचारे दीन-दुर्वल मनुष्योके प्रति आप इतने कठोर क्यो हो रहे है ? सन्तानकी इच्छाके बिना उन्हे थोडा-सा सुख मिल जाय तो उनके तन-मनमे होनेवाले उलट-फेरोसे पैदा होनेवाली वेचैनी मिट जाय। वच्चे पैदा होनेका डर कुछ लोगोके मानसमे अशाति उत्पन्न कर देगा, कुछ लोग इस डरसे ब्याह करनेमे देर करेगे। सावारणत ब्याहके कुछ बरस वाद सतानकी चाह समाप्त हो जाती है। तो उसके वाद क्या पति-पत्नीका समागम अपराध माना जायगा ? क्या आप समझते है कि जो आदमी इस 'अपराध'के डरसे अपनी बेचैन वासनाओको दवा रखता है वह नीतिमे दूसरोसे ऊचा है ? आखिर जब जरूरतसे ज्यादा पैसा या माल-जायदाद वटोर रखनेवाले 'चोरो'को आप सहन कर सकते है तो इन अपराधियोको क्यो सहन नही कर सकते ? इसलिए कि चोरोकी सख्या और वल इतना अधिक है कि उनको सुधारना सभव नही ?

"अन्तमे आप यह फरमाते है कि 'वनावटी साधनोका उपयोग बुराईको वढावा देना है। वे स्त्री और पुरुषको नतीजेकी ओरसे विलकुल लापरवाह वना देते है।' यह इलजाम सही हो तो सगीन है। मै जानना चाहता हू कि 'लोकमत'में क्या कभी इतना वल रहा है कि वह सभोगके अतिरेकको

रोक सके ? मै जानता हू कि पियक्कड लोकनिन्दाके डरसे कुछ कम शराब पीता है। पर मै इन उक्तियोसे भी अवगत हू कि 'जो मुह चीरता है वह आहार भी देता है।' और 'बच्चे तो भगवान्‌की देन है।' मुझे इस वहमका भी पता है कि बच्चोकी बहुलता पुरुषत्वका प्रमाण है। मै ऐसे उदाहरण जानता हू जहा इस धारणाने पतिको पत्नीकी देहके उपभोगका अबाध अधिकार प्रदान कर दिया है और काम-वासनाकी तृप्तिको ही पति-पत्नीके नातेका मुख्य अर्थ मान लिया है। इसके सिवा क्या यह तय है कि अप्राकृतिक साधनोसे काम लेनेका निश्चित परिणाम मानसिक दुर्बलता और नाडी-मण्डलका शिथिल हो जाना है ? तरीके और तरीकेमे वहुत अन्तर करता है और मेरा विश्वास है कि विज्ञान इस कामकी अ-हानिकर विधिया ढूढ चुका है या जल्दी ही ढूढ लेगा। यह कुछ मनुष्यकी बुद्धिके बाहरकी बात नही है।

"पर जान पडता है, आप किसी भी अवस्थामें उनसे काम लेनेकी इजाजत न देगे, क्योकि कर्मके फलसे बचनेकी कोशिश अधर्म है, इसमे एतराजकी बात इतनी ही है कि आप यह मान लेते है कि सन्तानकी इच्छा न होनेपर अपनी वासनाकी सयत तृप्ति भी पाप है। इसके सिवा मै पूछता हू, बच्चा पैदा होनेका डर क्या कभी किसीको अपनी भोगेच्छा तृप्त करनेसे रोक सका है ? कितने ही स्त्री-पुरुष अपने सुख-स्वास्थ्यकी हानिकी परवाह न कर अताइयो, नीम-हकीमोके बताये उपाय करते है। अपने कर्मके फलसे बचनेके लिए कितने गर्भ गिराये जाते है ? पर गर्भ-स्थिति या बच्चा पैदा होनेका डर कारगर रोक साबित हो भी जाय तो इसका नैतिक परिणाम नगण्य-सा ही होगा। फिर बच्चा मा-बापके पापका फल भोगे—व्यक्तिकी नासमझी समाजकी हानि करे—यह कहाका न्याय है ? यह सही है कि 'प्रकृति दया माया रहित है और अपने नियमका उल्लघन करनेवालेको पूरा दड देती है।' पर कृत्रिम साधनोसे काम लेना प्रकृतिके नियमको तोड़ना है यह कैसे मान लिया जाय ? बनावटी दात, आख, हाथ, पावको कोई अप्राकृतिक नही कहता। अप्राकृतिक वही है जिससे हमारी भलाई नही होती। मै यह नही मानता कि मनुष्य स्वभावसे बुरा है और इन उपायोका

उपयोग उसे और बुरा बना देगा। स्वाधीनताका दुरुपयोग आज भी कुछ कम नही होता। हमारा हिन्दुस्तान भी इस विषयमे दूसरोपर हँसने लायक नही है। इस नई शक्तिका उपयोग समझदारीके साथ किया जायगा, यह सावित करना भी उतना ही आसान है जितना यह सावित करना कि उसका दुरुपयोग किया जायगा। हमे जान लेना चाहिए कि मनुष्य प्रकृतिपर यह वडी विजय प्राप्त करना ही चाहता है और उसकी उपेक्षा करके हम अपनी ही हानि करेगे। वुद्धिमानी इसमे है कि हम इस अशक्तिको कावूमे रखे, उससे भागनेमे नही है। लोक-हितके लिए काम करनेवाले कुछ अच्छे-से-अच्छे लोग भी, जो इन उपायोके प्रचारक वन रहे है, इसलिए नही कि लोगोको मनमाना इन्द्रिय-मुख भोगनेका सुभीता हो जाय, वल्कि इसलिए कि लोग अपनी वासनाको कावूमे लाना सीखे।

हमे यह वात भी याद रखनी होगी कि नारी-जाति और उसकी आवश्यकताओकी हम वहुत उपेक्षा कर चुके। वह चाहता है कि इस वारेमे उसे भी जवान खोलनेका मौका दिया जाय, क्योकि वह पुरुषको इसकी इजाजत देनेको तैयार नही है कि वह उसकी देहको वच्चे पैदा करनेका खेत समझे। सभ्यताका वोझ उसके लिए इतना भारी पड रहा है कि वडे कुटुवके पालनका वोझ उससे नही चल सकता। डाक्टर मेरी स्टोप्स और कुमारी ऐलन स्त्रीके 'नाडी-सस्थानके शिथिल हो जाने'का उपाय कभी न करेगी। उनके वताये हुए उपाय ऐसे है जो स्त्रियो द्वारा काममे लाये जानेसे ही कारगर हो सकते है और उनके उपयोगसे असयत विषय-भोगको प्रोत्साहन मिलनेकी वनिस्वत स्त्रीके मातृकर्तव्यका अधिक अच्छी तरह पालन कर सकनेकी आशा रखी जानी चाहिए। जो हो, कुछ अवस्थाए ऐसी होती है जव छोटी वुराईको स्वीकार कर लेना वडी वुराईसे वचा देता है। कुछ वीमारिया इतनी खतरनाक है कि नाडी-मण्डलकी शिथिलताकी जोखिम उठाकर भी उनसे वचना ही होगा। वच्चेको दूध पिलानेके कालके वीच ऐसे 'तटस्थ काल' आते है जव समागम अनिवार्य होता है, पर उस समय गर्भ रह जाय तो स्त्रीके स्वास्थ्यके लिए हानिकर होता है। कितनी ही स्त्रियोके लिए प्रसवमे जानकी जोखिम रहती है, यद्यपि और सव तरह वे स्वस्थ होती है।

"मै यह नही चाहता कि आप जनन-नियन्त्रणके प्रचारक हो जायं, मै आपसे इसकी आशा भी नही रख सकता। आपके दिव्यतम रूपके दर्शन तो तभी होते है जब आप सत्य और ब्रह्मचर्यकी पवित्र ज्योति जगाते और उसके खोजियोके सामने रखते हो। पर नासमझकी अपेक्षा समझदार मा-बापको इस ज्योतिकी तलाश अधिक होगी। जो जन्म-निरोधकी आवश्यकताको समझता है वह वासनाके निरोधका सामर्थ्य सहजमे प्राप्त कर लेगा। स्वच्छन्दता, बिना सोचे-विचारे काम करनेकी प्रवृत्ति और अज्ञान आज इतना बढ रहा है कि आपकी आवाज भी जगलमे रोने-जैसी हो रही है। आपके सकोचभरे और अनिच्छासे लिखे हुए लेखमे इसके लिए जितना अवकाश है इस विषय पर उससे अधिक खुली और आलोकजनक चर्चा होनेकी आवश्यकता है। आप उसमे शामिल न हो सके तो कम-से-कम उसकी आवश्यकता तो आपको स्वीकार कर लेनी चाहिए और जरूरी हो तो समय रहते उसकी रहनुमाई भी करनी चाहिए, क्योकि हमारे रास्तेमे अनेक खड्ड-खाइया है और उन खतरोकी ओरसे आखे मूद लेने तथा इस विषयपर कलम उठानेमे हिचकनेसे कोई लाभ न होगा।"

मै आरम्भमे ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि यह लेख न मैने सन्यासियोके लिए लिखा है और न सन्यासीकी हैसियत से लिखा है। सन्यासीका जो अर्थ समझा जाता है उस अर्थमे मै अपने-आपको सन्यासी कह भी नही सकता। मैने जो-कुछ लिखा है, उसका आधार मेरा २५ बरसका अपना अखड अनुभव ही है,जिसमे यदा-कदा, व्रतभग हुआ है और उन मित्रोका अनुभव है जिन्होने इस आजमाइशमे इतने दिनोतक मेरा साथ दिया कि उनके अनुभवसे मै कुछ नतीजे निकाल सकता हू। इस प्रयोगमे युवा और वृद्ध, पुरुष और स्त्री सभी शामिल है। उसमे किसी हदतक वैज्ञानिक प्रामाणिकता होनेका दावा भी मै कर सकता हू। उसका आधार) निस्सन्देह शुद्ध नैतिक था; पर उसका आरम्भ सन्तति-नियमनकी इच्छासे ही हुआ। मेरी अपनी स्थिति खास तौरसे ऐसी ही थी। बादके सोच-विचारसे उससे जबर्दस्त नैतिक परिणाम उत्पन्न हुए; पर सब सर्वथा स्वाभाविक क्रमसे ही उपजे। मै यह कहनेका साहस भी कर सकता हू कि समझदारी और सावधानी-

से काम किया जाय तो विना अधिक कठिनाईके ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है। यह दावा अकेला मेरा ही नही है, जर्मनी और दूसरे देशोके प्रकृति-चिकित्सक भी यही कहते है। ये लोग वताते है कि जलका उपचार, मिट्टीका लेप और विना मिर्च-मसालेका भोजन, खासकर फलाहार नाडी मडलको शात करते है, और काम-क्रोधादिको जीतना आसान वना देते है तथा साथ-साथ नाडी-जालको सवल-सतेज भी वनाते है। राजयोगीको योग-क्रियाओमेंसे अकेले प्राणायामके नियमित अभ्याससे भी यही लाभ होता है। न पश्चिमी उपचार-विधि सन्यासियोके लिए है और न प्राचीन भारतीय साधन-प्रणाली ही, वल्कि दोनो खास तौरसे गृहस्थोके लिए ही है।

कहा जाता है कि जनन-निरोधकी आवश्यकता हमारे राष्ट्रके लिए है, क्योकि उसकी आवादी वहुत वढती जा रही है। मुझे इसे माननेसे इनकार है। जनसख्याकी अतिवृद्धि अभीतक असिद्ध है। मेरी रायमे तो जमीनका वन्दोवस्त और वँटवारा ठीक तौरपर हो जाय, खेतीका ढग सुधर जाय और कोई सहायक धधा उसके साथ जोड दिया जाय तो यह देश आज भी दूनी आवादीके भरण-पोषणका भार उठा सकता है। इस देशमे जनन-निरोधका प्रचार करनेवालोका साथ जो मै दे रहा हू वह महज उसकी वर्तमान राज-नीतिक स्थितिके खयालसे।

मै यह जरूर कहता हू कि सन्तानकी आवश्यकता न रह जानेपर लोगोको अपनी काम-वासनाकी तृप्ति वद कर देनी चाहिए। सयमका उपाय लोक-प्रिय और प्रभावकर वनाया जा सकता है। शिक्षित वर्गने कभी उसे ठीक तौरसे आजमाया नही। सयुक्त परिवारकी प्रथाकी वदौलत इस वर्ग कुटुम्व-वृद्धिका वोझ अभी महसूस ही नही किया। जो कर रहे है उन्होने प्रश्नके नैतिक पहलुओपर कभी विचार नही किया। ब्रह्मचर्यपर जहा-तहा दो-चार व्याख्यान हो जानेके सिवा, खासकर वच्चोकी अनिष्ट वाढ रोकनेके ही उद्देश्यसे, लोगोको सयमकी शिक्षा देनेके लिए कोई व्यवस्थित प्रचार नही किया गया। उलटे यह वहम अव भी वहुतोमें वना हुआ है कि अधिक वाल-वच्चोका होना सौभाग्यका चिह्न है। धर्मका उपदेश करनेवाले आम तौरपर यह उपदेश नही देते कि कुछ विशेष अवस्थाओमे सन्तानोत्पत्ति

रोकना भी वैसा ही धर्म होता है जैसा दूसरी अवस्थाओमे सतान उत्पन्न करना।

मुझे ऐसी शका होती है कि जनन-निरोधके हिमायती इस बातको पक्की मान लेते है कि काम-वासनाकी तृप्ति जीवन-धारणके लिए आवश्यक और इष्ट कार्य है। उन्हे स्त्रियोके लिए चिन्ता प्रकट करते देखकर तो बडी दया आती है। मेरी रायमे बनावटी साधनोसे गर्भ-निरोधके समर्थनमे स्त्रीके हितकी दलील देना उसका अपमान करना है। पुरुषकी कामुकता उसे यो ही काफी नीचे घसीट लाई है, अब कृत्रिम साधनोका प्रचार—प्रचारकोकी नीयत कितनी ही अच्छी क्यो न हो—उसे और नीचे गिराये बिना न रहेगा। मै जानता हू कि कुछ नई रोशनीवाली स्त्रिया भी इन साधनोका समर्थन कर रही है। पर मुझे इसमे तनिक भी संदेह नही कि नारी-जातिका बहुत बडा भाग उन्हे अपने गौरवकी हानि करनेवाला मानकर ठुकरा देगा। पुरुषको सचमुच नारी-जातिके भलेकी चिन्ता है तो उसे चाहिए कि अपनी वासनाको वशमे करे। स्त्री उसे ललचाती नही। पुरुष आक्रान्ता होता है, इसलिए वस्तुत. वही, सच्चा मुजरिम और ललचानेवाला है।

कृत्रिम साधनोके समर्थकोसे मेरा साग्रह अनुरोध है कि वे अपने प्रचारके नतीजोपर गौर करे। इन उपायोके अधिक उपयोगका फल होगा विवाहके बंधनका टूट जाना और स्वच्छन्द प्रेमकी बाढ। अगर पुरुषके लिए केवल वासनाकी तृप्तिके लिए ही सभोग करना जायज हो सकता है तो वह उस दशा-मे क्या करेगा जब उसे लबे अरसे तक घरसे दूर रहना पडे, या वह लबी लडाईमे सैनिकके रूपमे काम कर रहा हो, या विधुर हो गया हो, या पत्नी इतनी बीमार हो कि अगर उसे सभोगकी इजाजत दे तो कृत्रिम साधनोसे काम लेते हुए भी उसके स्वास्थ्यकी हानि हुए बिना न रहे?

पर एक दूसरे सज्जन लिखते है—

"जनन-नियंत्रणके विषयमे 'यग इंडिया'के हालके अंकमे आपका जो लेख निकला है उसके संबन्धमे मेरा नम्र निवेदन है कि कृत्रिम साधनोको हानिकर बताकर आप दावेको सबूत मान लेते है। पिछले सार्वभौम जनन-नियत्रण सम्मेलन (लदन, १९२२) की गर्भ-निरोध-परिषद्ने नीचे लिखे

आशयका प्रस्ताव स्वीकार किया था। इस प्रस्तावके विरोधमे उपस्थित १६४ डाक्टरोमेसे केवल तीनने हाथ उठाये थे—

"पाचवे सार्वभौम जनन-नियत्रण-सम्मेलनके चिकित्सक सदस्योकी इस वैठककी रायमे गर्भ-निरोधके स्वास्थ्य-नियमोके अविरोधी उपायोके द्वारा जनन-निरोध शरीरशास्त्र, कानून और नीति-शास्त्र तीनोकी दृष्टिसे गर्भ-पातसे सर्वथा भिन्न वस्तु है। उसका यह भी कहना है कि गर्भ-निरोधके उत्तम उपाय और साधन स्वास्थ्यकी हानि करनेवाले है या वाझपन पैदा करते है, इसका कोई प्रमाण नही है।"

"चिकित्सा-शास्त्रके पडित इतने स्त्री-पुरुषोकी, जिनमे से कुछ दुनियाके सबसे बडे डाक्टरोमेसे है, राय मेरी समझसे कलमके एक फर्राटेसे नही काटी जा सकती। आप कहते है 'कृत्रिम साधनोके उपयोगका अनिवार्य परिणाम मानसिक दुर्वलता और नाडी-मण्डलका शिथिल हो जाना है'—" वह 'अनिवार्य' क्यो है? मै यह कहनेका साहस करता हू कि अज्ञानवश हानिकर साधनोके इस्तैमालसे भले ही ऐसा होता हो, पर आधुनिक वैज्ञानिक साधनोके व्यवहारसे इस तरहकी कोई हानि कदापि नही होती। यह तो इस वातकी एक और दलील है कि गर्भ-निरोधकी समुचित विधि उन सव लोगोको, जिन्हे उनकी जरूरत हो सकती है, अर्थात् सभी वय प्राप्त स्त्री-पुरुषोको सिखा दी जानी चाहिए। आप इन विधियोको वनावटी कहकर उनकी निन्दा करते है, फिर भी कहते है कि डाक्टर-वैद्य इन्द्रिय-सयमके उपाय ढूढे। मै आपका मतलव ठीक तरहसे समझ नही पाता, पर चूंकि आप डाक्टर-वैद्योकी वात कहते है, इसलिए पूछता हू कि उनके ढूढे हुए उपाय भी तो उतने ही वनावटी, अप्राकृतिक होगे? आप फर्माते है, 'समागमका उद्देश्य सुख-प्राप्ति नही, सन्तानोत्पादन है। यह उद्देश्य किसका है?' ईश्वरका? ऐसा है तो उसने काम-वासनाकी सृष्टि किसलिए की? आप यह भी कहते है कि 'प्रकृति दया-माया-रहित है और अपना कानून तोडनेवालेसे पूरा वदला लेती है।' पर प्रकृति अन्तत व्यक्ति नही है, जैसा कि ईश्वरके विपयमे माना जाता है, और किसीके नाम फरमान नही निकालती। प्रकृतिके राजमे कर्मका फल अवश्य मिलता है। कुछ कर्मोको हम अच्छा कहते

है, कुछको बुरा । बनावटी साधनोको बरतनेवाले भी उसी तरह अपने कर्मका फल भुगतते है जिस तरह उनसे काम न लेनेवाले अपने कर्मोका भोगते है। अतः जबतक आप यह साबित न कर दे कि बाह्य साधन और विधिया हानिकारक है तबतक आपकी दलीलका कुछ अर्थ नही होता। अपने अनुभवके बलपर मै कह सकता हू कि ये चीजे बुरी नही है, बशर्ते कि ठीक तौरसे काममे लाई जाय। किसीका काम भला या बुरा होनेका फैसला उसके फल देखकर ही किया जा सकता है, अनुमान-परम्पराके सहारे नही।

"सन्तति-नियमका जो रास्ता आप बताते है मालथसने भी उसपर चलनेकी सलाह दी थी, पर आप जैसे दस-बीस विशिष्ट पुरुषोको छोडकर उसपर चलना और किसीके बसकी बात नही। ऐसे उपाय बतानेसे क्या लाभ जो काममे लाये ही न जा सके ? ब्रह्मचर्यकी महिमा बहुत बढाकर गाई जाती है। वर्तमान युगके चिकित्सा-शास्त्रके प्रामाणिक पडित (मेरा मतलब उन लोगोसे है जो इस मसलेको धर्मकी ऐनकसे नही देखते) मानते है कि २२-२३ की उम्रके बाद सभोग न करनेसे निश्चित रूपसे हानि होती है। सन्तानकी कामनाको छोडकर और किसी उद्देश्यसे किये गए समागमको आप जो पाप मानते है इसका कारण धर्मकी ओर आपका अनुचित झुकाव है। फलकी गारटी पहलेसे तो कोई दे नही सकेगा, इसलिए आप हर आदमी-को या तो पूर्ण ब्रह्मचर्य-धारणका आदेश देते है या पापकी जोखिम उठानेका। शरीर-शास्त्र हमे यह शिक्षा नही देता, और लोगोसे यह कहनेके दिन लद चुके कि वे विज्ञानकी उपेक्षा करके किसी सन्त-महात्माके आदेशका अधानु-सरण करे।"

इस पत्रके लेखकको अपने मतका अटल आग्रह है। मै समझता हू, यह दिखानेके लिए मैने काफी मिसाले सामने रख दी कि अगर हमें विवाहको धर्म-बधन मानना और उस बधनकी पवित्रताको बनाये रखना है, तो हमे भोगको नही बल्कि सयमको जीवनका नियम मानना होगा। मैने दावेको सबूत—विवादग्रस्त बातको सिद्ध—नही मान लिया है, क्योकि मै तो कहता हू कि जनन-निरोधके बाहरी उपाय कितने ही अच्छे क्यो न हो, पर है वे हानिकर ही। हो सकता है, वे स्वय निर्दोष हो और केवल इसलिए

हानिकारक हो कि वे सोई हुई काम-वासनाको जगाते है, जिसकी भूख भोजनसे शात होनेके वदले और भडकती जाती है। जिस मनको यह माननेकी आदत लग गई हो कि अपनी काम-वासनाकी तृप्ति केवल जायज ही नही, इष्ट भी है। वह जी भरकर विषय-सुख भोगेगा और अन्तमे मनसे इतना निर्वल हो जायगा कि वासनाओको रोकनेकी उसमे शक्ति ही न रह जायगी। मै मानता हू कि एक वारके सभोगका अर्थ भी उस अनमोल शक्तिका क्षय है जो स्त्री-पुरुष सबके तन-मन और आत्माका वल-तेज वनाये रखनेके लिए परमावश्यक है। इस प्रसगमे मै आत्माका नाम ले रहा हू। पर अवतक मैने इस चर्चासे उसको जान-बूझकर वाहर रखा था, क्योकि इसकी गरज महज अपने पत्र-लेखकोकी दलीलोका जवाव देना है, जिन्हे आत्माके होने न होनेका कोई खयाल ही नही दिखाई देता। विवाहके अतिरेकमे पीडित और वल-तेज गँवाये हुए भारतको वनावटी साधनोकी सहायतासे काम-वासनाकी परितृप्तिकी नही, वल्कि पूर्ण सयमकी शिक्षाकी आवश्यकता है, और किसी विचारसे न सही तो केवल इसलिए कि उसका गया हुआ वल-तेज उसे फिर प्राप्त हो जाय। नीति-नाशक दवाओके विज्ञापन, जो हमारे पत्र-पत्रिकाओके लिए कलकरूप हो रहे है, जनन-निरोधके हिमायतियो-के लिए चेतावनी होने चाहिए। दिखाऊ लज्जा या शालीनता मुझे इस विपयकी विस्तृत चर्चा करनेसे नही रोक रही है, वल्कि इस वातका निश्चित ज्ञान उससे रोक रहा है कि हमारे देशके तन-मनसे वे-दम नौजवान उन देखनेमे सही-सी लगनेवाली दलीलोके सहजमे शिकार हो जाते है जो असयत विपय-भोगके पक्षमे दी जाती है।

दूसरे पत्र-लेखकने अपने पक्षकी पुष्टिमे जो डाक्टरी सर्टिफिकेट पेश किया है उसका जवाव देना अव मुझे जरूरी नही मालूम होता। मै न यह कहता हू और न इससे इन्कार ही करता हू कि कृत्रिम साधनोके व्यवहारसे जननेन्द्रियोकी हानि होती या वाझपन पैदा होता है। पर अपनी ही स्त्रीके साथ अति विपय-भोगके फलसे जो सैकडो युवकोके जीवनका नाश होते मैने अपनी आखो देखा है, वडे-से-वडे डाक्टरोकी पलटन भी उसे काट नही सकती।

पहले लेखकने जो बनावटी दातकी दलील दी है वह मेरी रायमे यहा नही लगती। बनाये हुए दात निस्सन्देह बनावटी और अप्राकृतिक चीज है, पर उनसे एक आवश्यकताकी पूर्ति हो सकती है। मगर जनन-निरोधके कृत्रिम साधन तो उस आदमीका चूरन फाकना है जो अपनी भूख मिटानेके लिए नही बल्कि जीभको तृप्त करनेके लिए खाना चाहता हो। स्वादके लिए भोजन भी वैसा ही पाप है जैसा केवल भोग-सुखके लिए सभोग करना।

तीसरे पत्रसे हमे एक जानने लायक बात मालूम होती है—"जनन-नियत्रणका प्रश्न दुनियाकी सभी सरकारोको परेशान कर रहा है। यह तो आप जानते ही होगे कि अमरीकाकी सरकार इसके प्रचारकी विरोधिनी है। निश्चय ही आपने यह भी सुन रखा होगा कि एक पूर्वीय साम्राज्य जापानने इन साधनोके प्रचार-व्यवहारकी आम इजाजत दे रखी है। एक हर हालतमे गर्भ-निरोधका निषेध करता है, चाहे वह कृत्रिम साधनोसे किया जाय या प्राकृतिक साधनोसे, दूसरा उसका पोषक प्रचारक है। दोनोकी वृत्तियोके कारण सर्वविदित है। मेरी समझसे अमरीकाके रुखमे कोई ऐसी बात नही जिसकी सराहना की जाय। पर जापानका कार्य क्या अधिक निदनीय है ? उसे कम-से-कम वस्तुस्थितिका सामना करनेका यश तो मिलना ही चाहिए। वह अपनी आबादीका बढना रोकनेके लिए लाचार है। मनुष्य-स्वभावको भी उसे, वह आज जैसा है वैसा, मानना ही होगा। ऐसी दशामे क्या जनन-निरोध उस अर्थमे, जिसमे पश्चिममे उसका ग्रहण होता है, उसके लिए एक-मात्र मार्ग नही ? आप कहेगे, 'हर्गिज़ नही।' पर क्या मै आपसे पूछ सकता हू कि आप जो रास्ता बताते है वह व्यवहार्य है ? वह आदर्श भले ही हो, पर क्या उसपर चला जा सकता है ? क्या जन-समाजसे सभोग-सुखके कहने लायक त्यागकी आशा रखी जा सकती है ? थोडेसे गौरवशाली पुरुषोके लिए जो सयम और ब्रह्मचर्यका पालन करते है वह आसान हो सकता है ? पर क्या यह रास्ता इस योग्य है कि इसके प्रचारके लिए सार्वजनिक आन्दोलन किया जाय ? और हिन्दुस्तानकी हालत ऐसी है कि यहा देशव्यापी आम आन्दोलन होनेसे ही काम हो सकता है।"

अमरीका और जापानकी स्थितिसे अपनी अनभिज्ञता मुझे स्वीकार करनी ही होगी। जापान जनन-निरोधका प्रचार क्यो कर रहा है इसका मुझे पता नही। लेखककी बताई हुई बाते अगर सही हैं और अप्राकृतिक उपायोसे जनन-निरोध जापानमे आम है तो मै यह कहनेका साहस करता हू कि यह श्रेष्ठ राष्ट्र अपने नैतिक नाशकी ओर बहुत तेजीसे बढ रहा है।

हो सकता है, मेरी राय बिलकुल गलत हो, मेरे सिद्धान्त गलत तथ्योके आधारपर स्थिर किये गए हो। पर बनावटी उपायोके समर्थक थोडा धीरज रखे। हालकी मिसालोके सिवा उनके पास और कोई तथ्य-सामग्री नही है। निश्चय ही जो प्रणाली देखनेमे मनुष्यकी नीतिवृत्तिकी इतनी विरोधिनी जान पडती है उसके बारेमे निश्चयपूर्वक कुछ कहना अभी अति असामयिक है। अपनी जवानीके साथ खिलवाड करना आसान है, पर इस खिलवाडके कुपरिणामोसे बचना कठिन है।

: ९ :

गुह्य प्रकरण

जिन पाठकोने आरोग्यके प्रकरण ध्यानपूर्वक पढे है उनसे मेरी प्रार्थना है कि इस प्रकरणको और भी ध्यानसे पढे, उसपर खूब विचार करे। अभी दूसरे प्रकरण लिखनेको वाकी है और मुझे आशा है कि वे उपयोगी भी होगे। पर इस विषयपर दूसरा कोई भी प्रकरण इतने महत्त्वका न होगा। मै पहलेसे बतला चुका हू कि इन प्रकरणोमे मैने एक भी बात ऐसी नही लिखी है जिसको मैने खुद अनुभव न किया हो और जिसपर मेरा दृढ विश्वास न हो।

आरोग्यकी वहुत-सी कुजिया है और सभी बहुत जरूरी है, पर उसकी मुख्य कुजी ब्रह्मचर्य है। अच्छी हवा, अच्छा पानी, अच्छी खूराकसे हम आरोग्य पा सकते है। पर हम जितना पैसा कमाये उतना सब उडा दे तो हमारे पास कुछ बचेगा नही। वैसे ही हम जितनी तदुरुस्ती कमाये उतनी सब खर्च कर डाले तो हमारे पास पूजी क्या होगी ? स्त्री-पुरुष दोनोको आरोग्य-रूपी धनका सचय करनेके लिए ब्रह्मचर्य-धारणकी पूरी आवश्यकता है। इसमे किसीको भी शक-शुवहा न होना चाहिए। जिसने अपने वीर्यका सचय किया है वही वीर्यवान्, वलवान कहा और माना जा सकता है।

पूछा जायगा, ब्रह्मचर्य है क्या चीज ? पुरुष स्त्रीका और स्त्री पुरुषका भोग न करे, यही ब्रह्मचर्य है। भोग न करनेका अर्थ इतना ही नही है कि एक दूसरेको भोगकी इच्छासे स्पर्श न करे वल्कि मन इसका विचार भी न करे। इसका सपना भी नही होना चाहिए। पुरुष स्त्रीको देखकर पागल न हो, स्त्री पुरुषको देखकर। प्रकृतिने जो गुह्य शक्ति हमे दे रखी है, हमे उचित है कि उसको अपने शरीरमे ही वनाये रखे और उसका उपयोग केवल तनको ही नही, मन, वुद्धि और धारणा-शक्तिको भी अधिक स्वस्थ-सवल वनानेमे करे।

पर अव देखिये, हमारे आस-पास कौन-सा दृश्य दिखाई दे रहा है ? छोटे-वडे स्त्री-पुरुष सभी इस मोहमे डूब रहे है। ऐसे समय हम पागल-से हो जाते है। हमारी अकल ठिकाने नही रहती। काम हमे अधा वना देता है। कामके वशमे हुए स्त्री-पुरुषो और लडके-लडकियोको मैने बिलकुल पागल बन जाते देखा है। मेरा अपना अनुभव अभी इससे भिन्न नही है। जव-जव मेरी वह दशा हुई है मै अपनी सुध-बुध खो बैठा हू। यह चीज है ही ऐसी। रत्ती-भर रति-सुखके लिए हम मन भरसे अधिक शक्ति पल भरमे गँवा बैठते है। जव हमारा नशा उतरता है तो हम रक बन जाते है। अगले दिन सवेरे हमारा शरीर भारी रहता है। हमे सच्चा चैन नही मिलता। हमारा तन शिथिल होता है और मन बेठौर-ठिकाने हो जाता है। इन सवको ठिकाने लगानेके लिए हम सेरो दूध चढाते, रस-भस्म फाकते, 'याकूती' गोलिया खाते और वैद्योके पास जा-जाकर 'पुष्टई' मागा करते है। क्या खानेसे काम वढेगा, इसकी खोजमे लगे रहते है। यो दिन जाते है और ज्यो-ज्यो वरस वीतते है हमारा शरीर और बुद्धि शिथिल होती जाती है और वुढापेमे अक्ल सठियाई हुई दिखाई देती है।

पर वस्तुत ऐसा होना ही न चाहिए। बुढापेमे बुद्धि मद होनेके वदले और तीक्ष्ण होनी चाहिए। हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि इस देहमे मिले हुए अनुभव हमारे और दूसरेके लिए लाभदायक हो सके और जो ब्रह्मचर्यका पालन करता है उसकी ऐसी स्थिति रहती भी है। उसे मृत्युका भय नही रहता और मरते समय भी वह भगवान्को नही भूलता और न वेकारकी हाय-हाय करता है। मरणकालके उपद्रव भी उसे नही सताते और वह हँसते-हँसते यह देह छोडकर मालिकको अपना हिसाब देने जाता है। जो इस तरह मरे वही पुरुष और वही स्त्री है। उसीने सच्चे स्वास्थ्यका सम्पादन किया, यह माना जायगा।

हम सावारणत यह नही सोचते कि दुनियामे जो इतना भोग-विलास, डाह, वैर, वडप्पनका गर्व, आडवर, क्रोध, अधीरता आदि है उसकी जड हमारे ब्रह्मचर्य भग करनेमे ही है। यो हमारा मन हाथमे न रहे और हम रोज एक या अनेक वार वच्चेसे भी अधिक नासमझ हो जाय तो फिर

जानकर या अनजानमे कौन-कौनसे पाप हम नही करेगे, कौन-सा घोर कर्म है जिसे करनेमे हमे अटक होगी ?

पर ऐसे लोग भी है जो पूछेगे—ऐसा ब्रह्मचर्य पालन करनेवालेको किसने देखा है ? सभी ऐसे ब्रह्मचारी हो जाय तो यह दुनिया कितने दिन टिकेगी ? इस प्रश्नपर विचार करनेमे धर्मकी चर्चा भी उठ सकती है। अत. उसके उस अगको छोडकर मै केवल लौकिक दृष्टिसे उसपर विचार करूगा। मेरी रायमे यह दोनो सवाल हमारे कायरपन और डरपोकपनसे पैदा होते है। हम ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते नही, इसलिए उससे भागनेके लिए बहाने ढूढते रहते है। ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले इस दुनियामे बहुतेरे पड़े है। पर वे गली-गली मारे-मारे फिरे तो उनका मूल्य ही क्या होगा ? हीरा पानेके लिए हजारो मजदूरोको धरतीके पेटमे समा जाना पडता है। इसके बाद भी जब धूल-ककडोका पहाड धो डाला जाता है तब कही मुट्ठीभर हीरा हाथ लगता है। तब सच्चे ब्रह्मचर्यरूपी हीरेकी तलाशमे कितनी मेहनत करनी होगी, इसका जवाब हर आदमी त्रैराशिक करके निकाल सकता है। ब्रह्मचर्यके पालनसे सृष्टिकी समाप्ति हो जाय तो इससे अपने रामको क्या लेना-देना है ? हम कुछ ईश्वर नही है। जिसने सृष्टि रची है वह खुद उसकी फिक्र कर लेगा। दूसरे भी उसका पालन करेगे या नही यह सवाल तो हमे करना ही न चाहिए। हम जब वाणिज्य-व्यापार, वकालत आदि करने लगते है तब तो यह नही पूछते कि अगर सभी वकील-व्यापारी हो जायगे तो क्या होगा ? जो ब्रह्मचर्यका पालन करेगा उस पुरुष या स्त्रीको कुछ दिन बाद इस सवालका जवाब अपने-आप मिल जायगा। उसे अपने-जैसे दूसरे मिल जायगे और सभी ब्रह्मचारी हो जाय तो सृष्टि कैसे चलेगी यह भी दिनके उजालेकी तरह स्पष्ट हो जायगा।

ससारी मनुष्य इन विचारोको किस तरह अमलमे ला सकता है ? विवाहित स्त्री-पुरुष क्या करे ? बाल-बच्चे वाले क्या करे ? जो कामको वशमे न रख सके वे क्या करे ?

हमारे लिए अच्छी-से-अच्छी स्थिति क्या हो सकती है, यह हमने देख लिया। इस आदर्शको हम अपने सामने रखे तो उसकी हूबहू या उससे

कुछ उतरती नकल उतार सकेगे। हम वच्चेको अक्षर लिखना सिखाने लगते है तो सुन्दर-से-सुन्दर अक्षरके नमूने उसके सामने रखते है। वच्चा अपनी शक्तिके अनुसार उनकी पूरी-अधूरी नकल उतारता है। इसी तरह अखड ब्रह्मचर्यका आदर्श अपने सामने रखकर हम उसके अनुकरणका यत्न कर सकते है। व्याहकर लिया है तो क्या हुआ। प्रकृतिका नियम यही है कि स्त्री-पुरुषको जव सन्तानकी चाह हो तभी वे ब्रह्मचर्यका भग करे। जो दम्पती इसका ध्यान रखते हुए दो-तीन या चार-पाच वरसमे एक वार ब्रह्म-चर्यको तोडेगे वे विलकुल पागल नही वन जायगे और उनके पास वीर्यरूपी पूजी भी काफी जमा रहेगी। ऐसे स्त्री-पुरुष तो मुश्किलसे ही दिखाई देते है जो केवल सन्तानकी कामनासे ही सम्भोग करते हो। हजारो-लाखो जन तो अपनी काम-वासनाकी तृप्ति चाहते है और उसके लिए ही सम्भोग करते है। फल यह होता है कि उन्हे अपनी इच्छाके विरुद्ध सन्तानकी प्राप्ति होती है। विषय-सुख भोगनेमे हम इतने अन्धे हो जाते है कि आगे-पीछे कुछ सुझाई ही नही देता। इस विषयमे स्त्रीकी वनिस्वत पुरुष अधिक अपराधी होता है। वह इतना कामाध होता है कि स्त्रीमे गर्भ-धारण और वच्चेके पालन-पोपणका वोझ उठानेकी शक्ति है या नही, इसका उसे खयाल तक नही रहता।

पश्चिमके लोग तो इस विपयमे सीमाका अतिक्रमण कर गये है। वे इसके लिए अनेक उपाय करते है कि वे विपय-सुख तो जी भरकर भोगते रहे पर वच्चोका वोझ उन्हे न उठाना पडे। इन उपायोपर पुस्तके लिखी गई है और गर्भ-निरोधके साधन जुटाना एक रोजगार वन गया है। हम इस पापसे अभी तो मुक्त है, पर अपनी पत्नियोपर गर्भ-धारणका वोझ लादते हमे तनिक भी आगा-पीछा नही होता, न इसकी ही परवाह होती है कि हमारी सन्तान निर्वल, निर्वुद्धि, वीर्यहीन और नपुसक होगी। उलटे घरमे वच्चा पैदा होता है तो इसे भगवानकी दया मानते और उसे धन्यवाद देते है। निर्वल, निर्जीव, विपयी अपग सन्तान हो इसे हम ईश्वरका कोप क्यो न माने ? वारह वरसका वालक वाप वने इसमे किस वातकी खुशी मनाये, किस वातका उछाव-वधाव करे ? वारह वर्पकी वच्चीका माता वनना ईश्वरका महाकोप क्यो न माना जाय ? साल दो-सालके लगाये

हुए पेडमे फल आये तो उसकी वाढ मारी जायगी, यह हम जानते हैं और वह इतनी जल्दी न फले इसका उपाय करते हैं। पर वालवधूके वालक वरसे सन्तान उत्पन्न हो तो हम गाते-वजाते और दावते देते हैं ? क्या यह सामने खडी दीवारको न देखना नही है ?

हिन्दुस्तानमे या दुनियामे और कही निर्वीर्य-निकम्मे आदमी कीडो-मकोडोकी तरह पैदा हो तो इससे हिन्दुस्तान या दुनियाका उद्धार होगा ? एक दृष्टिसे तो पशु ही हमसे अच्छे हैं। हमे जव उनसे वच्चा पैदा कराना होता है तभी हम नर-मादाका सयोग कराते हैं। सयोगके वाद गर्भ-काल और प्रसवके वाद जवतक वच्चेका दूध नही छूटता और वह वडा नही हो जाता तवतकका काल अति पवित्र माना जाना चाहिए। इस कालमे स्त्री-पुरुष दोनोको ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। पर इसके वदले हम क्षण-भर भी सोचे-विचारे विना अपना काम किये जाते हैं। इतना रोगी हो गया है हमारा मन ! इसको कहते है असाध्य रोग। यह रोग हमे मौतके पास पहुँचा देता है. और मौत नही आती तवतक हम पागलकी तरह भरमते रहते हैं।

अत विवाहित स्त्री-पुरुषोका फर्ज है कि अपने विवाहका गलत अर्थ न लगाकर सही अर्थ लगाये और जव उन्हे सचमुच सन्तानकी इच्छा और आवश्यकता हो तभी उत्तराधिकारीकी प्राप्तिके उद्देश्यसे समागम करे। हमारी आजकी दयनीय दशामे यह होना वहुत ही कठिन है। हमारी खुराक, हमारी रहन-सहन, हमारी वातचीत, हमारे आसपासके दृश्य सभी हमारी विषय-वासनाको जगानेवाले हैं। अफीमके नशेकी तरह विषय-वासना हमारे सिरपर सवार रहती है। ऐसी स्थितिमे विचार करके पीछे हटना कैसे हो सकेगा ? पर जो होना चाहिए वह कैसे होगा, यह पूछनेवालोकी

ऊपर जो-कुछ लिखा गया है उससे हम यह नतीजा निकाल सकते है कि जो लोग अबतक अविवाहित है उन्हे इस कठिन कालमे ब्याह करना ही न चाहिए। और अगर ब्याह किये बिना चले ही नही तो जितनी देरसे कर सके, करे। २५-३० वर्ष तक ब्याह न करनेकी तो युवकोको प्रतिज्ञा ही कर लेनी चाहिए। इस व्रतसे स्वास्थ्यके अतिरिक्त जो अन्य अनेक लाभ होगे उनका विचार हम यहा नही कर सकते। पर हर आदमी वे लाभ ले सकता है।

जो मा-बाप इस लेखको पढे उनसे मेरा कहना है कि जो लोग बचपन ही मे अपने बेटे-बेटियोका ब्याह या सगाई करके उन्हे बेच देते है वे उनका घोर अहित करते है। ऐसा करके वे अपने बच्चोका हित करनेके बदले अपने ही अन्धे स्वार्थका साधन करते है। उन्हे अपना बडप्पन दिखाना है, जाति-बिरादरीमे नाम पैदा करना है, बेटेका ब्याह करके हौसला निकालना है। उन्हे बेटेका हित देखना हो तो उसकी पढाई-लिखाईपर निगाह रखे, उसकी सेवा-जतन करे, उसकी देहको दृढ-पुष्ट बनानेका उपाय करे। इस कठिन कालमे बचपनमे ही उनके गलेमे गृहस्थीका जुआ डाल देनेसे बढकर उनका अहित और क्या हो सकता है?

अन्तमे स्वास्थ्यका नियम यह भी है कि पति-पत्नीमेसे किसी एककी मृत्यु हो जाय तो दूसरा इसके बाद विधुरत्व या वैधव्य-व्रतका पालन करे। कितने ही डाक्टर कहते है कि जवान स्त्री-पुरुषको वीर्यपातका मौका मिलना ही चाहिए। दूसरे कितने ही डाक्टर कहते है कि किसी भी हालतमे वीर्य-पात आवश्यक नही। जब डाक्टर आपसमे यो लड रहे हो तब यह मानकर कि डाक्टर हमारे मतका समर्थन करते है हम विषय-भोगमे लीन रहे, यह कदापि न होना चाहिए। मेरे अपने और जिन दूसरोके अनुभव मै जानता हू उनके आधारपर मै निस्सकोच कह सकता हू कि स्वास्थ्य-रक्षाके लिए सभोगकी आवश्यकता नही है, यही नही, उससे—वीर्य-व्ययसे—स्वास्थ्यकी भारी हानि होती है। अनेक बरसोमे कमाई हुई तन-मनकी शक्ति एक बार-के वीर्य-पातसे भी इतना खर्च हो जाती है कि उस छीजको भरनेके लिए बहुत समय चाहिए। और इतना वक्त लगाकर भी हम अपनी पहली

स्थितिको तो पहुँच ही नही सकते। टूटे हुए शीशेको मसालेसे जोडकर आप उससे काम भले ही ले ले, पर वह होगा तो टूटा हुआ ही।

वीर्यकी रक्षाके लिए स्वच्छ वायु, स्वच्छ जल, स्वच्छ आहार और स्वच्छ विचारकी पूरी आवश्यकता है। इस प्रकार सदाचारका स्वास्थ्यके साथ बहुत नजदीकका नाता है। पूर्ण सदाचारी पुरुष ही पूर्ण स्वास्थ्यका सुख भोग सकता है। 'जगे तबसे सवेरा' मानकर जो लोग ऊपर लिखी बातोंपर भरपूर विचार करके उनमे दी हुई सलाहोपर अमल करेगे उन्हे खुद उनकी सचाईका अनुभव हो जायगा। जिसने थोडे दिन ब्रह्मचर्यका पालन किया होगा वह भी अपने तन और मन दोनोका बल बढा हुआ पायेगा। और यह पारस-मणि एक बार उसके हाथ लगी तो वह यावज्जीवन उसको बहुत सभालकर रखेगा। जरा भी चूकेगा तो तुरत उसे पता चल जायगा कि उसने भारी भूल की। मैने तो ब्रह्मचर्यके अगणित लाभ जान और समझ लेनेके बाद भी भूले की और उनके कडवे फल भी चख लिये है। चूकके पहले अपने मनकी जो भव्य दशा थी और उसके बाद जो दीन दशा हो गई, दोनोकी तसवीरे अब भी मेरी आखोके सामने आया करती है। पर अपनी चूकोंसे ही मै इस पारस-मणिका मूल्य जान सका। अब भी ब्रह्मचर्यका अखंड पालन कर सकूँगा कि नहीं यह तो नहीं जानता, पर भगवान्‌की दया होनेसे पार पानेकी आशा रखता हू। उसने मेरे तन-मनका जो उपकार हुआ है वह मैं देख सकता हू। मै बचपनमे ब्याहा गया। बचपनमे ही कामसे

भोग-रत रहनेके वाद मैं जाग पाया। तब अगर वे २० साल भी मैं बचा सका होता तो आज मैं कहा होता ? मैं मानता हू कि वैसा हुआ होता तो आज मेरे उत्साहका पार न होता और जनताकी सेवामे या अपने स्वार्थके कामोमे ही मैं इतना उत्साह दिखलाता कि मेरी बरावरी करनेवालेकी पूरी परीक्षा हो जाती। इतना सार मेरे खडित ब्रह्मचर्यके उदाहरणमेसे खीचा जा सकता है। तव जो अखड ब्रह्मचर्यका पालन कर सकता है उसके शारीरिक, मानसिक और नैतिक वलको तो जिसने देखा है वही जान सकता है। उसका वर्णन नही हो सकता।

इस प्रकरणको पढनेवालोने यह तो समझ ही लिया होगा कि जब मैंने विवाहितोको ब्रह्मचर्य-धारणकी ओर जिनका घर उजड गया है उन्हे विधुर या विधवा वने रहकर ही जिदगी बितानेकी सलाह दी है तव विवाहित या अविवाहित स्त्री या पुरुषको और कही अपनी काम-वासना तृप्त करनेका अवकाश तो हो ही नही सकता। परन्तु परस्त्री या वेश्यापर कुदृष्टि डालनेके जो घोर परिणाम होते है उनपर विचार करनेके लिए हम यहा नही रुक सकते। यह धर्म और नीति-तत्त्वका गम्भीर प्रश्न है। यहा तो इतना ही कहा जा सकता है कि परस्त्री-गमन और वेश्या-गमनसे आदमी गरमी-सूजाक जैसे रोगोसे पीडित होता और सडता दिखाई देता है। प्रकृति इतनी दया करती है कि ऐसे स्त्री-पुरुषोको अपने पापका फल तुरत मिल जाता है। फिर भी वे सोये ही रहते है ओर अपने रोगोकी दवाकी खोजमे वैद्य-डाक्टरोके यहा भटकते रहते है। परस्त्री-गमन न हो तो ५० फीसदी वैद्य-डाक्टर बेरोजगार हो जायगे। इन रोगोने मनुष्य-जातिको इस तरह जकड लिया है कि विचारशील डाक्टर भी कहते है कि परस्त्री-गमनकी वुराई समाजसे न गई तो हमारे लाख खोज करते रहनेपर भी मानव-जातिका नाश निश्चित है। इससे होनेवाले रोगोकी दवाए भी इतनी जहरीली है कि उनसे एक रोग जाता दिखाई देता है तो दूसरे देहमे डेरा डालते है और पीढी-दर-पीढी चलते है।

यह प्रकरण जितना सोचा था उससे अधिक लवा हो गया। अत अव विवाहित जनोको ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय वताकर इसे समाप्त करता

हू। महज खूराक, हवा-पानीके नियमोका पालन करके ही कोई विवाहित पुरुष ब्रह्मचर्य नही निभा सकता। उसे अपनी स्त्रीके साथ एकान्तमे मिलना-जुलना बद करना होगा। थोडा विचार करनेसे हर आदमी देख सकता है कि सभोगके सिवा और किसी बातके लिए अपनी स्त्रीसे एकान्तमे मिलनेकी जरूरत नही होती। रातमे पति-पत्नीको अलग-अलग कमरोमे सोना चाहिए। दिनमे दोनोको अच्छे कामो और अच्छे विचारोमे सदा लगे रहना चाहिए। जिनसे अपने सद्विचारको उत्तेजन मिले ऐसी पुस्तके पढे। ऐसे स्त्री-पुरुषोके चरित्रोका मनन करे और विषय-भोगमे दु ख-ही-दु ख है इसे सदा स्मरण रखे। संभोगकी इच्छा जब-जब हो तब-तब ठडे पानीसे नहा लिया करे। शरीरमे रहनेवाली महाग्नि इससे और अच्छा रूप प्राप्त करेगी और स्त्री-पुरुष दोनोके लिए उपकारक होकर उनके सच्चे सुखकी वृद्धि करेगी। यह बात है तो कठिन, पर कठिनाइयोको जीतनेके लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। जिसे सच्चा स्वास्थ्य भोगना हो उसे इस कठिनाईपर विजय प्राप्त करनी ही होगी।

: १० :

सुधार या बिगाड़

एक भाई जिन्हे मै अच्छी तरह जानता हू, लिखते है

"क्या प्रचलित नीति प्राकृतिक है ? यह प्रश्न मनमे वारवार उठा करता है। आपने 'नीति-धर्म' लिखकर आजकी प्रचलित नीतिका समर्थन किया हे। पर क्या यह नीति प्रकृति-प्रेरित है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह अप्राकृतिक है। आजकी नीतिकी बदौलत ही तो मनुष्य विषय-भोगमे पशुसे भी अधिक अधम वन गया हे। आजकी नीति-मर्यादामे विवाह-सम्वन्ध सन्तोषजनक शायद ही होता हो, होता ही नही कहू तो भी गलत न होगा। जव व्याहका नियम न था तव प्रकृतिके अनुसार स्त्री-पुरुषका समागम होता था और वह सुखदायी होता था। जवसे नीतिके बधन लगे तवसे तो यह समागम एक तरहकी व्याधि वन गया है जिसमे आज सारा जगत् ग्रस्त है और होता जा रहा है।

"फिर नीति कहे किसको ? एककी नीति दूसरेके लिए अनीति है। एक एक ही स्त्रीके साथ व्याह करना स्वीकार करता है, दूसरा अनेक पत्निया करनेकी छूट देता है। कोई चाचा-मामाके वेटे-वेटीके साथ विवाह-सम्वन्ध त्याज्य मानता है, कोई इसकी इजाजत देता है। तव किसे नीति माने ? मेरा तो कहना है कि व्याह एक सामाजिक विधान है, धर्मके साथ इसका कोई लगाव नही। अगले जमाने के महापुरुषोने देश-कालके अनुसार नीति वना ली।

"अव आप देखे कि इस नीतिने दुनियाका किस तरह नाश किया है—

१ गरमी-सूजाक-जैसे रोग पैदा हुए। पशुओमे इन वीमारियोका पता नही है, इसलिए कि उनमे समागम प्रकृतिके नियमानुसार होता है।

२. भ्रूण-हत्या और वाल-हत्याएँ हुईं, यह लिखते तो कलेजा काप

उठता है। इस नीति-नियमके कारण ही कोमलहृदया माता क्रूर बनकर अपने ही हाथो, गर्भमे ही या गर्भसे बाहर आनेपर, अपने बच्चोका वध करती है।

३. बाल-विवाह, बेमेल विवाह इत्यादि इच्छा-विरुद्ध समागम। इसी समागमकी बदौलत आज दुनिया, खासकर हिन्दुस्तान बल-वीर्यमे इतना रक हो रहा है।

४ जन-जमीन-जरके झगडोमे 'जन' (स्त्री) के लिए होनेवाले झगडेका स्थान पहला है। यह भी आज चलनेवाली नीतिकी ही देन है।

"इन चारके सिवा और बाते भी होगी। तब मेरी दलील सही हो। तो क्या प्रचलित नीतिमे सुधार न होना चाहिए।

"आप ब्रह्मचर्यको मानते है सो तो ठीक है। पर ब्रह्मचर्य अपनी खुशीका होना चाहिए, जोर-जबर्दस्तीका नही। मगर हिंदू तो लाखो विधवाओसे जबर्दस्ती ब्रह्मचर्य रखवाते है। इन विधवाओका दु ख तो आप जानते है। इसकी बदौलत बाल-हत्याएँ होती है, यह बात भी आपसे छिपी नही है। ऐसी दशामे उनके पुनर्विवाहके पक्षमे आप जबर्दस्त आन्दोलन चलाये तो क्या यह कम महत्त्वका कार्य होगा ? फिर इस ओर जितना चाहिए उतना घ्यान आप क्यो नही देते ?"

मै समझता हू, लेखकने इस लेखमे जो प्रश्न उठाये है वे केवल इसीलिए उठाये गये है कि मै इस विषयपर कुछ लिखू। कारण यह कि इसमे जिस पक्षका समर्थन किया गया है उस पक्षका समर्थन लेखक खुद करता होगा यह मै नही जानता। पर इतना जानता हू कि इस लेखमे जो प्रश्न आये हैं वे अब हिदुस्तानमे भी उठने लगे है। इन विचारोकी पैदाइश पश्चिममे हुई है। ब्याह दकियानूसी, जगली, अनीति बढानेवाली प्रथा है—यह माननेवालोकी सख्या पश्चिममे पहले भी कुछ छोटी नही थी। अब तो शायद वह बढती भी जा रही है। ब्याहको जगली रिवाज माननेके लिए पच्छिममे जो दलीले दी जाती है उन सभीको मैने नही पढा है। पर प्रस्तुत लेखकने जो दलीले दी है वैसी ही वे हो तो मुझ-जैसे पुराण-पथी (या मेरा यह दावा टिक सकता हो तो सनातनी) को उनका खडन करनेमे कोई कठिनाई या परेशानी न होगी।

मनुष्यकी पशुके साथ तुलना करना ही भूलकी जड है। मनुष्यके लिए जो नीति और मानदड व्यवहृत होता है वह पशु-नीतिसे अनेक विषयोमे भिन्न और श्रेष्ठ है। और इस भेदमे ही मनुष्यकी विशेषता है। इसलिए प्रकृतिके नियमोका जो अर्थ पशु-योनिके लिए किया जाता है वह मनुष्य-योनिपर सदा घटित नही होता। मनुष्यको ईश्वरने विवेककी शक्ति दे रखी है। पशु पूर्णतया पराधीन है। पशुके लिए स्वतन्त्रता अर्थात् पसन्द, चुनाव जैसी कोई चीज है ही नही। पर मनुष्यकी अपनी पसन्द होती है—दो चीजोमेसे एकको वह चुन सकता है, भले-बुरेका विचार कर सकता है, और स्वतन्त्र होकर काम करता है इससे उसके लिए पाप-पुण्य भी होता है। पर जहा उसके लिए पसन्द-चुनावका अवकाश है वहा पशुसे हीन वन जानेका अवकाश भी है। वह अगर अपने दिव्य स्वभावका अनुसरण करे तो वह पशुसे ऊपर भी उठ सकता है। जगली-से-जगली जान पडती हुई जातिमे भी थोडा-बहुत विवाहका बधन होता ही है। अगर कहिए कि इस बधनमेही उसका जगलीपन है, क्योकि पशु इस बधनमे बधता ही नही तो इसका अर्थ यह निकला कि स्वच्छन्दता ही मनुष्यका नियम है। पर सारे मनुष्य चौबीस घटे भी पूर्ण स्वेच्छाचारी वने रहे तो दुनियाका खातमा ही हो जाय। कोई किसीकी न सुने, न माने, स्त्री-पुरुषके वीच किसी मर्यादाका होना अधर्म माना जाय। मनुष्यके वासना-विकार तो पशुसे प्रवल होते ही है। इन विकारोकी लगाम ढीली कर दी जाय तो इनके वेगमेसे पैदा होनेवाली आग ज्वालामुखीका विस्फोट वनकर क्षण-भरमे दुनियाको भस्म कर डालेगी। थोडा-सा विचार करनेसे यह बात हमारे लिए स्पष्ट हो जायगी कि मनुष्यने जो इस जगत्के दूसरे अनेक प्राणियोपर स्वामित्व प्राप्त कर लिया है वह केवल अपने सयम, त्याग, आत्म-वलिदान, यश और कुरवानीके वलसे ही किया है।

गरमी-सूजाकका उपद्रव व्याहकी वदौलत नही है। उनकी उत्पत्तिका कारण है विवाहके नियमोका भग किया जाना और मनुष्यका पशु न होते हुए भी पशुका अनुकरण करते जाकर दूषित हो जाना। विवाहके नियमोका पालन करनेवाले एक भी आदमीको मै नही जानता जिसे कभी ऐसी भयानक वीमारिया हुई हो। चिकित्सा-शास्त्रने इस वातको सिद्ध कर

दिया है कि जहा-जहा रोग हुए है वहां-वहा मुख्यत: विवाह-नीतिका भग करने या इस नीतिका भग करनेवालोके स्पर्शसे ही हुए है। बाल-विवाह और बाल-हत्याकी निर्दय प्रथा भी विवाह-नीतिसे नही बल्कि उस नीतिका भग करनेसे पैदा हुई है। विवाह-नीति तो यह कहती है कि जब पुरुष या स्त्री पूरी उम्रको पहुँच जाय, उसे सन्तानकी चाह हो, वह तन-मनसे स्वस्थ हो, तभी कुछ मर्यादाओके अदर रहते हुए वह अपने लिए योग्य साथी ढूँढ ले या उसके मा-बाप ढ्ढ दे। उस साथीमे भी आरोग्य आदि गुण होने ही चाहिए। इस विवाह-नीतिका अनुसरण करनेवाले आदमी दुनियामे कही भी जाकर देखिए, सुखी ही दिखाई देगे। जो बात बाल-विवाहकी है वही वैधव्यकी भी है। दु खरूप वैधव्य विवाह-नीतिके भगसे ही उत्पन्न होता है। जहां शुद्ध सच्चा ब्याह हुआ हो वहा वैधव्य या विधुरत्व सहज सुखरूप और शोभा-रूप होते है। विवाह-सम्बन्ध जहा ज्ञानपूर्वक जोडा जाता है वहा यह सम्बन्ध केवल देहका ही नही बल्कि आत्माका भी होता है। और आत्माका सम्बन्ध देह छूट जानेपर भी बना रहता है, वह तो कभी भुलाया ही नही जा सकता। जिसे इस सम्बन्धका ज्ञान है उसके लिए पुनर्विवाह अनहोनी बात है, अनुचित है, अधर्म है। जिस ब्याहमे ऊपर बताये हुए नियमोका पालन न हो उस सम्बन्धको ब्याह कहना ही न चाहिए। और जहा विवाह नही वहा वैधव्य या विधुरत्व-जैसी कोई चीज हो ही नही सकती। ऐसे आदर्श विवाह अगर हमे अधिक होते हुए नही दिखाई देते तो यह उस विवाहकी प्रथाका नाश करनेका नही बल्कि उसे दृढ नीवपर स्थापित करनेकी दलील होनी चाहिए।

सत्यके नामसे असत्य चलानेवालोकी सख्या देखकर कोई सत्यमें ही दोष निकाले या उसकी अपूर्णता सिद्ध करनेका यत्न करे तो हम उसे अज्ञान मानेगे। वैसे ही विवाह-नीतिके भगके उदाहरणोसे उस नीतिकी निदा करनेका यत्न भी अज्ञान और अविचारका ही लक्षण है।

लेखकका कहना है कि विवाह धर्म या नीतिका विपय नही है, यह तो महज्ञ एक रूढि या रिवाज है, और वह भी धर्म और नीतिके विरुद्ध है, इस-लिए इस लायक है कि उठा दिया जाय। पर मेरी अल्प मतिके अनुसार तो विवाह धर्मकी रक्षा करनेवाली वाड़ है और वह न रही तो दुनिया मे धर्म

नामकी कोई वस्तु भी न रहेगी। धर्मकी नीव ही सयम या मर्यादा है। जो आदमी सयमी, परहेजगार नही है वह धर्मको क्या समझेगा ? पशुकी वनिस्वत मनुष्यमे वासना-विकार वहुत अधिक है। दोनोके विकारोकी तुलना हो ही नही सकती। जो आदमी अपनी वासनाओ, विकारोको वशमे नही रख सकता वह ईश्वरकी पहचान कर ही नही सकता। इस सिद्धान्तका समर्थन करनेकी आवश्यकता ही नही। कारण यह कि जो ईश्वरका अस्तित्व अथवा आत्मा और देहकी भिन्नताको स्वीकार नही करता उसके लिए विवाह-वधनकी आवश्यकता सिद्ध करना कठिन होगा, यह मै मानता हू। और जो आत्माका अस्तित्व स्वीकार करता और उसका विकास करना चाहता है उसे यह समझानेकी जरूरत होती ही नही कि देहका दमन किये विना आत्माकी पहचान या उसका विकास होना अनहोनी वात है। देह या तो स्वच्छद आचरणका साधन होगी या आत्माको पहचाननेका तीर्थक्षेत्र। अगर वह आत्माकी पहचान करनेवाला तीर्थस्थान है तो उसमे स्वेच्छाचारके लिए स्थान हो ही नही सकता। देहको आत्माके अधीन करनेका प्रयत्न प्रतिक्षण कर्त्तव्य है।

'ज़न-ज़मीन-ज़र' 'झगडेके घर' वही होते है, जहा सयम-धर्मका पालन नही होता। व्याहकी प्रथाको मनुष्य जितना ही आदर-मान देगा स्त्री 'झगडेका घर' वननेसे उतना ही वचेगी। अगर हरएक स्त्री-पुरुष पशुकी तरह जव जैसा चाहे आचरण कर सके तो सव मनुष्य आपसमें लडकर एक-दूसरेका नाश ही कर डाले। इसलिए मेरी तो यह पक्की राय है कि जिन दोष-दुराचारोका उल्लेख लेखकने किया है उनकी दवा विवाह-धर्मका छेदन नही वल्कि उसका सूक्ष्म निरीक्षण और पालन है।

कही स्वजनो और निकट सम्वन्धियोमे व्याहका सम्वन्ध जोडनेकी इजाजत है, कही नही, और यह निस्सदेह नीतिकी भिन्नता है। कही एक-पत्नी-व्रतका पालन धर्म माना जाता है, कही एक साथ कई पत्नियोका पति वननेमें प्रतिवध नही होता। नीतिमे यह भिन्नता न होना इष्ट है। पर यह भेद हमारी अपूर्णताकी सूचना देता है, नीतिकी अनावश्यकताका नही। हमारा अनुभव ज्यो-ज्यो वढता जायगा त्यो-त्यो सव जातियो और सव

धर्मोंके माननेवालोमे नीतिकी एकता पैदा होती जायगी। नीतिकी सत्ता स्वीकार करनेवाला जगत् तो आज भी एकपत्नी-व्रतको ही आदरकी दृष्टिसे देखता है। कोई भी धर्म यह तो कहता ही नही कि अनेक स्त्रियोको पत्नी बनाना पुरुषपर फर्ज है, वह इसकी छूट भर देता है। देश-काल देखकर किसी बातकी इजाजत दे दी जाय तो इससे आदर्श गलत नही हो जाता और न आदर्शकी भिन्नता ही सिद्ध होती है।

विधवाओके विषयमे अपने विचार मै अनेक बार प्रकट कर चुका हू। बाल-विधवाका पुनर्विवाह मै इष्ट मानता हू। इतना ही नही, यह भी मानता हू कि उसका ब्याह कर देना मा-बापका फर्ज है।

: ११ :

वीर्य-रक्षा

कुछ नाजुक मसलोकी निजी तौरपर चर्चा करना पसन्द करते हुए भी मुझे प्रकाश्य रूपमे उनकी चर्चा करनी पडती है। 'यग इडिया'के पाठक मुझे इसके लिए माफ करेंगे। पर जिस साहित्यको मुझे मजबूरन सरसरी तौरपर पढ लेना पडा है और श्री ब्यूरोकी पुस्तकपर मेरी आलोचना-को लेकर मेरे पास जो पचासो पत्र आये है उनके कारण समाजके लिए अति महत्त्वपूर्ण एक प्रश्नकी सार्वजनिक रूपमे चर्चा करना जरूरी हो गया है। एक मलाबारी भाई लिखते है—

"श्री ब्यूरोकी पुस्तककी आलोचनामे आपने लिखा है कि ब्रह्मचर्य अथवा लबे अरसेतक सयम रखनेसे किसीकी हानि हुई हो, इसकी एक भी मिसाल हमे नही मिलती। मुझे खुद अपने लिए तो अधिक-से-अधिक तीन सप्ताह तक सयम रखना ही लाभजनक मालूम होता है। इसके बाद आम तौरसे मुझे बदन भारी और मन-शरीर दोनोमें बेचैनी मालूम होने लगती है, जिससे मिजाजमे भी चिडचिडापन पैदा हो जाता है। तभी तबीयत ठिकाने आती है जब स्वाभाविक सयोग द्वारा वीर्यपात हो जाय या प्रकृति खुद ही स्वप्नदोषके रूपमे उसका उपाय कर दे। इससे देह या दिमागमे कमजोरी महसूस करनेके बदले सवेरे उठनेपर मै अपना दिमाग ठडा और हलका पाता हू और अपना काम अधिक उत्साहसे कर सकता हू।

"मेरे एक मित्रके लिए तो सयम स्पष्ट रूपसे हानिकर सिद्ध हुआ। उनकी उम्र ३२के लगभग होगी। पक्के शाकाहारी और धर्मनिष्ठ पुरुष है। न कोई तनका दुर्व्यसन है, न मनका। फिर भी दो साल पहले तक, जब उन्होने ब्याह किया, रातमे स्वप्नदोष होकर, बहुत अधिक वीर्यपात हो जाया करता था, जिससे सवेरे तन, मन दोनो बहुत सुस्त, कमजोर मालूम

होते थे। कुछ दिन बाद उन्हे पेडूमे असह्य पीडा होने लगी। गावमे एक वैद्यकी सलाहसे उन्होने ब्याह कर लिया और अब भले-चगे है।

"मै बुद्धिसे तो ब्रह्मचर्यकी श्रेष्ठताका कायल हू, जिसके विषयमे हमारे सभी प्राचीन शास्त्र एकमत है। पर जो अनुभव मैने ऊपर लिखा है उससे स्पष्ट है कि हमारी शुक्र-ग्रथियोसे जो वीर्य निकलता है उस सबको पचा लेनेकी शक्ति हममे नही है और वह फाजिल वीर्य विष हो जाता है। अत आपसे सविनय प्रार्थना है कि मुझ-जैसे लोगोके लिए, जिन्हे सयम और ब्रह्मचर्यके महत्त्वमे पूर्ण विश्वास है, 'यग इण्डिया' मे हठयोगके आसन जैसा कोई साधन या क्रिया बतानेकी कृपा करे जिससे हम अपने शरीरमे पैदा होनेवाले वीर्यको पचा लेनेमे समर्थ हो सके।"

पत्र-लेखकने जो मिसाले पेश की है वे सामान्य अनुभव है। ऐसे अनेक उदाहरणोमे मैने देखा है कि लोग दो-चार अनुभवोको ही लेकर सामान्य नियम बना लेते है। वीर्यको पचा लेनेका सामर्थ्य लबे अभ्याससे प्राप्त होता है। यह अनिवार्य भी है, क्योकि इससे हमे तन-मनका जो बल मिलता है वह और किसी साधनासे नही मिल सकता। दवाए और ऊपरी उपाय शरीरको मामूली तौरसे ठीक रख सकते है। पर मनसे वे इतना निर्बल कर देते है कि वासनाएं और विकार घातक शत्रुकी तरह हर आदमीको सदा घेरे रहते है। उनका सामना करनेकी शक्ति उसमे नही रह जाती।

हम अक्सर जो फल चाहते है उनसे उलटे फल देनेवाले नही तो उनकी प्राप्तिमे बाधक होनेवाले कर्म करते है। हमारा जीवन-क्रम वासनाओकी तृप्तिको लक्ष्य मानकर ही बनाया गया है। हमारा भोजन, हमारा साहित्य, हमारा मन-बहलाव, हमारा काम करनेका समय, सभी इस ढगसे रखे गये है कि हमारी पाशव वासनाओको उभारे और पोसे। हममेंसे सैकड़े ९०-९५ लोगोकी इच्छा होती है कि ब्याह करे, बाल-बच्चे हो और जीवनका सुख—मर्यादित रूपमे ही सही—भोगे। जीवनके अन्ततक यही ढर्रा चलता रहता है।

पर नियमके अपवाद सदा हुए है, आज भी है। ऐसे लोग भी हुए है और है जो अपना सपूर्ण जीवन मानव-जातिकी सेवामे लगा देना चाहते थे। मानव-जातिकी सेवा भगवान्‌की भक्तिका समानार्थक है। वे अपने विशेष

कुटुम्बके पालन-पोषण और विश्वकुटुम्बकी सेवामे अपने समयका बटवारा करना नही चाहते। निश्चय ही ऐसे स्त्री-पुरुषोके लिए वह साधारण जीवन-क्रम रखना सभव नही जो विशेष, वैयक्तिक स्वार्थोकी पूर्तिको उद्देश्य मानकर वनाया गया है। जो भगवान्‌को पानेके लिए ब्रह्मचर्य-व्रत लेगा उसे जीवनकी लगाम ढीली कर देनेसे मिलनेवाले सुखोका मोह छोडना ही होगा और इस व्रतके कडे बधनोमे ही सुख मानना होगा। वह दुनियामे रहे भले ही, पर उसका होकर नही रहेगा। उसका भोजन, उसका काम-धधा, उसके काम करनेका समय, उसके मन-बहलावके साधन, उसका साहित्य, जीवनके प्रति उसकी दृष्टि, सभी साधारण जन-समुदायसे भिन्न होगे।

अव हम यह पूछ सकते है कि पत्र-लेखक और उनके मित्रने क्या पूर्ण ब्रह्मचारी वननेका सकल्प किया था और किया था तो अपने जीवनके ढगको उस साचेमे ढाल लिया था? अगर यह नही किया था तो यह समझना कठिन नही कि क्यो एकको वीर्यपातसे आराम मिलता था और दूसरेको उससे सुस्ती-कमजोरी पैदा होती थी। ब्याह निस्सदेह दूसरेके लिए दवा था। उन लाखो-करोडो आदमियोके लिए भी वह परम स्वाभाविक और इष्ट अवस्था है जिनका मन उनके न चाहनेपर भी सदा ब्याह और विवाहित जीवनकी वाते सोचा करता है। न दवाये हुएपर अमूर्त विचारकी शक्ति उस विचारसे कही अधिक होती है जो मूर्तिमान हो चुका हो, अर्थात् कार्य-रूप प्राप्त कर चुका हो। और जव कर्मपर समुचित अकुश रखा जाता है तव वह खुद विचारपर ही असर डालने और उसे ठीक रास्तेपर लगाने लगता है। इस रीतिसे कार्य-रूप प्राप्त करनेवाला विचार वन्दी वनकर हमारे वशमे आ जाता है। इस दृष्टिसे देखिए तो व्याह भी सयमका एक प्रकार ही है।

जो लोग सयमका जीवन विताना चाहते है, उन्हे व्यौरेवार हिदायते एक छोटे-से अखवारी लेखमे नही दी जा सकती। ऐसे लोगोको तो मै अपनी छोटी-सी पुस्तक 'आरोग्यविषयक सामान्य ज्ञान' पढ जानेकी सलाह दूगा, जो इसी उद्देश्यको लेकर कुछ वरस पहले लिखी गई थी। नये अनुभवोकी दृष्टिसे उसके कुछ अशोको दोहरानेकी जरूरत जरूर हो गई है, पर उसके

एक भी शब्दको मै वापस लेनेके लिए तैयार नहीं हू। फिर भी सयम-पालनके सामान्य नियम यहा बताये जा सकते है—

१. मिताहारी बनिए, सदा थोडी भूख बाकी रहते ही चौकेपरसे उठ जाइए।

२. अधिक मिर्च-मसालेवाली और अधिक घी-तेलमे तली-पकी साग-भाजियोसे परहेज रखिए। जब दूध काफी मिलता हो तो अलगसे घी-तेल खानेकी जरूरत बिलकुल नही होती। और जब वीर्यका व्यय बहुत थोडा होता है तब थोडा भोजन भी काफी होता है।

३. तन-मन दोनोको सदा सुथरे कामोमे लगाये रखिए।

४. जल्दी सोने और जल्दी उठनेका नियम जरूरी चीज है।

५. सबसे बडी बात यह है कि सयमका जीवन बितानेके लिए भगवान्‌के पाने, उनसे सायुज्य-लाभकी उत्कट जीती-जागती इच्छा होना पहली शर्त है। हृदय जब इस बुनियादी बातका अनुभव करने लगेगा तब यह विश्वास दिन-दिन बढता जायगा कि भगवान् अपने इस औजारको खुद साफ-सुथरा और काम देने लायक बनाये रखेगे। गीता कहती है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

और यह अक्षरश सत्य है।

पत्र-लेखक आसन और प्राणायामकी बाते करते है। मै मानता हूं कि सयमके पालनमे आसन-प्राणायामका स्थान महत्त्वपूर्ण है। पर मुझे खेदके साथ कहना पडता है कि इस विषयमे मेरा अनुभव इस लायक नही कि लिखा जाय। जहातक मै जानता हू, इस विषयपर ऐसा साहित्य नहीके बराबर ही है जिसका आधार इस जमानेका अनुभव हो। पर यह क्षेत्र अन्वेषण करने योग्य है। मगर मै अनुभवहीन पाठकोको यह चेतावनी दूगा कि वे इसके प्रयोग न करे और न जो कोई हठयोगी उन्हे मिल जाय उसको गुरु बना ले। उन्हे यह विश्वास रखना चाहिए कि सयमयुक्त और धर्म-निष्ठ जीवन ब्रह्मचर्यके अति अभीष्ट लक्ष्यकी सिद्धिके लिए पर्याप्त है।

: १२ :

मनोवृत्तियोंका प्रभाव

एक भाई लिखते हैं—

"जनन-निरोधके विषयपर 'यग इडिया'मे आपने जो लेख लिखे है उन्हे मै बडे चावसे पढता रहा हू । आशा है, आपने जे० ए० हैडफील्डकी पुस्तक 'साइकालोजी एड मॉरल्स (मानस-शास्त्र और नीति) पढी होगी । मै उसके इन वाक्योकी ओर आपका ध्यान खीचना चाहता हू—'काम-वासना की अभिव्यक्ति जब हमारी नीति-भावनाके प्रतिकूल होती है तो हम उसे रति-सुख कहते है और जब वह हमारी प्रेम-भावनाके अनुकूल होता है तब हम उसे कामजनित आनन्द कहते है । काम-वासनाकी यह अभिव्यक्ति या तृप्ति पति-पत्नीके परस्पर प्रेमको नष्ट न करके उसको और गाढा करती है । पर सयमरहित सभोग और काम-वासनाकी तृप्ति हेय सुख है, इस भ्रमसे किया जानेवाला इन्द्रिय-दमन दोनो अक्सर मिजाजमे चिडचिडापन पैदा करते और प्रेमको शिथिल कर देते है ।' अर्थात्, लेखक यह मानता है कि सभोग सन्तानोत्पादनके अतिरिक्त पति-पत्नीके परस्पर प्रेमको भी अधिक पुष्ट और दृढ करता है, इसलिए वह एक धार्मिक सस्कार या क्रिया जैसा है और लेखककी बात ठीक हो तो केवल सन्तानोत्पादनके लिए किया जाने-वाला ही सभोग जायज है—अपने इस सिद्धान्तका समर्थन आप किस तरह करेगे, यह जाननेकी मुझमे उत्सुकता है । मै खुद तो लेखककी रायको ठीक ही मानना चाहता हू, क्योकि वह मानस-शास्त्रके एक प्रमुख पडितकी राय तो है ही, मै खुद भी ऐसे लोगोको जानता हू जिनका दाम्पत्य-जीवन प्रेम-भावनाको शरीर-सगके रूपमे व्यक्त करनेकी स्वाभाविक इच्छाके दमनकी कोशिशसे विकृत और नष्ट हो गया है । एक मिसाल लीजिये । एक युवक और एक युवती एक दूसरेको प्यार करते है । पर उनके पास इतना पैसा

नही कि बच्चेके पालन पोषण-और पढाने-लिखानेका बोझ उठा सके। यह तो आप भी जानते ही होगे कि इस सामर्थ्यके बिना बच्चा पैदा करना पाप है। आप चाहे तो यह भी कह सकते है कि बच्चा पैदा करना स्त्रीकी तन्दुरुस्तीके लिए खराब होगा या उसके पास यो ही जरूरतसे ज्यादा बच्चे है। अब आपके मतानुसार इस जोडेके लिए दो ही रास्ते है—या तो वे ब्याह करे और अविवाहितकी तरह अलग-अलग रहे या अविवाहित रहे। पहली हालतमे हैडफील्डकी बात सही हो तो वासनाके दमनके कारण उनमे चिड़-चिड़ापन पैदा होगा और उनका प्रेम नष्ट होगा। दूसरी सूरतमे भी वह नष्ट होगा, क्योकि प्रकृति हमारी मानव-व्यवस्थाओका कतई लिहाज नही करती। यह बेशक हो सकता है कि वे एक-दूसरेसे जुदा हो जाय। पर इस बिलगावमे भी मन तो अपना काम करता रहेगा। अत. वासनाके दमनसे मानस विकृतिया उत्पन्न होगी। और अगर समाज-व्यवस्थाको बदलकर ऐसी कर दे कि हर आदमी अधिक-से-अधिक बच्चोका बोझ उठानेमे समर्थ हो जाय तो भी जातिके लिए अति वश-वृद्धि और स्त्रीके लिए अति प्रसवका खतरा तो बना ही रहेगा। कारण यह कि पुरुष अतिशय सयम करते हुए भी साल-भरमे एक बच्चेका बाप तो बन ही जायगा। अत. आप या तो ब्रह्मचर्यका समर्थन करे या जनन-निरोधका। क्योकि यदा-कदाके समागमका अर्थ भी प्रतिवर्ष एक सन्तानकी प्राप्ति हो सकती है और जैसा कि कभी-कभी अग्रेज पादरियोके यहा होता है, यह पतिके लिए तो भगवान्का प्रसाद होगा; पर बेचारी पत्नीके लिए मौतके मुहमे पैठना हो सकता है।

"आप जिसे सयम कहते है वह भी प्रकृतिके काममे उतना ही हस्तक्षेप है जितना गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधन; बल्कि उससे बडा हस्तक्षेप है। गर्भ-निरोधके साधनोकी बदौलत मनुष्य विषय-भोगमे अति कर सकता है और यह वह करेगा नि शक चित्तसे। और अगर वह अपने-आपको बच्चोकी पैदाइशका कारण नही बनने देता तो उस पापका फल वह खुद ही भुगतेगा, और किसीको वह न भुगतना होगा। याद रखिये, खानोके मजदूरो और मालिकोमे आज जो सघर्ष हो रहा है उसमे अन्तमे मालिक ही जीतेगे,

क्योंकि मजदूरोकी सख्या बहुत बडी है। बहुत अधिक बच्चे पैदा करनेवाले बच्चोका ही अहित नही करते, मानव-जातिका भी करते है।"

यह पत्र मेरे लिए मनोवृत्तिया और उनके प्रभावका अध्ययन है। एक आदमीका मन रस्सीको साप मान लेता है। वह भयसे सुन्न हो जाता और बदहवास होकर भागता है, या फिर मन कल्पित सापको मारनेके लिए लाठी उठाता है। दूसरा बहनको पत्नी मान लेता है और उसकी काम-वासना जाग जाती है। पर ज्योही उसे अपना भ्रम मालूम हो जाता है, त्यो ही वासना शान्त हो जाती है।

यही बात लेखकके दिये हुए उदाहरणके भी विषयमे है। बेशक, काम-वासनाकी तृप्ति हेय सुख है—इस भ्रमसे किया जानेवाला इन्द्रिय-दमन मिजाजमे चिडचिडापन पैदा होने और प्रेमके शिथिल होनेका कारण हो सकता है। पर अगर इन्द्रिय-सयम प्रेमको विशुद्ध बनाने, प्रेम-बन्धनको अधिक दृढ करने और वीर्यको अधिक अच्छे प्रयोजनके लिए बचा रखनेके उद्देश्यसे किया जाय तो वह प्रेमकी गाठको ढीली करनेके बदले उसे और दृढ करेगा। जिस प्रेमका आधार विषय-वासनाकी तृप्ति हो वह कितना ही उत्कट हो, फिर भी होगा स्वार्थका सौदा ही और हलके-से-हलके झटकेको भी बर्दाश्त न कर सकेगा। और समागम जब पशुओके लिए सस्कार या धार्मिक विधान नही है तब मानव जगत्मे ही उसे यह पद क्यो दिया जाय? हम उसे वही क्यो न माने जो वह वास्तवमे है—वश-रक्षाके उद्देश्यसे किया जानेवाला प्रजोत्पादन, जो हमसे बरबस कराया जाता है? मनुष्यको ईश्वरने सकल्प या इच्छाकी थोडी-सी स्वतत्रता दे रखी है, इसलिए केवल वही पशु-पक्षियोके जीवनकी अपेक्षा जिस अधिक ऊचे प्रयोजनके लिए उसका जन्म हुआ है, उसकी सिद्धिके लिए अपनी भोगेच्छाको रोकने, दबानेमे अपने मानव-अधिकारको काममे ला सकता है। सभोग प्रेमको न बढाता है और न उसे बनाये रखने या उसके पोषण-वर्द्धनके लिए किसी तरह आवश्यक है। इसके अगणित अनुभव होते रहनेपर भी जो उसे प्रेम-बन्धनको अधिक दृढ करनेके लिए आवश्यक और इष्ट मानते है वह महज इसलिए कि ऐसा सोचने-माननेकी हमे आदत लग गई है। ऐसे कितने ही

उदाहरण बताये जा सकते है जिनमे सयमसे प्रेमका बन्धन और दृढ हुआ है। हा, इतना जरूर है कि सयम अपनी इच्छासे किया जाय, किसी बाहरी दबाव-से नही, और पति-पत्नी दोनोको नीतिके अधिक ऊचे स्तरपर ले जानेके लिए किया जाय।

मानव-समाज सदा बढती रहनेवाली वस्तु है, आध्यात्मिक दृष्टिसे उसका सतत विकास हो रहा है। यह बात सच है तो पशु-वासनाका दिन-दिन अधिक निग्रह ही उसका आधार होना चाहिए। इस दृष्टिसे विवाहको एक धार्मिक सस्कार मानना होगा, जो पति-पत्नी दोनोको अनु-शासनके बन्धनमे बाँधता है, और उनपर यह फर्ज कर देता है कि वे तीसरेके साथ शरीर-सग न करे। परस्पर शरीर-सगकी इजाजत भी, केवल सतानकी कामनासे हो तथा पति-पत्नी दोनो उसे चाहते हो और उसके लिए तैयार हो, तभी देता है। पत्र-लेखकने जो दो स्थितिया बताई है उन दोनोमे सन्तान-की कामनाके विना सभोगका सवाल नही उठता।

अगर हम यह मान ले, जैसा कि पत्र लिखनेवाले भाईने किया है कि सन्तति-प्राप्तिके उद्देश्यके बिना भी सभोग आवश्यक कार्य है तो बहस-दलीलकी गुजाइश ही नही रहती। पर यह दावा टिक नही सकता, क्योकि दुनियाके हर हिस्सेमे कुछ सर्वश्रेष्ठ पुरुषोके पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालनकी पक्की नजीरे पेश की जा सकती है। ब्रह्मचर्यका पालन करना अधिकाश मनुष्योके लिए कठिन है तो यह बात उसके शक्य या इष्ट न माननेकी दलील नही हो सकती। सौ साल पहले अधिकाश जनोके लिए जो बात शक्य न थी आज उसकी शक्यता सिद्ध हो रही है और सीमा-रहित प्रगतिके लिए जो कालका बिना ओर-छोरवाला मैदान हमारे सामने खुला है, उसमे १०० सालकी भुगत ही क्या है? वैज्ञानिकोका कहना अगर सही है तो हमे आदमीका चोला मिलना अभी कलकी ही बात तो है? उसकी शक्तिकी सीमाए कौन जानता है, कौन बाध सकता है? सोच तो यह है कि उसमे भला-बुरा करनेकी असीम शक्ति है इसके नित नये प्रमाण हमे मिलते जा रहे है।

सयमका शक्य और इष्ट होना मान लिया जाय तो उसके पालनके उपाय हमे ढूढने और निकालने ही होगे। और जैसा कि मै किसी पिछले

लेखमे कह चुका हू अगर हमे सयम और नीति-बधनके अदर रहना है तो हमे अपना जीवन-क्रम बदलना ही होगा। लड्डू हमारे पेटमे पहुच जाय और हाथपर भी बना रहे, यह असम्भव प्रयत्न हमें न करना चाहिए। हम जननेद्रियका नियमन करना चाहते है तो हमे और सभी इन्द्रियोपर अकुश रखना होगा। आख, कान, नाक, जीभ, हाथ और पावकी लगाम ढीली कर दी जाय तो जननेन्द्रियको काबूमे रखना असभव होगा। चिडचिडापन, हिस्टीरिया या मूर्छा-रोग और पागलपनको भी ब्रह्मचर्य-पालनके प्रयत्नका परिणाम बताना गलत है। पता लगाया जाय तो ये रोग अधिकाशमे इद्रियोके असयमके ही फल होते है। किसी भी पाप—प्रकृतिके नियमके किसी भी उल्लघन—का दण्ड हमे न मिले यह हो नही सकता।

मुझे शब्दोके लिए झगडा नही करना है। इद्रिय-सयम भी अगर गर्भ-निरोधके साधनोके समान ही प्रकृतिके काममे हस्तक्षेप है तो हुआ करे। मै तब भी कहूगा कि एक हस्तक्षेप जायज और इष्ट है, क्योकि वह व्यक्ति और समाज दोनोका हित करता है और दूसरा हस्तक्षेप दोनोके पतनका कारण होता है इसलिए नाजायज़ है। सयम सन्तति-नियमनका एक-मात्र उपाय है, गर्भाधान-निरोधक साधनोकी सहायतासे बच्चोका पैदा होना रोकना जातिका आत्मघात है।

खान-मालिक अगर अन्यायके रास्तेपर चलते हुए भी विजयी होगे तो इसलिए नही कि मजदूरोके घर जरूरतसे ज्यादा बच्चे पैदा हो रहे है, बल्कि इसलिए कि मजदूरोने सयमका पाठ पूरे तौरपर नही पढा है। बच्चे न हो तो खान-मजदूरोके जीवनमे कोई बात ही न रहेगी जो उन्हे अपनी दशा सुधारनेकी प्रेरणा करे, और न मजदूरी बढानेकी मागके लिए कोई उचित कारण रहेगा। क्या उन्हे शराब पीना, तबाकू पीना, जुआ खेलना चाहिए? क्या यह कहना इसका कोई जवाब होगा कि खानोके मालिक ये सभी बाते करते है और फिर भी उनपर हावी रहते है? मजदूर अगर पूजीपतियोंसे अच्छे होनेका दावा नही कर सकते तो उन्हे दुनियाकी हमदर्दी मागनेका क्या हक है? इसीलिए कि पूजीपतियोकी सख्या बढे और पूजीवादकी जड और मजबूत हो? हमें यह आशा दिलाकर लोकतन्त्रकी पूजा करनेको

कहा जाता है कि दुनियामें उनका राज होनेपर हमें अच्छे दिन देखनेको मिलेंगे। अतः जिन बुराइयोंको हम पूंजीपति और पूंजीवादकी देन बताते हैं उन्हें बड़े पैमानेपर करनेका दोषी हमें नहीं बनना चाहिए।

मैं जानता हूं और यह मेरे लिए दुःखकी बात भी है कि इंद्रिय-निग्रह आसान काम नहीं है। पर इस साधनाकी धीमी प्रगतिसे हमें घबराना न चाहिए। 'उतावला सो बावला'। अधीरतासे मजदूरी-पेशा वर्गमें बहुत अधिक बच्चे पैदा होनेकी बुराई नहीं दूर होने की। इस वर्गमें काम करनेवाले जन-सेवकोंके सामने एक विशाल कार्य करनेको पड़ा है। उन्हें चाहिए कि मानव-जातिके सबसे बड़े शिक्षकोंने अपने अनुभवकी अमूल्य निधिसे हमें जो संयमका पाठ पढ़ाया है, उसे अपने जीवन-क्रमसे बाहर न कर दें। जीवनकी जिन मूलभूत सचाइयोंकी विरासत उन्होंने हमें सौंपी है उनकी परीक्षा जिस प्रयोगशालामें हुई है वह आजकी नये-से-नये साधनों, उपकरणोंसे सज्जित प्रयोगशालासे अधिक अच्छी थी। संयमको उन सभीने हमारे लिए जरूरी बताया है।

: १३ :

धर्म-संकट

"मै विवाहित हू। ३० सालका हो चुका हू। पत्नीकी उम्र भी लगभग यही होगी। हमे पाच बच्चे हुए थे जिनमेसे दो सौभाग्यवश परलोक सिधार चुके है। बाकी बच्चोके बारेमे मेरी क्या जिम्मेदारी है इसे मै समझता हू। पर उस फर्जको पूरा करना मुझे नामुमकिन नही तो अति कठिन अवश्य दिखाई देता है। आपने सयमकी सलाह दी है। पिछले तीन सालसे मै उसका पालन कर रहा हू, पर अपनी सहधर्मिणीकी इच्छाके विरुद्ध ऐसा कर रहा हू। साधारण मनुष्य जिसे जीवनका सुख कहते है वह उसे भोगनेका आग्रह करती है। आप अपने ऊचे आसनसे उसे पाप कह सकते है, पर मेरी जीवन-सगिनी उसे इस दृष्टिसे नही देखती। अधिक बच्चे पैदा करनेसे भी वह नही डरती। अपने दायित्वके जिस ज्ञानका मुझे गर्व है वह उसको नही है। मेरे मा-बाप अधिकतर पत्नीका ही पक्ष करते है, और रोज़ ही घरमे झगडा होता रहता है। काम-वासनाकी तृप्ति न होनेसे पत्नीका मिज़ाज इतना चिडचिडा और बिगडैल हो गया है कि जरा-जरासी बातपर भडक उठती है। अब मेरे सामने यह सवाल है कि इस मुश्किलको कैसे हल करू। जितने बच्चे अभी है वही मेरे लिए अधिक है। मै इतना गरीब हू कि उनका ही पालन-पोषण ठीक तौरसे नही कर सकता। पत्नीको समझाना नामुमकिन दिखाई देता है। जो तृप्ति वह चाहती है वह न मिली तो मुमकिन है वह बुरा रास्ता पकड ले, पागल हो जाय या आत्मघात कर ले। सच कहता हू, कभी-कभी जीमे आता है कि देशका कानून इजाज़त देता तो सभी अनचाहे बच्चोको गोली मार देता, जैसा आप लावारिस कुत्तोके साथ करेगे। इधर तीन महीनेसे किसी दिन मुझे दूसरे जून रोटी न मिली, तीसरे पहरका नाश्ता भी नसीब नही हुआ। काम-धधेकी जिम्मेदारिया ऐसी है कि लगातार

कई दिन उपवास भी नही चल सकता। पत्नीको मेरे कष्टसे हमदर्दी नही, क्योकि वह मुझे ढोगी समझती है। जनन-निरोध-विषयक साहित्यसे मेरा परिचय है। वह लुभानेवाली भाषामे लिखा गया है। ब्रह्मचर्य विषयपर लिखित आपकी पुस्तक भी पढी है। मेरे लिए 'एक ओर कुआ है तो दूसरी ओर खाई'।"

यह एक युवकके लिखे हुए हृदय-विदारक पत्रका अविकल भावार्थ है। लेखकने अपना पूरा नाम-पता दिया है। मै उसे कई बरससे जानता हू। वह अपना नाम देते हुए डरते थे इसलिए इनके पहले दो बार मुझे गुमनाम पत्र लिखा। उन्हे आशा थी कि मै 'यग इडिया'मे उनकी चर्चा करूगा। इस तरहके गुमनाम पत्र मेरे पास इतने आते है कि उनकी चर्चा करनेमे मुझे सकोच होता है। मुझे तो इस पत्रपर कुछ लिखनेमे भी झिझक हो रही है, गोकि मै जानता हू कि उसकी बाते सोलह आने सही है, और वह ऐसे आदमीका लिखा हुआ है जो सयमके रास्तेपर चलनेकी सच्चे दिलसे कोशिश कर रहा है। विषय बहुत ही नाजुक है, पर मेरा दावा है कि मुझे ऐसे मामलोका काफी अनुभव है और मैने यह भी देखा है कि ऐसी कठिनाइयोमे पडे हुए लोगोको मेरे बताये हुए उपायसे राहत मिली है, इसलिए मै इस स्पष्ट कर्त्तव्यके पालनसे मुह नही मोड सकता।

जहातक अंग्रेजी पढे हुए भारतीयोका सवाल है भारतकी स्थिति हमारे लिए दुहरी कठिनाई पैदा करती है। सामाजिक योग्यताकी दृष्टिसे पति और पत्नीमे इतना अन्तर होता है जिसे मिटाना एक तरहसे असभव ही है। कुछ युवक सभवत: यह सोचते है कि पत्नीको उसके मनपर छोड़ देनेसे ही हमारा मसला हल हो गया, हालाकि वे जानते है कि उनकी बिरादरीमे तलाक नही दिया जाता, इसलिए उनकी पत्नीके लिए दूसरा व्याह कर लेना सभव नही। दूसरे लोग—और यही वर्ग सबसे बडा है—अपनी पत्नियोको अपने मानस-जीवनका साथी न बनाकर केवल विषय-सुख भोगनेका साधन मानता है। बहुत ही थोडे लोग ऐसे है—अवश्य ही उनकी संख्या दिन-दिन बढ रही है—जिनकी अन्तरात्मा जाग चुकी है और जो इसी धर्म-सकटमे पडे है जो पत्र लिखनेवाले भाईके सामने उपस्थित है।

मेरी रायमे स्त्री-पुरुषका समागम तभी जायज माना जायगा जब दोनो
उसे चाहते हो । मै नही मानता कि पति या पत्नी किसीको भी यह हक
हासिल है कि दूसरेको अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिए मजबूर करे । और जिस
दम्पतीका प्रश्न तत्काल हमारे विचारका विषय है उसके बारेमे मेरी स्थिति
ठीक हो तो पत्नीके आग्रहके सामने झुकना किसी तरह पतिका नैतिक कर्त्तव्य
नही है । पर यह इनकार पतिके सिरपर ज्यादा बडी और ऊची जिम्मेदारी
लाद देता है । वह अपने आपको बडा साधक-सयमी समझकर पत्नीको
हेय दृष्टिसे न देखे, बल्कि नम्रताके साथ यह स्वीकार करे कि जो बात उसके
लिए अनावश्यक है वह पत्नीके लिए प्रकृतिका आदेश है, इसलिए वह उसके
साथ बहुत ही स्नेह और मृदुताका व्यवहार करे और मनमे यह विश्वास
रखे कि उसकी अपनी पवित्रता पत्नीकी काम-वासनाको उच्चतम प्रकारकी
शक्तिमे बदल देगी। अत उसे अपनी पत्नीका सच्चा मित्र, पथ-प्रदर्शक और
उसका दुख-दर्द दूर करनेवाला होना होगा। अपनी पत्नीमे उसे पूरा विश्वास
रखना होगा और अटूट धैर्यके साथ उसे यह समझाना होगा कि नीतिका
कौन-सा तत्त्व उसके आचरणका आधार है, पति-पत्नीके परस्पर सम्बन्धका
सच्चा रूप और विवाहका सच्चा अर्थ क्या है । यह करते हुए वह देखेगा
कि बहुत-सी बाते जो पहले उसके लिए स्पष्ट नही थी अब स्पष्ट हो गई
और उसका सयम सच्चा होगा तो पत्नीके हृदयको वह अपने और भी निकट
खीच लेगा ।

प्रस्तुत मामलेमे मुझे कहना ही होगा कि केवल अधिक बच्चे पैदा
होनेका डर पत्नीकी सभोगेच्छा तृप्त करनेसे इनकार करनेका यथेष्ट कारण
नही हो सकता । केवल बच्चोका भार उठानेके डरसे पत्नीके सभोग
प्रस्तावको अस्वीकार करना मुझे तो कायरपन-सा लगता है । कुटुम्बकी
बेहिसाब बाढ रोकना पति-पत्नीके अलग-अलग और सयुक्त रूपसे अपनी
काम-वासनापर अकुश रखनेके लिए अच्छा कारण है, पर वह अपने जीवन
सगीके साथ सोनेका अधिकार छीननेके लिए यथेष्ट कारण नही हो सकता ।

और फिर बच्चोसे इतनी घबराहट किसलिए ? ईमानदार, मेहनती
और समझदार आदमी निश्चय ही इतना पैसा कमा सकता है कि तीन

चार बच्चोके भरण-पोषणका बोझ उठा ले। मै यह मानता हू कि प्रस्तुत पत्र-लेखक-जैसे पुरुषके लिए जो अपना सारा समय देशकी सेवामे लगा सकनेकी सच्चे दिलसे कोशिश कर रहा है, यह कठिन होगा कि एक बडे और बढते हुए कुटुम्बका भरण-पोषण करे और साथ-साथ स्वदेशकी सेवा भी करता चले जिसकी करोडो सन्तानोको आधे पेट खाकर रहना पडता है। इन पृष्ठोमे अक्सर मैंने यह बात लिखी है कि हिन्दुस्तान जबतक गुलाम है तबतक बच्चे पैदा करना उचित नही। पर यह युवको और युवतियोके अविवाहित रहनेके लिए तो बहुत अच्छा कारण है, किन्तु विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए एक-दूसरेके साथ दाम्पत्य असहयोग करनेका निश्चयात्मक हेतु नही हो सकता। हा, जब शुद्ध धर्मभावसे, अन्तरसे ब्रह्मचर्य-पालनकी ऐसी पुकार उठे कि उसे अनसुनी करना नामुमकिन हो तब यह असहयोग जायज होता है, बल्कि फर्ज हो जाता है। और यह पुकार जब सच्ची होगी तो दूसरे साथी पर भी इसका बहुत अच्छा असर होगा। वह समयसे उसपर वैसा असर न डाल सके तो भी ब्रह्मचर्य-पालन कर्तव्य होगा, भले ही इसमे अपने साथीका दिमाग खराब हो जाने या उसके मर जानेका भी खतरा हो। सत्यकी साधना और स्वदेशकी सेवाके लिए जैसे बलिदान अपेक्षित है, ब्रह्मचर्यकी साधना भी वैसे ही वीरोचित बलिदान मागती है। इतना कह चुकनेके बाद यह कहनेकी आवश्यकता शायद ही बाकी रहती हो कि कृत्रिम उपायोसे सतानोत्पादन रोकना नीति-नाशक आचरण है और जीवनका जो आदर्श मेरे तर्कका आधार है उसमे इसके लिए स्थान नही है।

: १४ :

मेरा व्रत

भलीभाति चर्चा कर लेने और गहरे सोच-विचारके अनन्तर १९०६ ई० मे मैने ब्रह्मचर्य-व्रत लिया। व्रत लेनेके समयतक मैने धर्मपत्नीकी राय इस विषयमे नही ली थी। व्रत लेते समय ली। उसकी ओरसे कुछ भी विरोध नही हुआ।

यह व्रत लेते हुए मुझे बहुत कठिन जान पडा। मेरी शक्ति अल्प थी। वासनाओको दबाना कैसे हो सकेगा? अपनी पत्नीके साथ भी सविकार सम्बन्ध न रखना कुछ विचित्र-सी बात लग रही थी। फिर भी यही मेरा कर्त्तव्य है, यह मै साफ देख सकता था। मेरी नीयत शुद्ध थी। अत भगवान् बल देगा यो सोचकर मै कूद पडा।

आज बीस बरस बाद उस व्रतको याद करके मुझे आनन्दजनक आश्चर्य होता है। सयमके पालनेकी भावना तो १९०१ से प्रबल हो रही थी और मै उसका पालन कर भी रहा था। पर जो स्वतन्त्रता और आनन्द मुझे अब मिलने लगा वह १९०६ के पहले कभी मिला हो यह मुझे याद नही आता। कारण यह कि उस समय मै वासनासे बधा था। किसी भी क्षण उसके वश हो जा सकता था। अब वासना मुझपर सवारी गाठनेमे असमर्थ हो गई।

इसके सिवा अब ब्रह्मचर्यकी महिमा मै अधिकाधिक समझने लगा। व्रत मैने फिनिक्समे लिया। घायलोकी सेवाके कामसे छुट्टी पाकर मै फिनिक्स गया था। वहासे मुझे तुरत जोहान्सबर्ग जाना था। मै वहा गया और एक महीनेके अदर ही सत्याग्रह-सग्रामकी नीव पडी। मानो यह ब्रह्मचर्य-व्रत मुझे उसके लिए तैयार करनेको ही आया हो! सत्याग्रहकी योजना मैने पहलेसे नही बना रखी थी। उसकी उत्पत्ति तो अनायास और बिना हमारे चाहे हुई। पर मैने देखा कि उसके पहलेके मेरे सभी काम—फिनिक्स जाना,

जोसान्सबर्गका भारी घर-खर्च घटा डालना, और अन्तमे ब्रह्मचर्य-व्रत लेना मानो उसकी तैयारी थे।

ब्रह्मचर्यके सम्पूर्ण पालनका अर्थ है ब्रह्मका साक्षात्कार। यह ज्ञान मुझे शास्त्रसे नही मिला था। यह अर्थ मेरे लिए धीरे-धीरे अनुभव-सिद्ध होता गया। इससे सम्बद्ध शास्त्र-वचन तो मैने पीछे पढे। ब्रह्मचर्यमे शरीरकी रक्षा, बुद्धिकी रक्षा, आत्माकी रक्षा है, व्रत लेनेके वाद मै इस बातका दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा। कारण यह कि अब ब्रह्मचर्यको घोर तपश्चर्या-रूप न रहने देकर रसमय बनाना था, इसीके सहारे चलना था। अत अब उसमे मुझे नित-नई खूबियोके दर्शन होने लगे।

पर मे जो यो ब्रह्मचर्यसे रस लूट रहा था उससे कोई यह न समझ ले कि उसकी कठिनताका अनुभव मुझे नही हो रहा था। आज मेरे ५६ साल पूरे हो चुके है, फिर भी उसकी कठिनताका अनुभव तो होता ही है। यह असि-धारा-व्रत है, इस बातको दिन-दिन अधिकाधिक समझ रहा हू। निरन्तर जाग्रत रहनेकी आवश्यकता देख रहा हू।

ब्रह्मचर्यका पालन करना हो तो स्वादेन्द्रिय 'जीभ'को वशमे करना ही होगा। मैने खुद अनुभव करके देखा कि जीभको जीत ले तो ब्रह्मचर्यका पालन वहुत आसान हो जाता है। इसलिए मेरे इसके बादके भोजन-विषयक प्रयोग केवल अन्नाहारकी दृष्टिसे नही बल्कि ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे भी होने लगे। मैने प्रयोग करके देख लिया कि हमारी खूराक थोडी सादी और विना मिर्च-मसालेकी होनी चाहिए ओर प्राकृतिक अवस्थामे खाई जानी चाहिए। अपने विषयमे तो मैने छ वर्षतक प्रयोग करके देख लिया है कि ब्रह्मचारीका आहार वनपक्व फल है। जिन दिनो मै सूखे या रसदार वनपक्व फल खाकर रहता था उन दिनो मै अपने आपमे जो निर्विकारता पाता था उस खुराकको वदल देनेके वाद उसका अनुभव न हो सका। फलाहारके समय ब्रह्मचर्य सहज था। दुग्धाहारसे वह कष्ट-साध्य हो गया है। फलाहारसे दुग्धाहारपर मुझे क्यो जाना पडा—इसकी चर्चा उचित स्थानपर की जायगी। यहा तो इतना कहना काफी है कि दूधका आहार ब्रह्मचर्यके लिए विघ्नकारक है, इस विषयमे मुझे तनिक भी शका नही। इस कथनसे कोई यह अर्थ न निकाल

ले कि हर ब्रह्मचारीके लिए दूधका त्याग आवश्यक है। आहारका असर ब्रह्मचर्यपर कितना होता है इस विषयमे बहुत प्रयोग करनेकी आवश्यकता है। मुझे अबतक कोई ऐसा फलाहार नही मिला जो स्नायुओको पुष्ट करने और आसानीसे पचनेमे दूधकी बराबरी कर सके, कोई वैद्य, हकीम या डाक्टर भी नही बता सका। इसलिए दूध विकार पैदा करनेवाली चीज है यह जानते हुए भी फिलहाल मैं किसीको उसके त्यागकी सलाह नही दे सकता।

बाह्य उपचारोमे जैसे आहारके प्रकार और परिमाणकी मर्यादा आवश्यक है वैसे ही उपवासको भी समझना चाहिए। इद्रिया इतनी बलवान है कि उनपर चारो ओरसे, ऊपर और नीचेसे, दशो दिशाओसे घेरा डाला जाय, तभी काबूमे रहती है। यह तो सभी जानते है कि आहारके बिना वे अपना काम नही कर सकती। इसलिए इन्द्रिय-दमनके उद्देश्यसे इच्छापूर्वक किये हुए उपवाससे इन्द्रियोको काबूमे लानेमे बहुत मदद मिलती है, इस विषयमे मेरे मनमे तनिक भी शका नही। कितने ही लोग उपवास करते हुए भी विफल होते है। इसका कारण यह है कि वे यह मान लेते है कि उपवाससे ही सबकुछ हो जायगा और शरीरसे स्थूल उपवास-मात्र करते है, पर मनसे छप्पन भोग भोगते रहते है। उपवासके दरमियान, उपवास समाप्त होनेपर क्या-क्या खायेगे, इस कल्पनाका स्वाद हम लिया करते है और फिर शिकायत करते है कि उससे न जीभ वशमे आई न जननेन्द्रिय! उपवासका सच्चा उपयोग वही है जहा मन भी देह-दमनमे साथ देता है, अर्थात् मनमे विषय-भोगके प्रति विरक्ति हो जानी चाहिए। विषय-वासनाकी जडे तो मनमे ही होती है। उपवासादि साधनोसे बहुत सहायता मिलती है, फिर भी वह मात्रामे थोडी ही होती है। कह सकते है कि उपवास करते हुए भी मनुष्य विषयोमे आसक्त रह सकता है। पर उपवासके बिना विषयासक्तिका जड-मूलसे जाना सभव नही। अत उपवास ब्रह्मचर्य-पालनका अनिवार्य अग है।

ब्रह्मचर्य-पालनका प्रयत्न करनेवाले बहुतेरे निष्फल होते है। इसका कारण यह है कि खाने-पीने, देखने-सुननेमे वे अब्रह्मचारीके जैसे रहते हुए भी ब्रह्मचर्य निभाना चाहते है। यह प्रयत्न वैसा ही है जैसी गरमीके मौसिममे

शीतकालका अनुभव करनेकी कोशिश। सयमी और स्वच्छद, त्यागी और भोगीके जीवनमे भेद होना ही चाहिए। साम्य केवल ऊपर-ऊपरसे दिखाई देता है। दोनोका भेद स्पष्ट दिखाई देना चाहिए। आंखका उपयोग दोनो करते हैं। पर ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है। भोगी नाटक-सिनेमामे लीन रहता है। कानसे दोनो काम लेते है। पर एक भगवद्-भजन सुनता है, दूसरेको विलासी गाने सुननेमे आनन्द आता है। जागरण दोनो करते है, पर एक जाग्रत अवस्थामे हृदय-मदिरमे विराजनेवाले रामको भजता है, दूसरेको नाच-रगकी धुनमे सोनेका खयाल ही नही रहता। खाते दोनो है, पर एक शरीर-रूपी तीर्थक्षेत्रके रक्षार्थ देहको भोजन-रूपी भाडा देता है, दूसरा जवानके मजेकी खातिर देहमे वहुत-सी चीजोको ठूँसकर उसे दुर्गंधमय वना देता है। यो दोनोके आचार-विचारमे भेद रहा ही करता है और यह अतर दिन-दिन वढता जाता है, घटता नही।

ब्रह्मचर्यके मानी है, मन-वचन-कायासे सम्पूर्ण इन्द्रियोका सयम। इस सयमके लिए ऊपर वताये हुए त्यागोकी आवश्यकता है, यह मुझे दिन-दिन दिखाई देता गया। आज भी दिखाई दे रहा है। त्यागके क्षेत्रकी सीमा ही नही है, जैसे ब्रह्मचर्यकी महिमा भी नही है। ऐसा ब्रह्मचर्य अल्प प्रयत्नसे सधनेवाली वस्तु नही। करोडोके लिए तो वह सदा केवल आदर्श रूप रहेगा, इसलिए कि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी तो अपनी कमियोको हर वक्त देखता रहेगा। अपने-मनके कोने-अतरेमे छिपे हुए विकारोको पहचान लेगा और उन्हे निकाल वाहर करनेकी कोशिश सदा करता रहेगा। जवतक विचारोपर यह काबू न मिल जाय कि अपनी इच्छाके विना एक भी विचार मनमें न आये तवतक ब्रह्मचर्य सपूर्ण नही। विचार-मात्र विकार है। उन्हे वशमे करनेके मानी है मनको वशमे करना। और मनको वशमे करना तो वायुको वशमे करनेसे भी कठिन है। फिर भी अगर आत्माका अस्तित्व सच्चा है तो यह वस्तु साध्य होनी ही चाहिए। हमारे रास्तेमे कठिनाइयां आती है, इससे कोई यह न मान ले कि यह कार्य असाध्य है। यह परम अर्थ है और परम अर्थके लिए परम प्रयत्नकी आवश्यकता हो तो इसमे अचरज क्या।

पर स्वदेश आनेपर मैने देखा कि ऐसा ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न-साध्य

नही है। कह सकता हू कि तब तो मै मूर्छामे था। मैने मान लिया था कि फलाहारसे विकार जड-मूलसे नष्ट हो जाता है, और अभिमानके साथ समझता था कि अब मुझे कुछ करना नही रहा।

पर इस विचारके प्रकरण तक पहुचनेमे अभी देर है। तबतक इतना कह देना जरूरी है कि जो लोग ईश्वर-साक्षात्कारके उद्देश्यसे, जिस ब्रह्मचर्यकी व्याख्या मैने ऊपर की है वैसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते हो, वे अपने प्रयत्नके साथ-साथ ईश्वरपर श्रद्धा रखनेवाले होगे तो उनके निराश होनेका कोई कारण नही।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्ज्य रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते ॥[1]

अत रामनाम और रामकृपा यही आत्मार्थीका अतिम साधन है, इस सत्यका साक्षात्कार मैने हिन्दुस्तान आनेपर ही किया।[2]

---

[1]निराहार रहनेवालेके विषय तो निवृत्त हो जाते है, पर रस-राग बना रहता है। ईश्वरके दर्शनमे वह भी चला जाता है।

(गीता अ० २ श्लो० ५९।)

[2]आत्म-कथा खण्ड ३ का आठवा अध्याय।

: १५ :

विकारका बिच्छू

कलकत्तेके एक विद्यार्थी पूछते है --

'कोई अपनी पत्नीके साथ शुद्ध व्यवहार रखे, अर्थात् ब्रह्मचर्यका पालन करे तो क्या उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय होगा ? अपढ पत्नीको ब्रह्मचर्य-की महिमा वह किस तरह समझा सकता है ? उसे सयम-धर्म कैसे सिखा सकता है ? ऐसा करनेमे उसे कहातक सफलता मिलेगी ? समाजके आजके दूपित वातावरणमे पत्नीको भ्रष्ट होनेसे कहातक बचाया जा सकता है ?'

मेरा और मेरे साथियोका अनुभव तो यह है कि पति-पत्नी अगर स्वेच्छा-से ब्रह्मचर्यका पालन करे तो आत्यन्तिक सुख पा सकते है। अपना सुख उन्हे नित्य वढता हुआ जान पडेगा। अशिक्षित पत्नीको ब्रह्मचर्यकी महिमा समझानेमे कोई अडचन नही होती, या यो कहिये कि ब्रह्मचर्य शिक्षित-अशिक्षितका भेद नही जानता। ब्रह्मचर्य तो केवल हृदयके बलकी बात है। मै ऐसी अपढ स्त्रियोको जानता हू जो विवाहिता होते हुए भी ब्रह्मचर्यका पालन कर रही है। समाजके चित्तको चचल कर देनेवाले वातावरणमे भी जो पति ब्रह्मचर्यका पालन करता है वह अपनी पत्नीके शीलकी रक्षा करनेमे अधिक समर्थ हो जाता है। ब्रह्मचर्यका अभाव पत्नीको भ्रष्ट होनेसे वचा तो नही सकता, पर उसके भ्रष्टाचारका पर्दा वन जाता है। इसकी मिसाले दी जा सकती है।

ब्रह्मचर्यकी शक्ति अमित है। बहुतेरे उदाहरणोमे मुझे यह अनुभव हुआ है कि ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला स्वय विकारसे मुक्त नही होता, इस कारण उसके प्रयत्नका प्रभाव पत्नीके ऊपर नही पड सकता। विकार वडा चालाक होता है। अत. अपने भाई-बदोको पहचाननेमे उसे देर नही

लगती। जो पत्नी अभी विकार-रहित नही हुई है, जो विकारोके त्यागके लिए अभी तैयार भी नही है, वह पतिके हृदयमे छिपे हुए विकारको तुरत पहचान लेती है और उसके ढीले और निष्फल प्रयत्नपर मन-ही-मन हँसती हुई स्वय निर्भय रहती है। जो ब्रह्मचर्य अविचल है और जिसमे शुद्ध प्रेम भरा हुआ है, वह ब्रह्मचर्य अपने सामनेवालेके विकारको जलाकर भस्म कर देता है, इसमे किसीको शका न करनी चाहिए।

बेलूर-मठमे बहुत-सी सुन्दर मूर्तियोका सग्रह है। उसमे एक ऐसी मूर्ति मैने देखी है जिसके शिल्पीने कामको बिच्छू बनाया है। उसने एक कामिनीको डक मारा है जो उसके कष्टसे विह्वल होकर बिलकुल नगी हो गई है। बिच्छू अपनी इस विजय पर इतराता हुआ कामिनीके पैरके पास खडा है और उसकी ओर देखकर हँस रहा है। जिस पतिने इस बिच्छूपर विजय पा ली उसकी आखोमे, उसके स्पर्शमे, उसकी वाणीमे ब्रह्मचर्यकी शीतलता होती है। वह अपने निकट रहनेवालेके विकारोको क्षण-मात्रमे ठडा करके शात कर देता है।

: १६ :

संयमको किसकी आवश्यकता है ?

एक ब्याहके उम्मीदवार भाई लिखते है—

"आप लिखते है—'सयमके पालनमे एकको दूसरेकी रजामन्दीकी जरूरत नही है।' क्या यह औचित्यकी सीमाके आगे जाना नही है ? पत्नीको जबतक अपने ज्ञानमे साझी न बना सके तबतक तो राह देखनी चाहिए। हिन्दुस्तानमे अज्ञानका राज सर्वत्र फैला हुआ है और उसमे भी स्त्रियोके लिए तो पढाईका दरवाजा ही बन्द है। ऐसे देशमे यह माननेसे कैसे काम चलेगा कि सब लोग सच्चे रास्तेको पहचानकर तुरन्त उसपर चलने लगेगे ? 'पतिका कर्तव्य' बार-बार पढनेपर अभी खुलासेकी जरूरत बनी है। मै अभी अविवाहित हू, पर थोडे ही दिनोमे ब्याह होनेवाला है। अत आपसे खुलासा कर लेना जरूरी मालूम हो रहा है। इसी गरजसे यह पत्र लिख रहा हू।"

जिस सयमको दूसरेकी सहमतिकी आवश्यकता होती है वह सयम टिक नही सकता, यह मेरा अनुभव है। सयमको तो केवल अन्तर्नादकी आवश्यकता होती है। सयमका बल मनके बलपर अवलबित होता है और संयम ज्ञानमय और प्रेममय हो तो उसकी छाप आस-पासके वातावरणपर पड़े बिना न रहेगी। अन्तमे विरोध करनेवाला भी अनुकूल बन जाता है। पति-पत्नीके बारेमे भी यही बात है। पत्नी तैयार न हो तबतक पतिको और पति तैयार न हो तबतक पत्नीको रुकना पडे तब तो बहुत करके दोनो भोग-बधनसे कभी छूट ही न सकेगे। बहुतेरी मिसालोमे हम देख चुके है कि जहा एकका सयम दूसरेपर अवलबित होता है वहा वह अन्तमे टूट ही जाता है। और यह ढिलाई या कमजोरी ही इसका कारण है। हम कुछ अधिक गहराईमे उतरकर देखे तो मालूम होगा कि जहा एकको दूसरेकी

रजामदीकी जरूरत होती है वहा सयमकी सच्ची तैयारी या उसकी सच्ची लगन होती ही नही। इसीसे तो निष्कुलानन्दने लिखा है कि 'त्याग न टके रे वैराग विना'। वैराग्यको अगर रागके साथ ही जरूरत हो सकती हो तो सयम-पालनकी इच्छा करनेवालेको इच्छा न करनेवालेकी सहमतिकी आवश्यकता हो सकती है।

ऊपर दिये हुए पत्रके लेखकका रास्ता तो सीधा है। वह अभी अविवाहित है और उन्होने ब्रह्मचर्य-पालनका सचमुच निश्चय कर लिया हो तो फिर वह व्याहके बधनमे बधे ही क्यो ? मा-बाप और दूसरे सगे-सम्बन्धी तो अपने अनुभवके बलपर यह कहेगे ही कि एक युवकका ब्रह्मचर्य-धारणकी बात करना समुद्र-मथन करके तैरना है। यो कहकर, धमकी देकर, बिगडकर और दण्ड देकर भी उसे ब्रह्मचर्यके शुभ सकल्पसे डिगानेकी कोशिश करेगे। पर जिसके लिए ब्रह्मचर्यका भग ही सबसे बडा दण्ड हो, साम्राज्य पानेका प्रलोभन भी जिसे ब्रह्मचर्यका भग करनेके लिए तैयार नही कर सकता, वह किसी भी धमकीसे डरकर क्यो व्याह करेगा ? जिसका आग्रह इतना तीव्र नही, जिसने ब्रह्मचर्य आदि सयमका इतना बडा मूल्य न आका हो उसके लिए मैने वह वाक्य नही लिखा है जिसे लेखकने उद्धृत किया है।

: १७ :

मां-बापकी ज़िम्मेदारी

एक शिक्षक लिखते है :

"आपने युवकोके दोपके वारेमे लिखा है। उसके लिए मुझे तो मा-वाप ही जिस्मेदार मालूम होते है। बडी उम्रवाले वच्चोके मा-वा जो वच्चे पैदा करते चले जाते है, इसका नतीजा क्या होगा ? ऐसे व्य व्यभिचार कहना क्या अनुचित होगा ? एक बच्चा माकी मृत्युके पिताके पास सोया करता था। कुछ दिन वाद पिताने दूसरा विवाह कर ओर नई पत्नीके साथ भीतरसे किवाड बन्द कर सोने लगे। ब कुतूहल हुआ कि पिताजी अब मेरे साथ क्यो नही सोते ? मेरी जव जीती थी तव तो हम तीनो जने एक साथ सोते थे, अ माके आनेपर पिताजी मुझे साथ क्यो नही सुलाते ? वच्चेका क वढता गया। उसने किवाडकी दरारमेसे झाककर देखनेकी सं दरारमेसे जो दृश्य उसने देखा उसका उसके मनपर क्या हुआ होगा ?

"पर समाजमे यह बात सदा होती रहती है। यह मिसाल मेरे दिम उपज नही है। यह तो एक १३-१४ वरसके वालकसे सुना हुआ वृ जो जन-समाज वचपनमे ही यो आत्मनाशके रास्तेपर लगेगा वह स्व कैसे ले सकेगा ? या मिल जानेपर उसकी रक्षा कर सकेगा ? हर ए वाप, शिक्षक, गृहपति, वालचर-मण्डलका नायक ऐसा न होने सावधानता रखे तो कैसा हो ? छोटी उम्रमे ब्रह्मचर्यका अर्थ स अक्सर कठिन होता है। वहुतसे लडकोको वटोरकर ब्रह्मचर्यपर व्य देनेसे यह वात कही अच्छी जान पडती है कि हर एक वालकका वि भाजन और सच्चा मित्र वनकर इसका यत्न किया जाय कि वचपन

उसका मन सदाचारकी ओर झुक जाय। बच्चेके मनमें कुविचारका प्रवेश ही न हो इसका कोई उपाय तो होगा ही ?

"अब बड़ी उम्रवालोंकी बात सुनिए। जो समाज, जो जाति, गैर-बिरादरीकी स्त्रीके हाथका भोजन करनेवालेको जातिसे बाहर कर देती है, वही जाति पर-स्त्रीका संग करनेवालेका बहिष्कार क्यों नहीं करती ? जो जाति राजनीतिक सभा-सम्मेलनमें अछूतोंके साथ बैठ आनेवालेको दण्ड देती है वही व्यभिचारियोंको दण्ड क्यों नहीं देती ? इसका कारण मुझे तो यही जान पड़ता है कि आत्मशुद्धि करने बैठें तो हर एक जातिकी देह बहुत दुबली हो जाय। दुबली-पतली देहमें भी बलवान आत्मा रह सकती है, इसका ज्ञान उसे कहां है ? बहुत-सी जातियोंके मुखिया, चौधरीतक शराब या व्यभिचारके व्यसनमें फँसे होते हैं। इसलिए अपने ही पांवोंपर कुल्हाड़ी मारनेके डरसे वे उस ओरसे तो आंखें बन्द किये रहते हैं और दूसरोंको बिरादरीसे बाहर करनेके लिए हर वक्त कमर कसे तैयार रहते हैं। यह समाज कब सुधरेगा ? जिस देशको राजनीतिक उन्नति करनी हो वह पहले अपनी सामाजिक उन्नति न कर ले तो राजनीतिक उन्नति आकाश-कुसुम-जैसी ही है।"

इस लेखमें बहुत तथ्य है यह तो सभी स्वीकार करेंगे। बच्चोंके बड़े हो जानेपर उसी पत्नीसे या वह मर जाय तो नया घर बसाकर बच्चे पैदा करनेसे बच्चोंकी हानि होती है। इसे मनवानेके लिए दलील देनेकी जरूरत नहीं। पर इतना संयम न हो सके तो भी पिताको इतना तो करना ही चाहिए कि बच्चोंको अलग कमरेमें रखे या खुद ऐसी जगह सोये, जहांसे बच्चे न कुछ सुन सकें, न देख सकें। इसमें कुछ सभ्यता तो रहेगी ही। बचपन सर्वथा निर्दोष, निर्विकार होना चाहिए, पर मां-बाप विलासिताके वश होकर उसे दोषमय बना देते हैं। वानप्रस्थाश्रमकी प्रथा बालकोंको नीतिमान, स्वतंत्र और स्वावलम्बी बनानेमें बहुत उपयोगी हो सकती है।

शिक्षकोंके लिए लेखकने जो सूचना दी है वह उचित तो है ही, पर जहां ५०-६० लड़कोंका एक दरजा हो वहां शिष्योंके साथ शिक्षकका सम्बन्ध अक्षर-ज्ञान देने-भरका ही होता है। वहां शिक्षक चाहे तो भी शिक्षार्थियोंके

साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध कैसे जोड सकता है ? फिर जहा पाच-सात शिक्षक पाच-सात विषय सिखाते हो वहा बालकोके सदाचारकी जिम्मेदारी कौन उठायेगा, और फिर ऐसे शिक्षक ही कितने मिलेगे जो बालकोको सदाचार-पथपर लाने या उनका विश्वास-भाजन बननेकी योग्यता रखते हो ? इसमे तो शिक्षाका सारा प्रश्न उपस्थित हो जाता है। पर उसकी चर्चाका यह स्थान नही।

समाज भेडोके झुडकी भाति बिना सोचे, बिना इधर-उधर देखे आगे बढता जा रहा है, और कुछ लोग इसीको प्रगति मान रहे है। वे इस बातको जानते है कि स्थिति ऐसी भयानक है तो भी हमारा वैयक्तिक रास्ता आसान है। उन्हे अपने क्षेत्रमे जितना बन पडे उतना नीतिका प्रचार करना चाहिए। सबसे पहले तो वे अपनेमे ही प्रचार करे। दूसरोके दोष देखते समय हम खुद बहुत भलेसे लगने लगते है। पर अपने दोषोको देखे तो हम खुद हमीको कुटिल और कामी दिखाई देगे। दुनियाका काजी बननेकी बनिस्बत खुद अपना काजी बनना अधिक लाभदायक होता है और वैसा करते हुए हमे दूसरोके लिए भी रास्ता मिल जाता है। 'आप भले तो जग भला' का एक अर्थ यह भी है। तुलसीदास ने सन्तपुरुषको जो पारस-मणि कहा है वह गलत नही है। सन्त-पद प्राप्त करनेका प्रयत्न करना हम सबका फर्ज है। सन्त होना किसी अलौकिक पुरुषके लिए आकाशसे उतरा हुआ प्रसाद नही है, बल्कि हर आदमीका कर्त्तव्य है। यही जीवनका रहस्य है।

: १८ :

कामको कैसे जीतें ?

काम-विकारको जीतनेका प्रयत्न करनेवाले एक भाई लिखते है

"आपकी 'आत्म-कथा'का पहला खण्ड पढनेसे वहुत-सी कामकी वाते मालूम हुई हे। आपने कोई वात छिपा नही रखी है, इसलिए मैं भी आजसे कोई वात छिपा रखना नही चाहता।' 'नीति-नाशकी ओर' पुस्तक भी पढी। इससे यह मालूम हुआ कि विषय-वासनाको जीतना खासतौरसे क्यो जरूरी है। पर यह वासना इतनी वुरी है कि योगवासिष्ठ और स्वामी रामतीर्थ तथा स्वामी विवेकानन्दकी पुस्तके पढते समय तो सवकुछ निस्सार जान पडता है, पर उन्हे वन्द किया नही कि विषय-वासनाए आ घेरती है। आख, नाक, कान, जीभको तो किसी तरह जीत भी सकते है, क्योकि आख वद करते ही उसके विषयोका अभाव हो जाता है। दूसरी इन्द्रियोके साथ भी ऐसा कर सकते है। पर जननेन्द्रियका तो रास्ता ही जुदा दिखाई देता है। जव वह सताती हे तव जान पडता है—मैंने जो-कुछ पडा उसका जसे कुछ भी मूल्य न हो। मेरा आहार सात्विक है। एक ही समय खाता हू, रातमे केवल दूधपर रहता हू। फिर भी काम-वासना किसी तरह नही जाती। इसका कारण समझमे नही आता। गीतामे भगवान् श्रीकृष्णने एक जगह कहा है—"आहार न करनेवाला देहधारी आदमी इन्द्रियोके विपयोसे तो मुक्त हो जाता है, पर विपयोंकी आसक्तिसे मुक्त नही होता। उससे निवृत्ति तो परमात्माके दर्शन होनेसे ही होती है।"[1]

"इस प्रकार जव ईश्वरके दर्शन हो तभी विषयोकी आसक्तिसे छुटकारा

---

[1] विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन।
रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते।

मिल सकता है, और चूकि ईश्वरके दर्शन हो नही सकते, इसलिए विषयोसे निवृत्ति भी नही हो सकती। यह है मेरी परेशानी। ऐसी दशामे क्या किया जाय ? क्या आप मुझ-जैसे विषय-जालमे फँस जानेवालेको कोई रास्ता नही बतायेगे ?

"ऐसे साधु-सन्त अवश्य होगे जो ऐसे जनोको रास्ता बता सके। पर वे मुझे मिलेगे कैसे ? क्योकि आजकल तो यह जानना ही कठिन है कि सच्चा साधु कौन है।

"इस जिज्ञासाका उत्तर कृपाकर 'नवजीवन' द्वारा दे। जिससे कोई सही रास्ता पकडा और प्रभुको पानेमे विघ्न-रूप विषयोको जीता जा सके।

"अरसेसे यह बात आपसे पूछनेको जी चाहता था, पर हिम्मत न होती थी। मगर जब आपकी 'आत्म-कथा' पढी तो जान पडा कि ऐसी बाते आपसे पूछना अनुचित न होगा। यह भी समझमे आया कि प्रभुकी प्राप्तिकी राहमे जो कठिनाइया दिखाई दे, उनका उपाय पूछनेमे शर्म न करनी चाहिए।"

जो दशा इस भाईकी है वही बहुतोकी है। कामको जीतना कठिन अवश्य है पर अशक्य नही है। परन्तु जो कामको जीत लेता है वह ससारको जीत लेता है और ससार-सागरको तर जाता है। यह भगवान्‌का वचन है। इससे हम जान सकते है कि कामको जीतना दुनियामे सबसे कठिन बात है। ऐसी वस्तुको पानेके लिए धीरजकी बहुत आवश्यकता है। इसे काम-जयका प्रयत्न करनेवाले सभी लोग स्वीकार नही करते। अक्षर-ज्ञानके अभ्यासमे अध्यवसाय, धीरज और ध्यानकी कितनी जरूरत है, इसे हम जानते है। उसपरसे त्रिराशिका हिसाब लगाये तो हमे मालूम हो जाय कि अक्षर-ज्ञानकी प्राप्तिमे धीरज आदिकी जितनी आवश्यकता होती है कामको जीतनेमे उससे अगणित गुना अधिक धीरज अपेक्षित है।

यह तो हुई धीरजकी बात। पर कामके जीतनेके उपायके विषयमे भी तो हम इतने ही उदासीन रहते है। मामूली बीमारीको हटानेके लिए तो हम सारी दुनिया छान डालते है, डाक्टरोके यहा दौड़नेमे एडिया घिस डालते है, जन्तर-मन्तर भी नही छोडते। पर कामरूपी महाव्याधिसे छूटनेके लिए हम सब उपाय नही करते। थोडा उपचार किया कि थककर बैठ

जाते है और उलटा ईश्वर या इलाज वतानेवालेके साथ यह शर्त करने लगते है कि इतनी चीजें तो हमसे नही छूटने की, फिर भी आप हमारा काम-विकार मिटा दे। इसका फल यह हुआ है कि काम-विकारसे छूटनेके लिए हमारे भीतर सच्ची व्याकुलता नही है। उसके लिए सर्वस्व-त्याग करनेको हम तैयार नही। यह शिथिलता विजय-प्राप्तिके मार्गमे सवसे वडी बाधा है। यह सही है कि निराहार रहनेवालेके विकार दब जाते है, पर आत्म-दर्शनके विना आसक्ति नही जाती। पर उक्त श्लोकका अर्थ यह नही है कि कामको जीतनेमे निराहार-व्रतसे कोई सहायता नही मिलती। उसका मतलव तो यह है कि निराहार रहते हुए कभी थको ही नही और ऐसी दृढता तथा लगनसे ही आत्म-दर्शन हो सकता है। वह हो जानेपर आसक्ति भी चली जायगी। ऐसा अनशन किसीके कहनेसे नही किया जा सकता। दिखावेके लिए भी नही किया जा सकता। इसमे तो मन, वचन और काया तीनोका सहयोग होना चाहिए। यह होनेपर प्रभुका प्रसाद अवश्य प्राप्त होगा और वह मिल गया तो अन्तमे विकार-शान्ति होकर ही रहेगी।

पर निराहारसे पहले और वहुत-से उपाय करने होते है। उनसे विकार शात न हुए तो ढीले जरूर पड जायगे। भोग-विलासके प्रसग-मात्रका त्याग कर देना चाहिए। उनकी ओर मनमे अरुचि उत्पन्न करनी चाहिए। इसलिए कि अरुचि या विरागके विना त्याग केवल ऊपरी त्याग होगा और इस कारण टिक न सकेगा। भोग-विलास किसे कहे यह वतानेकी जरूरत न होनी चाहिए। जिस-जिस चीजसे विकार उत्पन्न हो, वे सभी त्याज्य है।

आहारका प्रश्न इस विषयमे वहुत विचारणीय है। मेरी अपनी राय यह है कि जो अपने विकारोको शान्त करना चाहता हो उसे घी-दूधका इस्तेमाल थोडा ही करना चाहिए। वनपक्व अन्न खाकर निर्वाह किया जा सके तो आग पर पकाई हुई चीजे न खाये या थोडी खाये। फल और वहुत-सी साग-सब्जियाँ कच्ची, विना पकाये खाई जा सकती है और खानी चाहिए। हा, कच्ची सब्जीकी मात्रा थोडी रहे। दो-तीन तोला कच्ची सब्जी आवश्यक पोषणके लिए काफी है। मिठाइया और मिर्च-मसाले विलकुल ही छोड

देने चाहिए । आहारके विषयमे इतनी सूचनाए दे रहा हू, पर जानता हूं कि केवल आहारसे ही ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन नही हो सकता । परन्तु विकारोत्तेजक वस्तुए खाने-पीनेवालेको तो ब्रह्मचर्य निभा सकनेकी आशा ही न रखनी चाहिए ।

: १६ :

काम-रोगका निवारण

विलियम आर० थर्स्टन नामके लेखकने विवाह-विषयपर जो पुस्तक लिखी है वह इस योग्य है कि हर स्त्री-पुरुष उसको ध्यानपूर्वक पढे, समझे। (उसका साराश परिशिष्टमे दिया गया है।) हमारे देशमे १५ बरसके लडकेसे लगाकर ५० तकके पुरुष और इसी या इससे भी कम उम्रकी लडकीसे लगाकर ५० तककी स्त्रीकी भी यह धारणा रहती है कि सभोग अनिवार्य है। उसके बिना रहा ही नही जा सकता। इससे दोनो विह्वल रहते है, एक-दूसरेका विश्वास नही करते। स्त्रीको देखकर पुरुषका दिल हाथमे नही रहता और पुरुषको देखकर स्त्रीकी भी वही दशा होती है। इससे कितने ही ऐसे रिवाज पैदा हो गये है जिनकी कृपासे स्त्री-पुरुष सभी निर्बल, निरुत्साही और रोगी हो रहे है। हमारा जीवन इतना हीन हो गया है जितना हीन मनुष्यका जीवन न होना चाहिए।

इस वातावरणमे रचे हुए शास्त्रोमे भी ऐसे आदेश और विश्वास देखनेमे आते है जिनके फलस्वरूप स्त्री-पुरुषको परस्पर ऐसा व्यवहार रखना पडता है, जैसे वे एक-दूसरेके दुश्मन हो। कारण यह कि एकको देखकर दूसरेका मन बिगड जाता है या बिगड जानेका डर रहता है।

इस धारणा और उसके आधारपर बने रिवाजोकी बदौलत जीवन या तो विषय-भोगमे या उसके सपने देखनेमे चला जाता है और दुनिया हमारे लिए जहरसे कडवी हो जाती है।

होना तो यह चाहिए था कि मनुष्यमे भला-बुरा सोचने-समझनेकी शक्ति होती है इसलिए पशुकी तुलनामे उसमे अधिक त्याग-शक्ति और सयम हो। पर हम रोज ही देखते है कि नर-मादाके सयोगकी मर्यादाका पशु जितना पालन करता है मनुष्य उतना नही करता। सामान्य रीतिसे

स्त्री-पुरुषके बीच मा-बेटे, भाई-बहन या बाप-बेटीका संबध होना चाहिए। यह तो खुली बात है कि पति-पत्नीका सबध अपवाद-रूपमे ही हो सकता है और अगर भाईसे बहनके या बहनसे भाईके डरनेका कारण हो सकता हो तो पुरुष दूसरी स्त्रीसे या स्त्री दूसरे पुरुषसे डर सकती है। पर इसके विपरीत स्थिति यह है कि भाई-बहनको भी आपसमे सकोच रखना पड़ता है और रखना उन्हे सिखाया जाता है।

इस दयनीय दशा अर्थात् विषय-वासनाकी सड़ाधसे भरी हुई हवासे निकल जाना हमारे लिए निहायत जरूरी है। हमारे अन्दर इस वहमने जड जमा ली है कि इस वासनासे निकलना नामुमकिन बात है। उसकी जड उखाड देना ही पुरुषार्थ है और वह हमसे हो सकनेवाली बात है, यह दृढ विश्वास हमारे हृदयमे उत्पन्न होना चाहिए।

यह पुरुषार्थ करनेमे श्री थर्स्टनकी नन्ही-सी पुस्तकसे बडी मदद मिलेगी। लेखककी यह खोज मुझे तो ठीक जान पडती है कि अस्वाभाविक काम-वासनाकी जड विवाह-विषयक वर्त्तमान धारणा और उसके आधारपर रचित प्रथाए है जो पूर्व-पच्छिम सर्वत्र व्याप रही है। स्त्री-पुरुषका रातमे एकान्तमे एक कमरेमे और एक बिस्तरपर सोना दोनोके लिए घातक और काम-वासनाको व्यापक तथा सार्वजनिक वस्तु बना देनेका जबर्दस्त साधन है। एक तरफ तो सारी विवाहित दुनिया इसी नियमका अनुसरण करे और दूसरी ओर धर्मोपदेशक और सुधारक सयमका उपदेश करे। यह आसमानमे थिगली लगाना नही तो क्या है? ऐसे विषय-वासनासे भरे हुए वातावरणमे सयमके उपाय व्यर्थ जाय तो इसमे कोई अचरजकी बात नही। शास्त्र पुकार-पुकारकर कहते है कि समागम केवल सन्तानकी कामनासे ही होना चाहिए। इस आज्ञाका उल्लघन हम प्रतिक्षण किया करते है। फिर भी जब रोग हमे सताते है तो उनके कारण दूसरी जगह ढूढे जाते है। इसीको कहते है—'गोदमे लडका और शहरमे ढिंढोरा'। इस सूर्यके प्रकाश-जैसी स्पष्ट बातको हमने समझ लिया हो तो—

जब सभव हो तब दोनो अलग-अलग कमरेमे सोयें, गरीबीके कारण यह मुमकिन न हो तो पति-पत्नी दूर-दूर और अलग-अलग खाटोपर सोये और बीचमे किसी मित्र या कुटुम्बीको सुला ले ।

२ समझदार मा-बाप अपनी लडकी ऐसे घरमे देनेसे साफ इनकार कर दे जहा उसे अलग कमरा और अलग खाट न मिल सके । ब्याह एक प्रकारकी मित्रता है । स्त्री-पुरुष एक-दूसरेके दु ख-सुखके साथी बनते है, पर ब्याह हो जानेके मानी यह नही है कि पति-पत्नी पहली ही रातको विषय-भोगमे आकठ निमग्न होकर अपनी जिन्दगीकी बरबादीकी नीव खोद ले । यह शिक्षा लडके-लडकियोको मिलनी चाहिए ।

थर्स्टनकी खोज स्वीकार करनेका अर्थ यह है कि उसके मनमे जो नई, आश्चर्यजनक, कल्याणकर और शातिदायिनी कल्पना निहित है उसपर मनन किया जाय और ब्याहके विषयमे प्रचलित विचारोमे जो परिवर्तन आवश्यक है उसे हम समझ ले । तभी इस खोजका लाभ हमे मिल सकेगा । जो लोग इस खोजको हजम कर सके हो वे बाल-बच्चेवाले हो तो अपने बच्चोकी तालीम और घरका वातावरण बदल दे ।

यह समझनेके लिए हमे थर्स्टनकी शहादतकी जरूरत न होनी चाहिए कि हम विषय-सुख भोगते हुए भी बच्चोके बोझसे बचे रहे, इसके लिए जिन बनावटी उपायोका जोर-शोरसे प्रचार किया जा रहा है वे अति हानिकर है । ये उपाय हिंदुस्तान-जैसे देशमे चल कैसे सकते है, यही समझना कठिन है । पढे-लिखे लोग हिन्दुस्तानके दुर्बलता भरे वातावरणमे इन उपायोसे काम लेनेकी सलाह कैसे देते है, मेरी समझमे यह बात आती ही नही ।

परिशिष्ट

: १ :

सब रोगोंका मूल

विलियम राबर्टथर्स्टन नामके अमरीकन लेखकने 'फिलासफी ऑव मैरेज' (विवाहका तत्त्व-ज्ञान) नामकी छोटी-सी पुस्तक लिखी है जिसे न्यूयार्कके स्टिफानी प्रेस और मद्रासकी गणेशन् कम्पनीने भी प्रकाशित किया है। प्रकाशकके कथनानुसार श्री थर्स्टन, सयुक्त राष्ट्रकी सेनामे मेजर थे और लगभग दस बरसतक काम करके १९१९ मे अवकाश ग्रहण किया तबसे न्यूयार्क नगरमे रहते है। १८ बरसतक उन्होने जर्मनी-फ्रास, फिलिपाइन द्वीपपुज, चीन और अमरीकामे विवाहित स्त्री-पुरुषोकी स्थिति और विवाहके नियमो, प्रथाओके प्रभावका गहरा अध्ययन किया। अपने निजके अवलोकनके अतिरिक्त वह प्रसूति-शास्त्र और स्त्री-रोगोके विशेषज्ञ सैकडो डाक्टरोसे मिले और पत्र-व्यवहार करते रहे। इसके सिवा उन्होने फौजमे भरती होनेके उम्मीदवारोकी शारीरिक योग्यताकी जाचके परचो और सामाजिक आरोग्य-रक्षक मण्डलोके इकट्ठे आकडोका भी समुचित उपयोग किया है। लेखकने सैकडो डाक्टरोसे कैसे प्रश्न किये और उनके कैसे जवाब उसे मिले, यह उसने बताया है—

प्रश्न—आजकल विवाहित स्त्री-पुरुषोमे सगर्भावस्थामे भी सभोगका रिवाज है या नही ?

इस प्रश्नका उत्तर लगभग सभी डाक्टरोसे यही मिला कि यह रिवाज है।

प्र०—ऐसे सभोगसे गर्भपात या असामयिक प्रसव और प्रसूताके रक्तमे विष-प्रवेश (ब्लड पॉयजनिग) की सभावना है या नही ?

उ०—अवश्य है।

प्र०—इस सभोगके फलस्वरूप वच्चोका विकलाग होना सभव है या नही ?

उ०—वहुतसे डाक्टर तो गर्भावस्थामे भी कुछ महीनोतक सभोगकी इजाजत देते ही है। वे इसके खिलाफ राय कैसे देते। सैकडे पर २५ने लिखा है कि इससे विकलाग वच्चे पैदा होते है।

प्र०—विकृत अगवाले वच्चे पैदा होनेका कारण गर्भावस्थाका समागम न हो तो दूसरा क्या हो सकता है ?

इसके उत्तरोमे वहुत मत-भेद है। बहुतेरे तो लिखते है कि हम इसका कारण नही वता सकते।

प्र०—आजकलकी पढी-लिखी स्त्रिया क्या गर्भाधान रोकनेके साधनोका व्यवहार सचमुच करती है ?

उ०—हा।

प्र०—इन साधनोसे और कुछ नही तो स्त्रीकी जननेन्द्रियकी अपार हानि होनेकी सभावना तो है ही ?

सैकडे ७५ डाक्टरोकी रायमे यह सभावना है।

इसके अतिरिक्त लेखकने कितने ही चौकानेवाले आकडे दिये है जो जानने लायक है। सन् १६२० ई० मे अमरीकाकी सरकारने सेनामे भरती होनेवालोके शारीरिक दोषोके विषयमे एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमे वताया गया है कि—

२५ लाख १० हजार आदमियोकी फौजमे भरती होनेकी योग्यताकी जाच की गई।

उनमेंसे १२ लाख ८६ हजारमे कोई-न-कोई शारीरिक या मानसिक दोष निकला।

५ लाख ८६ हजार आदमी सेना-सम्बन्धी सभी कामोके लिए अयोग्य पाये गए।

इन उम्मीदवारोकी उम्र १८ से ४५ सालके वीच थी।

इतनी जाच और अनेक देशोकी स्थितिके अवलोकनके फलस्वरूप

लेखकने जो महत्त्वपूर्ण नतीजे निकाले है, वे सिद्धात उसीके शब्दोमे नीचे दिये जा रहे है :—

१. पुरुष स्त्रीको रोटी-कपडे और रहनेको घर देता है इसलिए वह उसकी दासी बनकर रहे और चूकि वह उसकी ब्याहता कहलाती है इसलिए एक ही कमरेमे रहकर या एक ही बिस्तरपर सोकर नित्य उसकी काम-वासनाकी तृप्तिका साधन बनती रहे, प्रकृति हर्गिज ऐसा नही चाहती।

२. विवाह-बधनमे बधनेसे ही पुरुषकी विषय-वासनाकी तृप्ति स्त्रीपर फर्ज हो जाती है, यह माननेका रिवाज दुनियामे सब कही पड गया है। इस प्रथाके फलस्वरूप स्त्रीको रात-दिन अमर्यादित विषय-भोगका साधन बने रहना और विवाहित स्त्रियोमेसे सौ पीछे ९०को अर्थत. वेश्या बन जाना पडता है। यह स्थिति पैदा होनेका कारण यह है कि वेश्यावृत्ति स्वाभाविक और उचित मान ली गई है, क्योकि ब्याहका कानून यही माननेको कहता है। पतिका प्रेम बनाये रखनेके लिए भी यह वृत्ति स्वीकार करना स्त्रीपर फर्ज माना जाता है।

इस अकुशरहित विषय-भोगके अनेक भयावह परिणाम होते है—

१. स्त्रीका नाडी-सस्थान—उसके दिल-दिमाग बहुत ही कमजोर हो जाते है, वह जवानीमे बुढिया बन जाती है, उसका शरीर रोगोका घर और स्वभाव चिडचिडा, अस्थिर, अशान्त हो जाता है और वह बच्चोकी सम्हाल भी ठीकसे नही कर सकती।

२. गरीबोके घर इतने बच्चे पैदा होते है कि उनकी पूरी परवरिश और सम्हाल नामुमकिन होती है। ऐसे बच्चोको रोग लग जाते और बड़े होनेपर वे चोर-उचक्के बनते है।

३. ऊँचे वर्गवालोमे निरकुश विषयभोगकी खातिर गर्भाधान न होने देने और गर्भपातके साधन काममे लाये जाते है। इन साधनोसे काम लेना साधारण-वर्गकी स्त्रियोको सिखा दिया गया तो राष्ट्र रोगी, अनीतिमान और भ्रष्ट हो जायगा और अन्तमे उसका विनाश होगा।

४. अति सभोगसे पुरुषका पुरुषत्व नष्ट होता है, वह इस लायक

भी नही रह जाता कि मेहनत-मजदूरी करके अपना निर्वाह कर सके और अनेक रोगोके फलस्वरूप उसे समयसे पहले ही परलोकका रास्ता लेना पडता है। अमरीकामे आज विधुरोसे विधवाओकी सख्या २० लाख अधिक है। उसमे उनकी सख्या थोडी ही है जो युद्धके कारण विधवा वनी है। विवाहित पुरुपोका वडा भाग ५०की उम्रतक पहुचनेके पहले ही जर्जर हो जाता है।

५ अति सभोगके फलस्वरूप स्त्री-पुरुष दोनोके भीतर एक प्रकारकी हताशता, अपने-आपको व्यर्थ समझनेका भाव उत्पन्न हो जाता है। दुनियामे जो आज इतनी गरीबी दिखाई देती है, बडे शहरोमे जो गरीवोके मुहल्ले, गदी अधेरी गलिया है, उनका कारण पैसा मिलनेवाले कामका अभाव नही है वल्कि वर्तमान विवाह-नियमोके फलरूप निरकुश सभोग है।

६ गर्भावस्थामे जो स्त्रीको पुरुषकी वासना-तृप्तिका साधन वनना पडता है यह मानव-जातिके भविष्यके लिए अति भयावह है।

इस अवस्थाका सभोग मनुष्यको पशुसे भी हीन बना देता है। गाभिन गाय साडको अपने पास कभी आने ही न देगी। फिर भी अगर साड वलात्कार करे तो वह गाय जो वछडा जनेगी उसके तीन या पाच पाव होगे अथवा दो पूछे या दो सिर होगे। समस्त प्राणि-सृष्टिमे अकेला मनुष्य ही यह मानता दिखाई देता है कि इस प्रकारके अत्याचारसे पशुओमे जो परिणाम होते है वे मनुष्योको न भुगतने होगे। इस धारणाके मूलमे एक भ्रम है। वह यह कि पुरुपसे वहुत दिनोतक अपनी विषय-वासना तृप्ति किये विना रहा ही नही जा सकता। इस भ्रमकी जड भी साफ दिखाई देती है। जव वासनाओको जगानेवाला साथी सदा अपनी वगलमे मौजूद हो तव पुरुषसे भोगकी भूख वुझाये विना कैसे रहा जायगा ?

पर डाक्टरोकी रायो और अपने निजके अनुभव-अवलोकनसे भी जान लिया गया है कि गर्भाधानसे पहले अति सभोग अगर अनिष्ट-मूलक है तो गर्भावस्थाका सभोग तो सीधा नरकका द्वार है। इसके परिणाम-स्वरूप वच्चोमे पागलपनतककी खरावी पैदा हो जानेका डर रहता है और खुद स्त्रीको तो अपार कष्ट होता है, क्योकि गर्भ-धारणकी दशामे किसी स्त्रीको सभोगकी इच्छा नही होती।

लेखकने इसके बाद चीन, हिन्दुस्तान और अमरीकामे एक ही कमरेमे अनेक स्त्री-पुरुषोके सोनेसे जो अनीति और निर्वीर्यता फैल रही है उसकी चर्चा की है और इस बुराईका इलाज बताया है।

उसके बताये हुए कुछ उपाय तो ब्याहके कानूनमे सुधार करनेके है, पर उसने ऐसे उपाय भी बताये है जिनका करना मनुष्यके हाथमे है। कानून तो जब सुधरना होगा सुधरेगा। पर कुछ सुधार तो आदमीके अख्तियारकी बात है ही। जैसे—

१. सन्तानकी कामनाके विना स्त्री-पुरुषका सभोग न होना चाहिए, इस प्राकृतिक ज्ञानका खूब प्रचार करना।

२. स्त्रीको सन्तानकी इच्छा न हो तो पुरुषको केवल उसका पति होनेके नाते ही उसका स्पर्श करनेका अधिकार नही मिलता, इस सिद्धान्तका प्रचार करना।

३. विवाह-बधनमे बधी होनेके कारण ही पतिके साथ एक ही कोठरी और एक ही विस्तरपर सोना स्त्रीपर फर्ज नही है, बल्कि सन्तानोत्पादनके हेतुके बिना उसका इस तरह सोना अपराध है—इस ज्ञानका प्रचार करना।

लेखकका कहना है कि इन नियमोका पालन किया जाय तो दुनियाके आधे रोग चले जाय—गरीबी चली जाय, रोगी-विकलाग बच्चोका पैदा होना बद हो जाय, और स्त्री-पुरुषके जन-कल्याणके लिए पुरुषार्थ करनेका मार्ग उन्मुक्त हो जाय।

एक महिलाके प्रश्न

'विवाहका तत्त्व-ज्ञान'के लेखकने अपनी कृति अपने मित्रोके पास प्रेमोपहारके रूपमे भेजा होगा। उनमेसे एक बहनने उसे पत्र लिखा। उसके उत्तरमे लेखकने एक दूसरी पुस्तिका लिख डाली, जिसमे उसके विचार अधिक स्पष्ट कर दिये गये है और अपने मतकी पुष्टि अकाट्य दलीलोसे, अधिक सबल रूपमे की गई है। यह पुस्तक पहलीसे भी अधिक महत्त्ववाली और मननीय है।

उक्त बहनके पत्रका आशय, थोडेमे, इस प्रकार है—

"आपकी पुस्तकके लिए अनेक धन्यवाद । अतिशय विषय-भोग ही हमारे रोगोका मुख्य कारण है, इसे अचूक रूपमे बतानेवाली आपकी पुस्तक पहली ही कही जा सकती है । काम-वासना महापुरुषोमे भी होती है । कुछ महापुरुष उससे मुक्त भी होते है और कितने ही साधारण-जनोमें वह अति प्रवल होती है । पर सभोगकी शारीरिक आवश्यकता कितनी है, मान ली हुई मानस आवश्यकता कितनी है और महज आदतसे पैदा होनेवाली आवश्यकता कितनी है, इसकी छान-बीन कर लेना जरूरी है । मिसालके तौर पर, यह जान लेना जरूरी है कि ह्वेलके शिकारके लिए समुद्रमे सुदूर गये हुए या ऐसे ही किसी अन्य कारणवश लम्बे अरसे तक स्त्रीसे जुदा रहनेवाले पुरुषके स्वास्थ्यपर इस विवशताके ब्रह्मचर्यका क्या असर होता है ।

"दूसरी वात यह है कि अतिशय विषय-भोगसे होनेवाली हानिको तो मै स्वीकार करती हू, पर क्या गर्भाधान रोकनेके कृत्रिम साधन भी अनावश्यक है ? गर्भपात या अवैध सन्तानका जन्म देनेके पापसे क्या यह अच्छा नही है कि वाह्य साधनोसे काम लेकर सन्तानोत्पत्ति होने ही न दी जाय । प्रकृतिके नियमके विरुद्ध चलनेवाला मनुष्य जनन-निरोधके उपायोको काम लेनेके फलस्वरूप दुनियामे अपना नामलेवा छोडे विना मर जाय तो इसमे समाजका क्या विगडता है ?

"तीसरी वात, मान लीजिये, हम सभी सयमी वन गये । तो भी मोटे हिसाव हर एक दम्पतीके तीनसे अधिक वच्चे न हो तभी दुनियाकी आवादी हदके अन्दर रह सकती है । और इसका अर्थ यह होता है कि सारी जिन्दगीमे उन्हे दो-चार वार ही सभोग-सुख भोगनेका अवसर मिल सकता है । इतना सयम क्या साधारण आदमीके वसकी वात है ? क्या स्वस्थ और वल-पौरुष-सम्पन्न पुरुष लम्वे अरसेतक सयम रख सकता है ?

दो कामनाएं

इस पत्रके उत्तरमे लेखकने जो पुस्तिका ('द ग्रट सीक्रेट') लिखी उसका सार नीचे दिया जाता है—

"सावारण पुरुपमे आहारकी इच्छाके अतिरिक्त दो कामनाए और

होती हैं—एक सती-सुन्दरी स्त्रीके साथ सभोगकी, दूसरी पुरुषार्थकी, अर्थात् धर्म, अर्थ और मोक्षकी। पहलीको तृप्त करनेकी इच्छा दूसरेकी प्रेरणा करती है। बहुतोकी पुरुषार्थकी कामना ब्याहके पहले ही, सहज-प्राप्त स्त्रीके साथ, काम-वासनाकी परितृप्ति कर लेनेसे मर जाती है। अधिकाशकी ब्याहके बाद दो-चार बरसो ही मे सभोगके अतिरेकसे मर जाती या मन्द हो जाती है। स्वस्थ और वीर्यवान पुरुषमे सभोगकी इच्छा प्राय: सदा बनी रहती है, पर पुरुषार्थकी कामना बलवती हो जाय तो काफी लबे अरसेतक वह दब भी जाती है। आवश्यकता है किसी महान् लक्ष्यकी। ऐसे लक्ष्यकी जिसकी सिद्धिमे मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगा देनेका सकल्प कर ले।

ऐसे लक्ष्य अनेक है। एक सामान्य लक्ष्य तो उत्तम सन्तान पैदा करना ही है। अपनी सहधर्मिणीकी स्वाभाविक सन्तानेच्छाको तृप्त करके उसे प्रसन्न रखकर स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करना और उसके पालन-पोषण, पढाने-लिखाने, उसे योग्य नागरिक बनानेमे लग जानेसे विषय-वासना अपने आप विदा हो जानी चाहिए। पर इन कर्तव्योका पालन कर सकनेके लिए जरूरी होगा कि उसका शरीर भरा हुआ हो, वह शरीरसे काफी मेहनत-मशक्कत करे। इसके सिवा उसे स्त्रीके साथ एक खाटपर सोना भी बद करना होगा।

दूसरा लक्ष्य है कीर्तिका—लोक-कल्याण करके या कोई बडा पराक्रम करके नाम कमाना। हो सकता है कि नाम कमा लेनेके बाद मनुष्य यह भी चाहे कि उसे विषय-सुख अधिक अच्छी तरह भोगनेका मौका मिले, पर कीर्तिकी लालसा उस वक्त तो मूल वासनाको दबा ही देती है।

स्त्री ही जातिके आदर्शोकी जननी है। ये आदर्श स्त्रीसे ही पुरुषके मानसमे पहुचते है, इनके परिपाककी प्रेरणा भी स्त्रीसे ही मिलती है। अत मै तो कहूगा कि जिस समाजमे स्त्रीका मूल्य अधिक है—जिस समाजमे स्त्री उर्वशीके समान विक्रमके वशमे है, वह समाज अधिक उत्कर्षशाली है। जिस देशमे स्त्रीकी कीमत कम है, अर्थात् जहा स्त्रीकी प्राप्तिमे पुरुषको कुछ मेहनत नही करनी पडती उस देशमे गरीबी और गन्दगीकी बहुतायत

होती है। अत जहा स्त्रीका मूल्य अधिक हो वहाके लोगोको अधिक समृद्ध होना चाहिए।

आप जानना चाहती है कि ह्वेलके शिकारको गये हुए और पत्नीसे लबे अरसे तक जुदा रहनेवाले पुरुषके स्वास्थ्यपर इस विवशताके ब्रह्मचर्यका असर क्या होता है। इन लोगोको सख्त मेहनत करनी पडती है, इसलिए काम-वासनाकी अतृप्तिका उनके स्वास्थ्यपर तो कोई बुरा असर नही पडता। हाँ, जब उनके पास काफी काम नही रहता तब इस वासनाको अप्राकृतिक रूपमे तृप्त करनेके दुर्व्यसन उन्हे लग जाते है। शिकारसे लौटकर ये लोग अपनी सारी कमाई शराब और ऐयाशीमे उडा देते है, क्योकि यही लक्ष्य लेकर ये शिकारके लिये जाते है।

कृत्रिम साधन

कृत्रिम साधनोसे सन्तानोत्पादन रोकनेका प्रश्न जो आपने उठाया है वह गभीर है। उसका उत्तर जरा विस्तारसे देना होगा। अपनी खोजो और अवलोकनके बलपर इतना तो मै जोर देकर कह सकता हू कि इन साधनोसे हानि नही होती इसका सबूत नही ही मिलता। हा, सफल और ज्ञानवान स्त्री रोग-चिकित्सको और मानस-रोग-चिकित्सकोके पास इसे साबित करनेके लिए जबर्दस्त मसाला मौजद है कि इन साधनोसे काम लेना शरीर-स्वास्थ्य और नीति दोनोके लिए अति हानिकर है। और यह खुली बात है कि इस विषयमे एक-दो बाते ध्यान देने योग्य है। सन्तानकी कामना न हो तो पति-पत्नीमेसे किसीको भी सयमके लिए प्रेरित करनेवाली कोई शक्ति नही रहती। पुरुपका जी उस स्त्रीसे भर जाता है, उसकी पुरुपार्थकी कामना मद पड जाती है। स्त्री उसे दूसरी स्त्रियोके पास जानेसे रोकनेके लिए उसे अपना ही गुलाम बना रखना चाहती है। अरसे तक गर्भाधान न होने देनेसे उसकी अपनी भोगेच्छा भी भडकती जाती है। नतीजा यह होता है कि पुरुष कुछ ही बरसोमे निर्वीर्य हो जाता है और किसी भी रोगका सामना कर सकनेका बल उसमे नही रहता। इस निर्वीर्यतासे बचनेके लिए अकसर कुत्सित साधनोसे काम लिया जाता है, जिसमे स्त्री-पुरुषके मनमे

एक-दूसरेके लिए तिरस्कार उत्पन्न होता है और अन्तमें सम्बन्ध-विच्छेद या तलाककी नौबत आती है।

कैंसरके विशेषज्ञोंका कहना है कि इन कृत्रिम साधनोंका व्यवहार कैंसर रोगका भी कारण होता है। नारी-देहकी एक कोमलतम झिल्लीपर इन साधनोंका बहुत बुरा असर होता है—और उससे कितने ही रोग पैदा होते हैं। कितने ही प्रतिष्ठित डाक्टरोंका यह भी कहना है कि इन साधनोंको काममें लानेके कारण बहुत-सी स्त्रियाँ बाँझ बन जाती हैं। उनका जीवन नीरस हो जाता है और संसार उनके लिए विषरूप हो जाता है।

जज लिंडसेका भ्रम

हमारे जज लिंडसेने इन कृत्रिम साधनोंकी खोजको व्यापक रूप दे दिया है, पर उनसे होनेवाले सर्वनाशका उन्हें पता नहीं है। 'वैज्ञानिक गर्भ-निरोध' को वह नई खोज मानते हैं—पर वह बहुत पुरानी चीज है। फ्रांसमें कम-से-कम एक सौ सालसे इस साधनका चलन है। उसकी दशा आज क्या है यह देखिये। उसकी राजधानी पेरिसमें ७० हजार तो ऐसी वेश्याएं हैं जिनके नाम वेश्याओंके रजिस्टरमें दर्ज हैं। 'अन-रजिस्टर्ड' खानगी वेश्याओंकी संख्या उनसे कई गुनी है। उसके और नगरोंमें भी यह बुराई बुरी तरह फैल रही है। जननेन्द्रियके रोगोंका भी कोई हद-हिसाब नहीं है और लाखों स्त्रियां—विवाहित-अविवाहित दोनों—उनसे पीड़ित हो डाक्टरोंके दरकी खाक छान रही हैं। कितने ही बरसोंसे जन्म-संख्याकी औसत मृत्यु-संख्याके

और विवाहिता दोनो तरहकी अभागी स्त्रियोके यौवन और चरित्रकी हाट लग रही है।

जज लिंडसे अपने देश (अमरीका) के युवा अपराधियोका विचार करनेवाली अदालतमे अरसेतक न्यायाधीश रह चुके है। इन युवक अपराधियोके बयानोमे उन्हे जो तथ्य मिले उनका उन्होने उलटा उपयोग किया, और अपनी पुस्तकमे उलटे साधनोकी सलाह देकर सारी जनताको उलटे रास्तेपर लगा दिया।

पर अपनी ही पुस्तकमे उन्होने जो तथ्य-प्रमाण दिये है उनका रहस्य उनकी समझमे क्यो न आया? वर्जीनिया एलिस नामका युवतीका पत्र उन्होने अपनी पुस्तकमे उद्धृत किया है। वह बेचारी लिखती है कि मै चार होशियार डाक्टरोसे मिल चुकी और मेरे पति दूसरे दो डाक्टरोकी सलाह ले चुके। इन छहो डाक्टरोका कहना है कि गर्भ-निरोधके साधनोको काममे लानेसे थोडे दिनोतक स्त्री-पुरुषके स्वास्थ्यपर कोई असर पडता भले ही न दिखाई दे, पर कुछ ही दिनमे दोनो हाथ मलने लगते है, और इस अनिष्टसे ऐसी व्याधिकी उत्पत्ति होती है, जिसका आपरेशन 'एपिडिसाइटिस' (आतका फोडा) और 'गालस्टोन' (पित्ताशयकी पथरी) के नामसे किया जाता है। पर असलमे तो कुछ और ही होता है। क्या ये डाक्टर झूठे है? ऐसी राय देनेमे तो उनका कोई लाभ नही। उलटा, कृत्रिम साधन काममे लाये जाय तो रोग बढे और उनका रोजगार ज्यादा चले। पर ये डाक्टर अनुभवी, प्रतिष्ठित और लोकहितको समझनेवाले है।

जज लिंडसे और उनके पीछे चलनेवाले अब पूरी लगनके साथ इन साधनोके प्रचारमे लग रहे है। यह प्रचार बढता गया तो देशमे हजारो नीम हकीम इन साधनोके लिए फिरते दिखाई देगे और इससे राष्ट्रकी अपार हानि होगी।

लिंडसे महोदयने जनन-निरोधके साधनोका प्रचार करनेके लिए एक मण्डल स्थापित कर लिया है और कहते है कि यह सस्था स्वर्गको धरती-पर उतार लायेगी। पर मै तो मानता हू कि वह दुनियाको नरक बना देगी। जन-साधारणमे इन साधनोका प्रचार हुआ तो लोग बेमौत मरेगे। घुल-

घुलकर, सिसक-सिसककर मरेगे और शायद यह सत्यानाश देखकर ही आनेवाली पीढिया इन साधनोसे प्लेकी तरह भागना सीखेगी।

जज लिडसेकी नीयत बुरी नही है। वह वेचारे तो यही चाहते है कि हर एक कुटुम्वमे उतने ही वच्चे पैदा हो जितने स्त्री चाहती हो और जितनेके पालन-पोषणका वोझ पुरुष उठा सके। उनका दूसरा उद्देश्य है कि स्त्रीमे सभोग-सुखकी स्वाभाविक इच्छा होती है, उसकी तृप्तिका समुचित साधन उसे मिल जाय। इस भावनाका भूत उनकी अदालतमे भग्न-वाहिनी निर्लज्ज छोकरियोने उनके मानसमे घुसाया है। मै तो यह मानता हू कि उनकी अदालतमे आनेवाली लडकियो-जैसी शहादते देनेवाली लडकियाँ अपवादरूप ही होगी। मै दूसरी वहुत-सी लडकियोसे मिला हू। वे काम-वासनाकी वातोको जज लिडसेके इजलासपर शहादत देनेवाली लडकियोकी तरह कवित्व और तत्त्व-ज्ञानका पालिश चढाकर तो कह ही नही सकती। वहुसख्यक समझदार लडकिया और माताए जानती है कि यह वासना शुद्ध भ्रम है। पर जज लिडसेके सामने कितने ही वर्षोसे ऐसी कच्ची अक्लकी लडकिया लगातार आ रही है। इससे उनके जैसा विवाहित अधेड उम्रका विद्वान् पुरुष भी रास्तेसे वहक गया और अनचाहे वच्चोकी पैदाइश रोकनेकी पुस्तक लिख डाली, नही तो ऐसा कौन होगा जो इतना ज्ञान रखते हुए कालिजमे पढनेवाले लडके-लडकियोको निर्भय होकर सहवास-सुख भोगनेकी सलाह देगा और इसके लिए कानून वनवानेका आदोलन करेगा? उनका ज्ञान काम कर रहा होता तो उन्हे यह मालूम होता कि कितने सुन्दर, तेजस्वी युवक इस पापसे आत्मघातकी शिक्षा प्राप्त करते है, इसलिए कि उनका पुरुषार्थ विदा हो जाता है और उसके साथ-साथ जीनेकी इच्छा भी चली जाती है। उन्हे इसका पता न हो तो मानस रोगोका इलाज करनेवाले उन्हे वता सकते है कि कच्ची उम्रमे जननेन्द्रियको वहक जाने देना अच्छे भले युवकको शरावी, चोर, उचक्का और लफगा वना देता है। उनकी अक्ल मारी न गई होती तो क्या वह लिखते कि पुरुषकी विषय-वासना तृप्त करना और उसकी वेश्या वनना स्त्रीका धर्म है?

इन अक्लके दुश्मनोको कौन समझाये कि प्रजामे अगर जन्म-मरण बहुत बढ जाय तो उसे रोकनेका बस एक ही उपाय है—विषय-भोगसे निवृत्ति। इनकी आखे यह क्यो नही देख सकती कि पशुओमे यही उपाय अमोघ है? इनकी अकलमे यह बात क्यो नही आती कि इन ऊपरी उपायोका अवलबन स्त्रियोको वेश्या और विपथगामिनी और पुरुषोको निर्जीव-नपुसक बना देता है।

स्वास्थ्यरक्षाके लिए सभोग आवश्यक है, इस भ्रमको दूर कर देना हरएक डाक्टर और अनुभवी सलाहकारपर फर्ज है। मै तो अपने अनुभव और विद्वान् अनुभवी चिकित्सकोके साथ बातचीत करके जो-कुछ जान सका हू, उसके आधारपर यह कहनेको तैयार हू कि लबे अरसेतक सभोग न करनेसे कुछ भी हानि नही होती, बल्कि बेहद लाभ होता है। कितने ही युवकोमे जो उछलता हुआ उत्साह और कौधता हुआ तेज दिखाई देता है वह उनके जी भरकर विषय-भोग करनेका फल नही बल्कि सयमका प्रसाद होता है। हरएक पुरुषार्थी 'पुरुष' जाने-अनजाने इस सूत्रका पालन करता है—

विषय-वासनाकी तृप्तिमे खर्च होनेवाली शक्ति सहज ही पुरुषार्थ सिद्धिमे लगाई जा सकती है। शक्तिका सयम जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक सिद्धि मिलेगी।

इन्सान कितनी ही सदियोसे कीमियाकी तलाशमे भटक रहा है। इस सूत्रमे जैसी शक्तियाँ भरी है वैसी कहा मिलेगी?

स्त्रीका कर्त्तव्य

स्त्रियोको अब जागना, सावधान हो जाना चाहिए। उन्हे यह दृढ निश्चय कर लेना चाहिए कि हम पुरुषकी विषय-वासना तृप्त करनेके साधन नही है। इस रूपमे व्यवहार किये जानेका उन्हे तीव्र विरोध करना चाहिए। पुरुष कमाकर स्त्रीको खिलाता है तो इसके लिए इतना उपद्रव क्यो? वह घर चलाये, बच्चोको पाले-पोसे, पढाये-लिखाये, घरके वायु-मडलमे प्रसन्नता

भरे, पति और बच्चोको ऊचे आदर्शोसे अनुप्राणित करे, अपने उगते-खिलते हुए बेटे-बेटियोको सन्मार्गपर चलाती रहे, इससे अधिक स्त्रीका कर्त्तव्य और क्या हो सकता है ? इतने कर्तव्योका बोझ उठानेके लिए तो उसे इनाम मिलना चाहिए, उसके लिए खास सुभीते कर दिये जाने चाहिए।

ब्रह्मचारिणी जोन

पुरुष जैसे विषय-भोगकी कामनाको पुरुषार्थमे बदल सकता है वैसे ही स्त्री भी कर सकती है। ऊचे आदर्शको सामने रखकर अपने यौवन-धन, अपने सौन्दर्य और अपने सारे आकर्षणको लेकर वह बडे-से-वडा पुरुषार्थ कर सकती है, इतिहासमे इसका सबसे ऊचा उदाहरण जॉ दार्क (जोन ऑव आर्क)का है। उसके पास अपने निष्कलक कौमार्य और पारदर्शक ब्रह्मचर्यके सिवा और कौन-सा बल था। १५ वी सदीमे फ्रासमे कैसी भयावह स्थिति थी ! सब ओर दारिद्रय, दु ख और दुष्टताका साम्राज्य था। फ्रेच सेना अनेक वर्षोसे अग्रेजी सेनासे हारपर हार खाती जा रही थी, सैनिक निस्सत्व, निर्वीर्य हो गये थे। उत्तरके सभी बडे नगर दुश्मनके कब्जेमे थे। पेरिसकी सडकोपर लाशोके ढेर पडे सड रहे थे। राजा भाग गया था। स्त्रियोमे शील-जैसी वस्तु रह ही नही गई थी, ऐसे कठिन कालमे ज़ाँ दार्क नामकी अपढ पर महा शूरवीर और बुद्धिमती कुमारी आगे आई। लोग उसकी पवित्रता स्वीकार न करते थे। सोचते थे कि वह भी फ्रासकी दूसरी हजारो छोकरियो-जैसी होगी। सोलह सालकी लडकीका कौमार्य क्या अखडित हो सकता है ?

उसके कौमार्यकी जाच करनेके लिए एक कमीशन बिठाया गया। उसका दावा सही साबित हुआ। तब बुद्धिमान पुरुषोने उसे चादीका बक्तर पहनाया और फौजके आगे रखा, और वह इस तरह मौतका डर छोडकर लडी मानो उसके अन्दर किसीने बिजली भर दी हो। उसके ब्रह्मचर्यका लोगोके ऊपर अद्‌भुत प्रभाव पडा। नामर्द मर्द बन गये और कितने ही वर्षोसे चलनेवाली लडाई गिने-गुथे दिनोमे ही समाप्त हो गई। अग्रेजोके कदम

फाससे उखड गये। इतिहासमे इस घटनाका जवाब नही मिला। पर आज जो प्रवाह वह रहा है वह चलता रहे—स्त्री विषय-वासनाकी तृप्ति-मात्रका साधन वन जाय। पुरुष उसे भ्रष्ट करता रहे, जनन-निरोधके साधनोका चलन आम हो जाय, तो इससे समाजमे सत्यानाशका जो चक्र चलेगा उसे रोकनेके लिए ब्रह्मचारिणी तपस्विनी जॉ दार्क-जैसो की ही आवश्यकता होगी, जो १५ वी सदीकी उस वीरागनाका जोड होगा।

सब स्त्रियाँ भले ही जॉ दार्क न बने, भले ही वे पवित्र विवाह-बधन-मे बधे, पर इस बधनमे बधकर भी वे अपने सम्बन्धकी पवित्रता कायम रखे, उसे वेश्या-वृत्ति न वना दे। माताका धर्म समझे और पुरुपोका पुरुषार्थ जगानेवाली शक्ति बने।

उपसंहार

यह इस सुन्दर पुस्तकका सार है। पहली पुस्तकका सार लगभग शब्दश उलथा है। पर यह खुलासा उलथा नही वलिक लेखकके भावोका निचोड है। सारी पुस्तकमे जो-कुछ कहा गया है वह मानो अपने इस महा-मत्रमे आ जाता है—

मरणं बिन्दुपातेन जीवन बिन्दु-धारणात्

और जीन द आर्क-जैसे ज्वलन्त दृष्टान्त अपने वैधव्यके अखड ब्रह्मचर्यसे चमकनेवाली मीरावाई, झासीकी महारानी लक्ष्मीवाई और अहल्यावाई होलकरके तथा सपूर्ण जीवनको कौमार्य—ब्रह्मचर्यसे शोभा-सम्पन्न कर देने-वाली दक्षिण भारतकी दो साध्वियो अव्वै और आडालके चरित्रोमे मिलते है।[1]

---

[1] स्वर्गीय श्री महादेव देसाई द्वारा किये हुए और 'नवजीवन' में प्रकाशित साराशका उलथा।

: २ :

जनन और पुनर्जनन

(श्री विलियम लॉफ्ट्स हेयरके लेखका भावानुवाद[१])

जिन जीवोका शरीर केवल एक कोषका बना होता है उन्हे खुर्दबीनसे देखनेपर प्रकट होता है कि अतिनिम्न कोटिकी जीवश्रेणियोमे जनन या वश-वृद्धिकी क्रिया विभाजनके द्वारा होती है। जीव-शरीरके टुकडे होकर एकसे दो जीव बन जाते है। जीव पोषण पाकर पुष्ट होता है और उसकी जातिके जीवके देहकी अधिक-से-अधिक जितनी बाढ हो सकती है उस बाढको जब वह पहुँच जाता है तब वह अपने प्राण-केन्द्र (न्यूक्लियस) और कुछ क्षण बाद शरीरके भी दो टुकडे कर लेता है। स्थिति साधारण हो—जल और आहार सुलभ हो—तो जान पडता है, उसके जीवनका कार्य यही समाप्त हो जाता है। पर ये दोनो वस्तुए सुलभ न हो तो कभी-कभी यह देखनेमे आता है कि दोनो कोष फिर जुड जाते है। इससे नये जीवकी उत्पत्ति तो नही होती, पर उस जीवकी जवानी लौट आ सकती है।

वहुकोषी जीवोमे भी पोषण और वृद्धिकी क्रियाए वैसे ही होती है जैसे नीचेकी श्रेणीवाले प्राणियोमे, पर एक नई बात देखनेमे आती है। जिस कोप-समूहसे शरीरका निर्माण होता है वह कई वर्गोमे बटकर भिन्न-भिन्न कार्य करने लगता है। कुछ आहार या पोषण प्राप्त करते है, कुछ उसका वितरण करते है, कुछ शरीर या उसके विभिन्न अगोको हिलने-डुलनेमे समर्थ बनाते है तो कुछ उसकी रक्षाका भार उठाते है, जैसे खाल। जिन कोषोको नये काम सौपे जाते है वे विभाजनकी प्राथमिक क्रिया त्याग देते है। पर जिनका स्थान पिडके अधिक भीतरी भागमे होता है वे उसे

---

[१] शिकागो अमरीकाके 'ओपेन कोर्ट' नामक मासिकके मार्च १९२६ के अंकमें प्रकाशित।

किये जाते है। जिन कोषोका रूप-कार्य बदल गया वे उनकी सेवा-रक्षा करते है। पर वे खुद जैसे-के-तैसे बने रहते है। वे पहलेकी तरह फटते, विभक्त होते रहते है, पर बहुकोषी शरीरके अदर ही आगे चलकर कुछ उससे बाहर भी कर दिये जाते हैं। परन्तु उन्हे एक नई शक्ति मिल जाती है। अपने पुरखोकी तरह फटकर एकसे दो हो जानेके बदले वे अपने प्राण-केन्द्र-के टुकडे किये बिना ही उससे नये पिड पैदा कर लेते हैं। यह क्रिया तबतक चलती रहती है जबतक प्राणी अपनी जातिकी पूरी बाढ नही प्राप्त कर लेता। तव उसकी देहमे एक नई बात दिखाई देती है। बीज-कोषोके मूल समुदाय बाह्य जननके कामसे छुट्टी पा ही जाते है। देहके भीतर विभिन्न क्रियाओके लिए वे नये कोष भी लगातार प्रस्तुत करते रहते हैं। अपने मूल रूपमे बने रहनेवाले कोष इस प्रकार एक साथ दो काम करते है—शरीरके विकासके लिए भीतरी जनन या उत्पादन और वश-रक्षाके लिए बाहरी जनन। यहा इन दोनो क्रियाओमे हम स्पष्टत भेद कर सकते है। इनमेसे एकको हम **पुनर्जनन** और दूसरेको **जनन** कहेगे। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। पुनर्जननकी क्रिया—भीतरी उत्पादन—व्यक्तिकी जीवन-रक्षाके लिए अनिवार्य है, इसलिए आवश्यक और प्रधान है। जननकी क्रिया कोषोके आवश्यकतासे अधिक हो जानेका परिणाम है, इसलिए कम जरूरी, गौण है। सभवत दोनो शरीरको पूरा पोषण मिलनेपर अवलबित है, क्योकि उसमे कमी हुई तो शरीरके भीतरी निर्माणकी क्रिया ठीक तौरसे न हो सकेगी और फिर बाह्य जनन-वश-वृद्धिकी आवश्यकता न होगी, होना शक्य न होगा। अत इस स्थितिमे जीवनका नियम यह है कि बीज-कोषोका पोषण पहले पुनर्जननके लिए किया जाय, फिर जनन-क्रियाके लिए। शरीरको पूरा पोषण न मिलनेकी दशामे पुनर्जनन प्रथम कर्तव्य होगा और जननकी क्रिया बद रहेगी। इस प्रकार हम जान सकते हैं कि सन्तानोत्पादन कुछ समय तक रोक रखनेकी प्रेरणाका उद्‌गम कहा है और किस तरह विकसित होकर उसने ब्रह्मचर्य और तपश्चर्याका रूप प्राप्त किया। आन्तरिक पुनर्जननकी क्रिया बद हो जानेका अर्थ मृत्यु होगा, और यह बात हमे स्वाभाविक मृत्युके मूलका भी पता दे देती है।

जीवन-शास्त्रमें जनन

मनुष्यो और पशु-जातियोमे लिंग-भेद चरम विकासको पहुंच चुका है और साधारण नियम वन गया है। इनकी स्थितिपर विचार करनेके पहले हमे जनन या वश-वृद्धिके मध्यवर्ती प्रकारपर एक निगाह डाल लेनी होगी। यह प्रकार है—उभयलिग प्रकारके पहले और अलिग प्रकारके वादका। पौराणिक गाथाओमे इस जीवश्रेणीको उभयलिगकी सज्ञा दी गई है, इसलिए कि वह नर-नारी दोनोके काम करता है। कुछ जीवोमे अव भी यह वात देखनेमे आती है। उनमे बीज-कोषोकी आन्तरिक वृद्धि तो ऊपर वताई हुई रीतिसे ही होती है, पर जनन-क्रियाके लिए विलकुल अलग कर दिये जानेके वदले वे कुछ कालके लिए ही अलग किये जाते है और देहके दूसरे भागमे दाखिल हो जाते है, और जवतक स्वतत्र जीवनकी योग्यता नही प्राप्त कर लेते तवतक वही उनका पोषण होता रहता है।

जीवनके विकासका नियम यह मालूम होता है कि प्राणी एक-कोषी हो, वहुकोषी हो या उभयलिग, उसके शरीरकी वाढ उस हदतक हो सकती है जिस हदतक उसके जननी-जनक उसके जन्म-कालमे पहुच चुके थे। इस प्रकार प्रगति व्यष्टि-प्राणीकी ही होती है। जव-जव वह वच्चा पैदा करता है, शरीर-सघटनकी दृष्टिसे वह खुद पहलेसे अच्छी स्थितिमे होता है या हो सकता है। फलत. उसकी सन्तान अपने मा-वापकी साधारण वाढको पहुचनेमे समर्थ होगी। सन्तानोत्पादनमे समर्थ होनेका काल प्रत्येक व्यक्ति और जातिके लिए भिन्न-भिन्न होता है। पर आदर्श रूपमे वह जवानीसे वुढापेके आरभतक होता है। जवान होनेके पहले या शक्तियोका ह्रास आरम्भ हो जानेके वाद सन्तान उत्पन्न की जाय तो वह मा-वापसे वल-वुद्धिमे हीन होगी। यहा भी शरीर-शास्त्रके नियम हमे सभोग-नीतिका एक नियम वताते है—वश-वृद्धि और शरीरकी आतरिक पुष्टिकी दृष्टिसे पूर्ण यौवन-काल ही सन्तानोत्पादनके लिए सर्वोत्तम काल है।

उभयलिग प्राणीने लिंग-भेदकी उत्पत्तिका इतिहास हम छोड देते है, क्योकि यह विकास-क्रम निर्विवाद तथ्य है। पर उभय-लिग प्राणीकी

उत्पत्तिके साथ एक नई बात पैदा हो जाती है जिसकी चर्चा आवश्यक है। उभयलिग प्राणीके दोनो अर्द्धभाग—'नर' और 'मादा'—दो पिड तो हो ही जाते है, हर एक अलगसे बीज-कोष भी पैदा करने लगता है। नर-भाग बीज-कोष या शुक्र-कीट बनाकर आतरिक जननका पुराना बुनियादी काम बदस्तूर किये जाता है, पर उन्हे पृथक् करनेके बजाय इस उद्देश्यसे बटोर रखता है कि शुक्र-कीट उनमे प्रविष्ट होकर गर्भाधान करे। दोनो अवस्थाओमे पुनर्जननकी क्रिया व्यक्तिके लिए अनिवार्य आवश्यक है। गर्भ-स्थितिके बादसे भीतरी पुनर्जननकी क्रिया प्रतिक्षण बढती जाती है। मानव-प्राणीके पूरी बाढको पहुच जानेपर सन्तानोत्पादन हो सकता है, पर वह केवल जातिके हितार्थ होता है, व्यक्तिका हित उससे होना जरूरी नही है। निम्नकोटिके जीवोकी तरह यहा भी आतरिक जनन रुक जानेका अर्थ रोग या मृत्यु होता है। यहा भी व्यक्ति और जातिके हित एक-दूसरेके विरोधी होते है। व्यक्तिके पास बीज-कोषोकी फाजिल पूजी न हो तो सन्तानोत्पादनमे उसे खर्च करनेसे पुनर्जनन या आतर उत्पादनकी क्रियाको कुछ आवश्यक सामग्रीकी कमी पड जायगी। सच तो यह है कि सभ्य मानव-समाजमे सभोग वश-रक्षाकी आवश्यकतासे कही अधिक और भीतरी पुनर्जननकी क्रियामे अडचन डालते हुए किया जाता है, जिसका फल रोग, मृत्यु और दूसरे कष्ट होते है।

मानव-शरीरकी कल किस तरह चलती है इसपर यहा हम थोडी अधिक सूक्ष्म दृष्टि डालना चाहते है। हम पुरुष-शरीरको लेते है, पर स्त्री-शरीरमे भी, ब्यौरेके थोडे अन्तरके साथ, वही क्रियाए होती है।

शुक्र-कोषोका केन्द्रीय भडार प्राणका आदिम और मूलभूत अधिष्ठान है। भ्रूण या गर्भ आरभसे ही, माताकी देहमे बननेवाले रसोसे पुष्ट होकर, प्रतिक्षण बढता रहता है। शुक्र-कोषोका पोषण ही यहा भी जीवनका नियम दिखाई देता है। गर्भके शुक्र-कोषोकी सख्या ज्यो-ज्यो बढती है और उनमे कुछ भिन्नता पैदा होने लगती है, वे आवश्यकतानुसार नये रूप और नये कार्य ग्रहण करने लगते है। स्थूल अर्थमे जन्म-ग्रहण-माके पेटसे बाहर आनेसे इस क्रियामे थोडा ही अन्तर पडता है, पहले शुक्र-कोषके पोषणकी सामग्री नालके द्वारा मिलती थी, अब होठो और मुहके रास्ते मिलती है। कोषोकी

वृद्धि अब तेजीसे होती है और सारे शरीरमे जहा कही निकम्मे तन्तुओकी जगह नये तन्तु बनानेकी आवश्यकता होती है वहा पहुच जाते है। रक्त-वाहिनी नाडिया इन कोषोको अपने आदि अधिष्ठानसे लेकर देहके हर हिस्सेमे पहुचाती है। बडे-बडे समूहोमे वे खास-खास काम अपने जिम्मे लेते है और देहके भिन्न-भिन्न अगोका निर्माण और मरम्मत करते है। जिस कोष-समुदायकी वे व्यष्टि है वह जीता रहे इसके लिए वे हजार बार मौतको गले लगाते है। ये सारे 'मुर्दे' शरीरकी ऊपरी सतहपर आ जाते है और खासकर हड्डियो, दातो, खाल और बालोमे कडाई पैदा करके सारे शरीरका बल बढाते और उसकी रक्षा करते है। उनकी मृत्यु देहके उच्चतर जीवन और उसपर आश्रित सारी बातोका मूल्य है। वे आहार-ग्रहण, नये कोषोका उत्पादन, विभाजन, भिन्न-भिन्न वर्गोमे बटकर भिन्न-भिन्न कार्योका सपादन, और यह सब करके अन्तमे मर जाना बद कर दे तो शरीर जी नही सकता।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बीज-कोषो या शुक्र-कोषोसे दो तरहके जीवनकी प्राप्ति होती है—१. आन्तरिक या प्रजनन-रूप और २ बाह्य या जननरूप। पुनर्जनन देहके जीवनका आधार है और उसको भी उसी स्रोतसे जीवन मिलता है जिससे जनन-क्रियाको। इससे हम यह अनुमान कर सकते है कि विशेष अवस्थाओमे दोनो क्रियाए एक-दूसरेकी विरोधिनी, एक-दूसरेमे बाधक हो सकती है।

पुनर्जनन और अचेतन मन

पुनर्जनन यान्त्रिक क्रिया—बेजान कलके पुरजोका हिलना—न है और न हो सकता है। वह तो जीव-सृष्टिमे कोषके प्रथम विभाजनकी तरह प्राण या जीवका अस्तित्व बतानेवाला व्यापार है। अर्थात्, वह कर्तामे बुद्धि और सकल्पकी शक्ति होनेकी सूचना देता है। प्राण-तत्त्वका विभाजन और बिलगाव—उसका विशिष्ट कार्योकी योग्यता प्राप्त करना शुद्ध यांत्रिक क्रिया है, यह बात तो सोची भी नही जा सकती। इसमे सन्देह नही कि जीवनकी ये मूलभूत क्रियाएं हमारी वर्तमान चेतनासे इतनी दूर जा पडी है

कि कोई बुद्धिकृत या सहज सकल्प उनका नियमन करता है, यह नही जान पडता। पर क्षण-भरके विचारसे ही यह वात स्पष्ट हो जायगी कि पूरी वाढको पहुचे हुए मनुष्यका सकल्प जिस तरह उसकी वाह्य चेष्टाओ और क्रियाओका सचालन, बुद्धिके निर्देशानुसार करता है, वैसे ही यह भी मानना होगा कि आरभमे होनेवाली शरीरके क्रमिक सघटनकी क्रियाए भी, अपनी परिस्थितिकी सीमाओके अदर, एक प्रकारकी बुद्धिकी रहनुमाईमे काम करनेवाली एक प्रकारकी इच्छा-शक्ति या सकल्पके द्वारा परिचालित होती है। इस बुद्धिको मानस-शास्त्रके पडित अव अचेतन मन या अन्तश्चेतना कहने लगे है। यह हमारी व्यष्टि सत्ता, हमारी आत्माका ही एक अग है, जो हमारे साधारण चिन्तनसे लगाव न रखते हुए अपने निजके कर्तव्योके विषयमे अतिशय जागरूक और सावधान रहता है। हमारी वाह्य चेतना सुषुप्ति वेहोशी आदिमे सो जाती है, पर अन्तश्चेतना कभी एक क्षणके लिए आख नही मूदती।

इस प्रकार हमारी अन्तश्चेतना ही वह प्राण-शक्ति है जो शरीरके भीतरी निर्माण और विकासकी पेचीदा क्रियाओका नियमन करती है। उसका पहला काम है—गर्भयुक्त डिम्वको अलग करना और इसके वाद प्राणीकी मृत्यु होनेतक मूल वीज-कोषोको जज्व कर और उन्हे भिन्न-भिन्न अगोको भेजकर, अपने पिड या शरीरकी रक्षा करते रहना। इस विषयमे मेरा मत अनेक नामी मानस-शास्त्रियोके मतका विरोध करता हुआ मालूम हो सकता है, पर मेरा कहना है कि अचेतन मनको केवल व्यक्तिकी चिन्ता होती है, जातिके जीने-मरनेकी परवाह उसे नही होती। अत पहले वह पुनर्जननकी गाडी चलानेका उपाय करता है। केवल एक ही दृष्टिसे कह सकते है कि अचेतनको भावी पोढीकी, जातिकी, चिन्ता होती है—शरीर-सघटनकी दृष्टिसे व्यक्तिको अपने पुरुषार्थसे वह जिस स्तरपर पहुचा चुका है उसको वह वनाये रखना चाहता है। पर जो वात असभव है वह उसके किये नही हो सकती। चेतन या ज्ञात सकल्पकी सहायतासे भी वह जीवनको अनन्त कालतक वनाये नही रह सकता। अत काम-प्रवृत्ति या सभोगके आवेगके जरिये अपने-आपको फिरसे पैदा करता है। कह सकते है कि इन

व्यापारमे अचेतन और चेतन मन—अन्तश्चेतना और वहिश्चेतना—मिल-कर काम करती है। सभोगमे मिलनेवाला सुख साधारणत. इस वातकी सूचना माना जा सकता है कि उससे व्यक्तिको सुख मिलनेके सिवा किसी औरके प्रयोजनकी भी पूर्ति होती है। व्यक्तिको इस सुखकी कीमत भी, जितनी वह जानता है, उससे वहुत ज्यादा चुकानी पडती है।

जन्म और मृत्यु

इस लेखको विज्ञानके विशेषणोके अवतरणोसे भरकर वोझिल वना देना इष्ट नही है पर विषय इतने महत्त्वका है और जन-समाजमे इस विषय-मे इतना अज्ञान फैल रहा है कि कुछ प्रामाणिक वचन हमे देने ही होगे। रे लैकेस्टर लिखते है—

"आदि जीव (प्रोटोजोऑन) का शरीर केवल एक कोषका होता है, और अपना वश वह अपने शरीरके टुकडे करके वढाता है। इससे इस प्रकारके जीवोमे मृत्यु कोई स्वाभाविक और साधारण घटना नही है।"

वीसमानका कहना है—"स्वाभाविक मृत्यु केवल वहुकोषी जीवोमे ही होती है, एक कोषवाले जीव उससे वच जाते है। उनके विकासका कभी वैसा अन्त नही होता जिसकी तुलना मृत्युसे की जा सके, और यह भी जरूरी नही कि नये प्राणीके पैदा होनेके लिए पुरानेको मरना पडे। विभाजनमे दोनो अग समान होते है, न कोई वूढा होता है न कोई जवान। इस प्रकार व्यष्टि जीवोकी अनन्त श्रेणी चलती रहती है, जिसमे हर एककी वय उतनी ही होती है जितनी जातिकी। हर एकमे अनन्त कालतक जीते रहनेकी सामर्थ्य होती है, उसके टुकडे सदा होते रहते है, पर मरता कभी नही।"

पैट्रिक गेडेस 'द इवोल्यूशन आव सेक्स' (लिग-भेदका विकास) पुस्तकमे लिखते है—"इस तरह हम कह सकते है कि मृत्यु देह-धारणका मूल्य है। यह कीमत हमे कभी-न-कभी चुकानी ही पडती है। देहसे हमारा मतलव कोषोके उस जटिल सघातसे है जिसमे थोडा-वहुत अग-भेद और कार्य-भेद विद्यमान हो।"

श्री वीसमानके अर्थभरे शब्दोमे "देह एक तरहसे जीवनके सच्चे

अधिष्ठान-उत्पादन-कार्य करनेवाले कोप-समूहका अतिरिक्त विस्तार उनसे जोडी हुई चीज-सी जान पडती है।"

श्री रे लैंकेस्टर भी यही वात कहते हैं––"वहुकोषी प्राणियोके शरीरमे कुछ कोष देहके और घटकोसे अलग कर दिये जाते है। ऊची श्रेणीके जीवोकी देह, जो मरणशील होती है, इस दृष्टिसे क्षणिक और गौण वस्तु मानी जा सकती है, जिसकी रचनाका प्रयोजन अधिक महत्त्ववाली और अमर वस्तु-विभाजनसे उत्पन्न कोष-सघात––का कुछ दिनोतक धारण-पोषण करते रहना-भर है।"

"पर इस विषयमे सबसे अधिक मार्केकी और सभवत सर्वाधिक विस्मय-जनक बात वह गहरा लगाव है जो ऊचे प्रकारकी बनावट वाली देहो या पिडोमे जनन-क्रिया ओर मृत्युके बीच पाया जाता है। अनेक विज्ञानविद् इस विषयपर स्पष्ट और निश्चयात्मक शब्दोमे अपने विचार प्रकट कर चुके है। जननका दण्ड मरण है। वहुतेरी जीव-योनियोमे यह बात विलकुल स्पष्ट है। वश-रक्षाका उपाय करनेमे उनमे नर या मादामेसे एकको अक्सर जानसे हाथ धोना पडता है। सन्तानोत्पादनके वाद जीते रहना प्राणकी विजय है, जो सदा नही होती। कुछ जीव-जातियोमे तो कभी नही होती। गेटेने मृत्युपर लिखे हुए अपने निबधमे भली-भाति दिखाया है कि जनन और मरणमे कितना निकटका और अनिवार्य सम्बन्ध है। ये दोनो क्रियाए क्षय क्रियाकी वे मजिले कही जा सकती है जब स्थिति कोई पक्की करवट लेती है।"

श्री पैट्रिक गेडेस पुन कहते है––"सन्तानोत्पादन और मृत्युका सम्वन्ध निस्सदेह स्पष्ट है। पर आम वोल-चालमे इस लगावको गलत रूप दे दिया जाता है। हम लोगोको यह कहते सुनते है कि प्राणीकी मृत्यु अटल है इसलिए उसे वच्चे पैदा करने ही होगे, नही तो जातिका नाश हो जायगा। पर पीछेके उपयोगकी यह दलील आमतौरसे हमारे दिमागकी वादमे होनेवाली उपज होती है। इतिहास हमे वताता है कि प्राणी इसलिए वच्चे नही पैदा करता कि उसे एक दिन मरना है, वल्कि वह वच्चे पैदा करता है इसीलिए मरता है।"

गेटेने इस तत्त्वको यो सूत्र-रूपमे बताया है—"मरण जननको आवश्यक नही बनाता, बल्कि वह खुद जननका अनिवार्य परिणाम है।"

बहुत-सी मिसाले देनेके बाद गेडेसने इन ध्यान देने योग्य शब्दोमे इस विषयका उपसहार किया है—"ऊची श्रेणीके जीवोमे वश-वृद्धिके लिए होनेवाला बलिदान बहुत कम हो गया है, फिर भी काम-वासनाकी तृप्तिके फल-रूपमे मौत होनेका खतरा मनुष्यके लिए रहता ही है। सयत मात्रामे सभोगसे भी तन-मनमे सुस्ती, थकावट आ जाती है और शारीरिक शक्तिके इस ह्रास-कालमे हर तरहके रोग होनेकी सभावना बढ जाती है, यह तो सभीको मालूम है।"

इस विवेचनाका निचोड यह हो सकता है कि सभोग पुरुषके लिए शरीरके क्षयकी क्रिया या मौतकी ओर बढना है और प्रसव-क्रियामे स्त्रीके लिए भी उसका वही अर्थ होता है। और यह बात बिलकुल पक्की है।

असयत सभोगका शरीरके स्वास्थ्यपर जो अनिष्टकर प्रभाव पड़ता है उसपर एक पूरा अध्याय लिखा जा सकता है। अखड ब्रह्मचर्य या पूर्ण सयमका पालन करनेवालेको भी बल-वीर्य, दीर्घायु और आरोग्यकी प्राप्ति होना साधारण नियम है। इसका एक सबूत, यद्यपि वह जरा भद्दा है, यह हो सकता है कि दुर्बल जनोके शरीरमे इजेक्शनके जरिये बाहरसे थोड़ा वीर्य पहुचा देनेसे उनकी बहुत-सी व्याधिया दूर हो जाती है।"

प्रस्तुत निबधके इस भागमे जो मत या निष्कर्ष पाठकोके सामने रखे गये है उनका मन उन्हे माननेसे इनकार कर सकता है। कितने ही लोग बहुतेरे बूढे और देखनेमे तन्दुरुस्त लगनेवाले स्त्री-पुरुषोके नाम लेगे जिनके बहुतसे बालबच्चे है, आकडे देकर दिखायगे कि विवाहित स्त्री-पुरुष अविवाहितोसे अधिक जीते है। पर इनमेसे कोई भी दलील इस तथ्यके सामने टिक नही सकती कि विज्ञानकी दृष्टिने मृत्यु जीवनके अन्तमे घटित होनेवाली घटना नही है, बल्कि एक क्रिया है जो जीवनके साथ ही आरभ होती और प्रतिक्षण उसके साथ-साथ चलती रहती है। शरीरकी छीजकी पूर्ति अथवा पोषण और उसका क्षय जीवन और मरणकी शक्तिया है जो एक-दूसरेके कदम-ब-कदम चला करती है। बचपन और चढती जवानीके दिनोमे

जीवनकी क्रिया दौडमे आगे रहती है। प्रौढावस्थामे दोनों कदम-ब-कदम चलती हैं, पर जब उम्र ढलने लगती है तो मृत्युकी क्रिया आगे निकल जाती है और अन्तमे निधनके क्षणमे जीवनकी शक्तिको पक्के तौरसे पछाड देती है। इस जय-लाभमे सहायक होनेवाली हर बात, हर बात जो उस घडीको एक दिन, एक वरस या एक दशक आगे खीच लाती है, मृत्युकी क्रिया है। और सभोग निस्सन्देह ऐसा ही कार्य है, खासकर जब वह अति मात्रामे किया जाय।

अपने उपर्युक्त कथनकी प्रामाणिकतापर सन्देह करनेवालोको मै एक बहुत ही रोचक और ज्ञानगर्भ पुस्तक पढनेकी सलाह दूगा। वह चार्ल्स एस माइनट लिखित 'द प्राब्लम आव एज ग्रोथ ऐंड डेथ' (वय विकास और मृत्युकी समस्या)।[1] विद्वान लेखकने इस पुस्तकमे क्षय और मृत्युका अर्थ और स्वरूप शरीर-शास्त्रकी दृष्टिसे बताया है। उसकी इस बातको मै पक्के तौरसे मानता हू कि स्वाभाविक मृत्यु जीवनकी कोई अलग, असबद्ध घटना नही है, बल्कि एक निरन्तर चलती रहनेवाली क्रिया है। पर कामुकता-के विषयपर जो पुस्तक मुझे सबसे अधिक महत्त्वकी जान पडी वह है डाक्टर केनेथ सिलवा गुथरीकी 'रिजेनरेशन द गेट ऑव हेवेन' (पुनर्जनन-स्वर्ग-द्वार[2])। उसका नाम तो बताता है कि वह आध्यात्मिक दृष्टिसे लिखी गई है, पर उसमे शरीरशास्त्र और नीति-शास्त्रकी दृष्टिसे भी विषयका पूर्ण विवेचन किया गया है और अपने मतकी पुष्टिमे विज्ञानके प्रमुख पण्डितो तथा ईसाई धर्माचार्योंके मत पेश किये गए है।

मनकी इन्द्रिय

शरीरके उच्चतर कार्यो, खासकर मनकी भौतिक इद्रिय-नाडी-सस्थान

---

[1] The Problem of Age, Growth and Death, by Charls S. Minot (1908. Johan Murray)

[2] Regeneration, the Gate of Heaven, by Dr. Kenneth Sylvan Guthrie (Boston, the Barta, Press)

और मस्तिष्कका विचार करनेसे जनन और पुनर्जनन क्रियाके स्थिर विरोधका कुछ अदाजा हमे लग सकता है । हमारा सम्पूर्ण नाडी-सस्थान भी ऐसे कोषोसे ही वना है जो कभी वीज-कोष रह चुके है और जो प्राणके आदि अधिष्ठानसे खिचकर आये है । विभिन्न सस्थानोके नाडी-जाल केन्द्रोको उनकी धारा सदा सीचती रहती है, दिमागको तो प्रचुर मात्रामे उसकी प्राप्ति होती है । इन कोषोका ऊपरकी ओर जाकर शरीरके पोषणमे लगना रोककर वे सन्तानोत्पादन या केवल भोग-सुखके लिए खर्च किये जाय तो वह खजाना खाली हो जाता है जिससे उक्त अग रोज होनेवाली छीजकी पूर्ति किया करते है ? यही शारीरिक सचाइया हमारी वैयक्तिक सभोग-नीतिका आधार है, जो अखड ब्रह्मचर्य नही तो सयमकी सलाह जरूर देती है—सयमकी प्रेरणाका मूल स्रोत कहा है यह तो बताती ही है ।

कुछ दर्शन मानते है कि ब्रह्मचर्य-धारणसे मन और आत्माकी शक्तिया वढती है । भारतका योग-दर्शन उनमे प्रधान है । पाठक पातजल योग-दर्शनके किसी भी प्रामाणिक उलथाको देखकर मेरे कथनकी सचाईकी जाच कर सकते है । ('हारवर्ड ओरियटल सिरीज'मे प्रकाशित जेम्स एच० वुड कृत उलथा मेरी समझसे अग्रेजीमे उसका सर्वश्रेष्ठ अनुवाद है ।)

भारतके धार्मिक और सामाजिक जीवनसे परिचित जनोको मालूम होगा कि हिन्दू लोग पहले तपस्या किया करते थे और वहुतेरे अव भी करते है । उसके दो उद्देश्य होते है—शरीरकी शक्तियोको वनाये रखना और वढाना और मनकी अतीन्द्रिय शक्तिया या सिद्धिया प्राप्त करना । पहलेको हठयोग कहते है । शारीरिक पूर्णता—आदर्श स्वास्थ्यको ही उसने अपना लक्ष्य मान लिया है । उसके अन्दर वहुतसे करामाती काम किये जाते है । दूसरेका नाम राजयोग है, जिसका उद्देश्य मन, वुद्धि और आत्माकी शक्तियो-का विकास है । पर शारीरिक सदाचारका अग दोनोमे समान है । यह पतजलिके योगसूत्र और प्राचीन भारतके इस महान मानस-शास्त्रीके सिद्धान्तोके सहारे रचित अन्य कितने ही ग्रन्थोमे वर्णित है ।

पंच क्लेशोमे 'राग'का स्थान तीसरा है । पतजलिके कथनानुसार उसका अर्थ है सुख या सुख-प्राप्तिके साधनोकी कामना या तृष्णा । सुखमें

दु ख मिला हुआ है। **सुखानुशायी रागः** (२-७) इसलिए वह योगीके लिए त्याज्य है।

योगके आठ अग है। उनमे पहला और दूसरा यम-नियम है, जिनका पालन योगके अभ्यासीको सबसे पहले करना होता है। यह देखकर अचरज होता है कि योगके रहस्योके अनेक उद्‌घाटनकर्ता या तो इस बातसे अनभिज्ञ है या जानते हुए भी इस विषयमे चुप्पी साध लेते है कि चौथा यम आठ प्रकारके मैथुनका त्याग है, और ब्रह्मचर्य जननेन्द्रियका निग्रह है।

पर पतजलिके कथनानुसार ब्रह्मचर्यके लाभ महान है **ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ** (३८-२)—ब्रह्मचर्यमे प्रतिष्ठित होनेवालेको वीर्य-लाभ होता है। वीर्यके मानी है बल, पौरुप। उसके लाभसे अणिमादि अष्ट सिद्धियोकी प्राप्ति होती है।

श्री मणिलाल ना० द्विवेदी अपनी योग-सूत्रकी टीकामे लिखते है। "शरीर-शास्त्रका यह सर्वविदित नियम है कि वीर्यका बुद्धिके साथ बहुत गहरा लगाव है, और हम कह सकते है कि आध्यात्म-भावके साथ भी है। जीवनके इस अमूल्य तत्त्वका अपव्यय रोकनेसे मनुष्य को मन-इन्द्रियोकी अभीष्ट अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त होती है। इस यमका पालन किये विना किसीकी योग-सिद्धि होनेकी वात हमे नही मालूम।"

योग-सूत्रोके कितने ही भाष्योमे योगका प्रयोजन और प्रक्रिया रहस्य-वादकी शब्दावलीमे वर्णित है। शक्तिके विषयमे कहा जाता है कि वह सर्पके समान सबसे नीचेके चक्रसे सबसे ऊपरके चक्र अड-कोषसे ब्रह्माकोण्ड जाती है।

वैयक्तिक काम-नीति

सदाचारके नियम सामान्यत जीवनके अनुभवोसे बनते है, चाहे वे व्यक्तियोके जीवनके हो या समाजोके अथवा जातिके। इतिहासके कथना-नुसार उनकी रचना प्राय कोई महापुरुप करता है। कभी-कभी उसे ईश्वरके अवतार या दूतका पद प्राप्त होता है। मूसा, बुद्ध, कनफ्यूशियस, सुकरात, अरस्तू, ईसा और उनके बाद हर देशमे हुए महान् धर्मोपदेष्टा और तत्त्व-

ज्ञानी सबने अपने-अपने देश और कालमे मनुष्यके आचारको परखनेकी कोई-न-कोई कसौटी पेश की। अत सामान्य, सर्वोपयोगी नीति-शास्त्र दर्शन-शास्त्र, मानस-शास्त्र, शरीर-शास्त्र और समाज-शास्त्रके सिद्धान्तोपर आश्रित होगा। ये सब मिलकर अनेक तथ्य या माने हुए तथ्य प्रस्तुत करते है जो स्वत प्रमाण होते है। अत. किसी भी युग या सभ्यतामे वैयक्तिक काम-नीति या सभोग-नीतिके नियम उन्ही तथ्योके आधार बनेगे जो लोगोके अपने अनुभवमे उनपर सबसे ज्यादा असर डालते है। सामाजिक काम-नीति-की तरह वैयक्तिक काम-नीति भी युग-युगमे भिन्न होती है। पर उसकी बाते स्थायी और अल्पाधिक सार्वकालिक होती है।

इस युगके लिए वैयक्तिक काम-नीति निर्धारित करनेमे हमे सभी ज्ञात तथ्यो और सम्भावनाओका विचार करना होगा, खासकर जब विश्वस-नीय समीक्षकोके अनुभव उसकी पुष्टि कर देते हो। यह कहना अपनी बडाई करना नही है कि प्रस्तुत लेखके पहले और पाचवे प्रकरणोमे जो तथ्य दिये गए है वे निर्विकार चित्तके समझदार पाठकको तत्क्षण कुछ युक्ति-सगत अनिवार्य परिणामोपर पहुचाते है। व्यक्तिके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक हितकी दृष्टिसे वे तथ्य यही बताते है कि ब्रह्मचर्य जीवनका अकाट्य नियम है। पर इस नियमको चुनौती देनेके लिए तुरत ही दूसरा नियम हमारे सामने आकर ताल ठोकता है। एक नियम दूसरेका खडन करता है, पहला नियम प्रकृतिका है, कामकी वासना या वेग उसकी देन है। पिछला नियम है अपरोक्षज्ञान (इट्यूशन) का, विज्ञानका, अनुभव-का, विश्वासका, आदर्शका। पुराने नियमके अनुसरणका फल है जल्दी बूढा होना और जल्दी परलोक सिधारना। नये नियमके रास्तेमे ऐसी विकट बाधाए खडी है कि उनपर चलनेकी हिम्मत बिरले ही करते है। वस्तु-स्थिति पर विश्वास करना लोगोके लिए कठिन होता है, वे तुरत किन्तु-परन्तु करने लगते है। पर यहा यह बात उल्लेखनीय है कि योगियो, सन्यासियो और भिक्षुओके लिए जो आचारके कडे-से-कडे नियम रखे गए है वे पौराणिक आख्यानो या अध-विश्वासोपर आश्रित नही है, बल्कि इस निबधमे वर्णित शारीरिक सचाइयो द्वारा आदिष्ट है।

काम-वासनाकी तृप्तिमे सदाचार-पालनका पक्ष, जहातक मेरी जानकारी है, किसी आधुनिक लेखकने काउट टॉल्स्टॉयसे ज्यादा जोरदार या स्पष्ट शब्दोमे उपस्थित नही किया है। रूसके इस आदर्श-वादी तत्त्वज्ञानीके विचारो[1]की एक बानगी मै यहा देता हू—

"१०२ वश-रक्षाकी प्रवृत्ति—काम-वासना—मनुष्यमे स्वभावजन्य है। पशु-दशामे वह इस सहज वासनाकी तृप्ति कर अपने जीवनके प्रकृति-निर्दिष्ट उद्देश्यकी पूर्ति करता है। इसीमे उसका हित है।

१०३ पर चेतनाके जगनेपर उसका मन यह कहने लगता है कि इस वासनाकी तृप्तिसे व्यष्टिरूपमे उसकी कुछ अधिक भलाई होगी और वह उसकी तृप्ति जातिकी रक्षाके उद्देश्यसे नही बल्कि अपने निजके भलेके लिए करने लगता है। यही कामगत पाप है।

१०७ पहली हालतमे जब मनुष्य पवित्रता अर्थात् ब्रह्मचर्यका जीवन बिताना और अपनी सारी शक्ति भगवान्की आराधनामे लगाना चाहता हो, सभोग-मात्र—उसका उद्देश्य बच्चे पैदा करना और उन्हे पालना-पोसना हो तो भी—कामगत पाप होगा। जिस आदमीने ब्रह्मचर्यका रास्ता अपने लिए चुना हो शुद्धतम वैवाहिक जीवन भी उसके लिए एक स्वभाव-कृत पाप होगा।

११३ जिसने सेवा और पवित्रता या ब्रह्मचर्यका रास्ता अपने लिए चुना हो उसके लिए विवाह इस कारण पाप या गलती है कि वह इस बधनमे न बधता तो सभव है सबसे ऊचा धधा अपने लिए चुनता और अपनी सारी शक्तिया भगवान्की सेवामे—फलत प्रेमके प्रचार और व्यक्तिके परम श्रेयकी प्राप्तिमे—लगाता। इसके बदले वह जीवनके नीचेके स्तरपर उतर आता है और अपने परम श्रेयसे वचित रहता है।

११४ जो आदमी वश-रक्षाके रास्तेपर चलना चाहता हो उसके लिए

---

[1]टालस्टायकी परिभाषामें पाप धर्म-शास्त्रके किसी विधि-निषेधका उल्लंघन नही है। जो-कुछ प्रेम अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियोके प्रति मैत्रीकी अभिव्यक्तिमें बाधक है, वही पाप है।

विवाह न करना पाप होगा। इसलिए कि बाल-बच्चों, अन्तत कुटुम्बके नेह-नातेसे वचित रहकर वह अपने-आपको दाम्पत्य-जीवनके सबसे बड़े प्रेमसे वचित रखता है।

११५. इसके सिवा जो लोग सभोग-सुखको बढानेका यत्न करते है उनका स्वाभाविक सुख, ज्यों-ज्यो उन्हे कामुकताकी लत लगती है, घटता जाता है। सभी शारीरिक वासनाओकी तृप्तिमे ऐसा होता है।"

इन पंक्तियोसे प्रकट होता है कि टॉल्स्टॉयका सिद्धान्त नैतिक सापेक्ष्य-वाद है। मनुष्यके लिए परमेश्वर, परब्रह्म किसी अवतारी धर्माचार्यने नियत नही कर दिया है, हर एकको खुद उसे चुनना पडता है। हा, यह जरूरी है कि वह जो नियम, जो रास्ता अपने लिए चुने उसका अनुसरण करे।

यह आचार-नीति ऊपरसे नीचेकी ओर आनेवाला एक निषेध परम्परा-का विधान करती है। जिस आदमीको नैष्ठिक ब्रह्मचर्यमे पक्की निष्ठा है और जो ऊचे शारीरिक-मानस लक्ष्योके लिए बुद्धिपूर्वक सयमका पालन करता है उसके लिए सब प्रकारका सभोग वर्जित है। जो आदमी विवाह-बधनमे बध चुका है उसके लिए पर-स्त्री या पर-पुरुषका सग निषिद्ध है। अविवा-हित स्त्री-पुरुषके अनियमित या स्वच्छद सभोगमे भी वेश्या-गमन या वेश्या-वृत्ति जैसे पतनकारी सबधका निषेध होगा, और प्राकृतिक रीतिसे कर्म करनेवालेको अप्राकृतिक बुराइयोसे बचना चाहिए। अपनी काम-वासनाकी तृप्ति करनेवालेके लिए भी अति सभोग हर हालतमे दोष माना जायगा और कच्ची उम्रके युवक-युवतियोको प्रौढ वयको पहुचने तक सभोग-सुखकी चाह दबा रखनी होगी। यही काम-नीति है।

ऐसा आदमी तो शायद ही मिले जो इस सामान्य काम-नीतिको समझ न सकता हो और ऐसे भी बिरले ही होगे जो दिमागपर जोर डालकर सोचे तो उसकी सचाईको अस्वीकार करे। हा, कुतर्कसे उसका विरोध करनेकी प्रवृत्ति अवश्य पाई जाती है, लोग यह मानते है कि चूकि ब्रह्मचर्यका पालन कठिन है और बिरले ही उसे निभा सकते है इसलिए उसका उपदेश देना बेकार है। तर्ककी दृष्टिसे तो विवाहित स्त्री-पुरुषके पर-पुरुष या पर-स्त्री शरीर-संग न करने, पति-पत्निमे भी विषय-भोगकी अति न होने या

प्राकृतिक रीतिसे ही काम-वासनाकी तृप्ति करनेके विषयमे भी यही बात कही जा सकती ह । वे एक आदर्शको अस्वीकार करते है तो आदर्श-मात्रको कर सकते है और हमे गन्दी आदतो और कामुकताके गढेमे गिरनेकी सलाह दे सकते ै । बुद्धि-विवेक हम एक ही राह बताता है—आदर्शरूपी ध्रुवतारे-का अनुसरण । यह ध्रुवतारा हमे रास्तेके गढोसे बचाता और इस योग्य बनाता है कि हम एक नियमका सहारा ले उसके बलसे विरोधी नियमपर विजय प्राप्त कर ले। इस प्रकार इस नीति-नियमका सोच-समझकर और इच्छापूर्वक अनुसरण करके मनुष्य जवानीकी अप्राकृतिक बुराइयोसे स्वाभाविक सयोगकी स्थितिको पहुच सकता है, भले ही वह अविवाहित, स्वच्छन्द हो । इस स्थितिसे और ऊचा उठकर वह एकनिष्ठ दाम्पत्य-जीवनके बधनमे बधेगा और अपने तथा अपने साथीके हितके लिए अपनी भोग-वासनापर उतना अकुश रखेगा जितना रख सकता है। यही नीति उसे ब्रह्मचर्यसे होनेवाले उच्चतर लाभोका अधिकारी बना सकती है, अति भोगकी अनेक बुराइयोके गढेमे गिरनेसे तो निश्चय ही बचा सकती है।

सामाजिक काम-नीति

समाज व्यक्तियोके कार्य-कलापका विस्तार और उनका एक लडीमे गूथा जाना है। अत सामाजिक काम-नीति भी वैयक्तिक काम-नीतिसे ही उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दोमे यो कह सकते है कि समाजको वैयक्तिक सदाचारके नियमोको कुछ बढाना और कुछ मर्यादित करना पडता है। इसका सबसे बडा उदाहरण विवाहकी व्यवस्था है। विज्ञानके पडितोने विवाहके इतिहासपर बडे-बडे ग्रथ लिखे है और इस विषयके तथ्य तो इतने इकट्ठे कर दिये है कि उनका ढेर लग गया है। इसलिए आज जो सुधार सुझाये जा रहे है उनकी चर्चा करनेके लिए उक्त विद्वानोकी रायोका निचोड दे देना भर काफी होगा।

प्राचीन कालमे मानव-वशमे माताका पद पितासे बडा था। सन्तानो-त्पादन-कार्यमे वही प्रकृतिका प्रधान कारपरदाज थी और है। उसीको लेकर, उसीको केन्द्र बनाकर कुटुम्बकी उत्पत्ति हुई। फलत एक जमानेमे

माताका राज विश्वकी व्यापक व्यवस्था थी। बहुपतित्व अर्थात् एक स्त्रीका अनेक पुरुषोसे सम्बन्ध उस समय जायज माना जाता था। एशियाकी कुछ जगली जातियोमे अब भी इस प्रथाके अवशेष पाये जाते है। इस प्रथासे और अशत: जातियो-कबीलोके संघटनसे भी पतिके पदकी पैदाइश हुई। एक स्त्रीसे सम्बद्ध अनेक पुरुषोमेसे जो सबसे अधिक बलवान और सरक्षण समर्थ होता था उसका पद-अधिकार औरोसे कुछ बड़ा होने लगा। पतिका अंग्रेजी पर्याय—'हस्बैंड' विवाह-प्रथाका इतिहास अपने भीतर लिये हुए है। वह मूलत: Hasboundi है जिसके मानी है घरमे रहनेवाला। उसपर घरमे रहना फर्ज होता था। औरोपर नही होता था। धीरे-धीरे वह घरकी रखवाली करनेवाले घरका मालिक बन गया और पीछे कोई-कोई 'गृहपति' जातिका सरदार या राजा भी बन गया। माताके राज या स्त्रीराज्यमे जैसे बहुपतित्वकी प्रथा उपजी थी पिता या पुरुषके राजमे वैसे ही बहुपत्नीत्वका रिवाज पैदा हुआ और फैला।

अत. सामाजिक दृष्टिसे नही तो मानव-शास्त्रकी दृष्टिसे पुरुष स्वभावत अनेक पत्नियोकी और स्त्री अनेक पतियोकी कामना रखनेवाली है। पुरुष अपनी कामनाकी किरणे सब ओर छिटकाता और जो स्त्री तत्काल उसे सबसे अधिक आकृष्ट करती उसीपर उसे केन्द्रित करता है। स्त्री भी यही कहती है। पर मनुष्यके प्रकृति-प्रेरित, उसकी मनोरचनासे उद्भूत अव्यवस्थित आवेगोपर थोडा-बहुत अंकुश न रखा गया तो मनुष्य-समाज टिक नही सकता, चाहे वह आदिम हो या आधुनिक। मनुष्यसे नीचेके सभी प्राणियोमे ऐसे आवेगोकी अतिशयता होती है। समाजको इन आवेगोके लिए विवाहके सिवा और कोई उपयुक्त अकुश न मिला और अन्तमे एकनिष्ठ विवाह—एक स्त्री-पुरुषके साथ एक स्त्री-पुरुषके व्याह या पति-पत्नी सम्बन्ध—को ही अपनाना पड़ा। इसका विकल्प एक ही हो सकता है—स्वच्छन्दाचार और अन्तत. वर्तमान रूपमे समाजका पूर्ण विनाश। दोनो जीवन-प्रणालियोका सघर्ष हमारी आखोके सामने चल रहा है और हम उसे देख सकते है। वेश्या-वृत्ति, अनियमित और अवैध सम्बन्ध, व्यभिचार और तलाक रोज-ब-रोज हमारे सामने इस बातका सबूत पेश

कर रहे है कि एकनिष्ठ विवाह आदिम प्रकारके स्त्री-पुरुष सम्बन्धोके ऊपर अपनी सत्ता अभी स्थापित नही कर सका है। कभी कर सकेगा ?

इस बीच हमे एक और उपायकी योग्यतापर विचार कर लेना होगा। वह है तो बहुत पुरानी चीज, पर पहले वह लुक-छिपकर अपना काम करती थी, इधर थोडे दिनोसे बिना घूघट, बुरकेके सामने आने लगा है। उसका नाम है 'जनन-निरोध' (बर्थ-कट्रोल); और अर्थ है ऐसी दवाओ और बाह्य साधनोका व्यवहार जो गर्भ-स्थिति न होने दे। गर्भ-धारणमे स्त्रीपर तो बोझ पडता ही है, पुरुषको भी खासकर भले स्वभावके पुरुषको, उसके कारण काफी अरसे तक सयम रखना पडता है। जनन-निरोध या गर्भ-निरोध सयमको अनावश्यक बना देता और इसका सुभीता कर देता है कि जबतक वासना या शरीर ही शिथिल न हो जाय तबतक हम मनमाना सभोग-सुख भोगते रहे। इसका असर विवाह-सम्बन्धके बाहर भी पडता है। यह अनियमित, अवैध और अफलजनक सभोगका दरवाजा खोल देता है, जो आधुनिक उद्योग-धधो, समाज-शास्त्र और राजनीति सबकी दृष्टिसे खतरोसे भरी हुई बात है। यहा इन बातोकी विस्तारसे चर्चा नही की जा सकती। इतना ही कहना काफी है कि गर्भ-निरोधके साधनोसे विवाहित-अविवाहित दोनो तरहके स्त्री-पुरुषोके लिए अति सभोगका सुभीता हो जाता है। और ऊपर मैने शरीर-शास्त्रकी जो दलीले दी है वे सही हो तो इससे व्यक्ति और समाज दोनोकी हानि होना अनिवार्य है।

उपसंहार

किसान खेतमे जो बीज बिखेरता है वे सभी उगते नही। वैसे ही यह निबध भी कुछ ऐसे लोगोंके हाथमे पडेगा जो इसे घृणाकी दृष्टिसे देखेगे। कुछ तो अयोग्यता या निरे आलस्यसे इसे समझेगे ही नही, कुछके लिए इसमें प्रकट किये हुए विचार बिलकुल नये होगे और उनके मानसमे वे विरोध या क्रोधकी भावना भी जगा सकते है। पर थोड़े-से-लोग ऐसे भी अवश्य

निकलेंगे जिन्हे वह सच्चा और कामका जान पड़े। मगर उनके मनमे भी शका उठेगी। उनमे जो सबसे भोले होगे वे कहेगे—"आपकी दलीलोके अनुसार तो संभोग कभी होना ही नही चाहिए। तब तो दुनियामे जीवधारी रह ही न जायगे। इसलिए आपकी राय गलत होनी ही चाहिए।"मेरा जवाब यह है कि मेरे पास कोई ऐसा खतरनाक अताई नुस्खा नही है। जनन-निरोध जन्म रोकनेका सबसे प्रभावकर उपाय है और सयम या ब्रह्मचर्यकी तुलनामे बहुत जल्दी दुनियाको आदमियोसे खाली कर देगा। मैं जो बात चाहता हू वह तो बहुत सीधी है। अज्ञान और असंयत भोगके मुकाबलेमे दर्शन और विज्ञानकी कुछ सचाइयोको खड़ा करके मैं अपने युगके स्त्री-पुरुष-सम्बन्धकी शुद्धिमें सहायता करना चाहता हू।

: २ :

ब्रह्मचर्य-१

ब्रह्मचर्य–१

: १ :

ब्रह्मचर्य

हमारे व्रतोमें तीसरा ब्रह्मचर्य-व्रत है। वास्तवमे देखनेपर तो दूसरे सभी व्रत एक सत्यके व्रतमेसे ही उत्पन्न होते है और उसीके लिए उनका अस्तित्व है। जिस मनुष्यने सत्यको वरा है, उसीकी उपासना करता है, वह दूसरी किसी भी वस्तुकी आराधना करे तो व्यभिचारी बन जाता है। फिर विकारकी आराधनाकी तो बात ही कहा उठ सकती है? जिसकी कुल प्रवृत्तिया सत्यके दर्शनके लिए है, वह सतानोत्पत्तिके काममे या घर-गिरस्ती चलानेके झगडेमे पड ही कैसे सकता है? भोग-विलास द्वारा किसीको सत्य प्राप्त होनेकी आज तक हमारे सामने एक भी मिसाल नही है।

अथवा अहिसाके पालनको ले तो उसका पूरा पालन ब्रह्मचर्यके बिना असाध्य है। अहिसा अर्थात् सर्वव्यापी प्रेम। जहा पुरुषने एक स्त्रीको या स्त्रीने एक पुरुषको अपना प्रेम सौप दिया वहा उसके पास दूसरेके लिए क्या बच रहा? इसका अर्थ ही यह हुआ कि 'हम दो पहले और दूसरे सब बादको।' पतिव्रता स्त्री पुरुषके लिए और पत्नीव्रती पुरुष स्त्रीके लिए सर्वस्व होमनेको तैयार होगा। अत. यह स्पष्ट है कि उससे सर्वव्यापी प्रेमका पालन नही हो सकता। वह सारी सृष्टिको अपना कुटुम्ब नही बना सकता, क्योकि उसके पास अपना माना हुआ एक कुटुम्ब मौजूद है या तैयार हो रहा है। उसकी जितनी वृद्धि, उतना ही सर्वव्यापी प्रेममे विक्षेप होता है। इसके उदाहरण हम सारे संसारमें देख रहे है। इसलिए अहिसा

व्रतका पालन करनेवालेसे विवाह नही वन सकता, विवाहके वाहरके विकारो की तो वात ही क्या ?

फिर जो विवाह कर चुके है उनकी क्या गति होगी ? उन्हे सत्यकी प्राप्ति कभी न होगी ? वे कभी सर्वार्पण नही कर सकते ? हमने तो इसका रास्ता निकाल ही रखा है—विवाहितका अविवाहितकी भाति हो जाना। इस दिशामे इससे वढकर मैने दूसरी वात नही देखी। इस स्थितिका मजा जिसने चखा है वह गवाही दे सकता है। आज तो इस प्रयोगकी सफलता सिद्ध हुई कही जा सकती है। विवाहित स्त्री-पुरुष एक-दूसरेको भाई-वहन मानने लग जाय तो सारे झगडोसे वे मुक्त हो जाते है। ससार-भरकी सारी स्त्रिया वहने है, माताए है, लडकिया है—यह विचार ही मनुष्यको एकदम ऊचे ले जानेवाला, वधनमेसे मुक्ति देनेवाला हो जाता है। इसमे पति-पत्नी कुछ खोते नही, वरन् अपनी पूजीमे वृद्धि करते है, कुटुम्ब वढाते है, विकार-रूपी मैल निकलनेसे प्रेम भी वढता है। विकारोके जानेसे एक-दूसरेकी सेवा अधिक अच्छी हो सकती है, एक-दूसरेके बीच कलहके अवसर कम होते है। जहा स्वार्थी एकागी प्रेम है, वहा कलहके लिए ज्यादा गुजाइश रहती है।

इस प्रधान विचारके समझ लेने और उसके हृदयमे वैठ जानेके वाद ब्रह्मचर्यसे होनेवाले शारीरिक लाभ, वीर्य-लाभ आदि वहुत गौण हो जाते है। जान-वूझकर भोग-विलासके लिए वीर्य खोना और शरीरको निचोडना कितनी वडी मूर्खता है ? वीर्यका उपयोग दोनोकी शारीरिक और मानसिक शक्तिको वढानेके लिए है। उसका विषय-भोगमे उपयोग करना यह उसका अति दुरुपयोग है। इस दुरुपयोगके कारण वह वहुतेरे रोगोकी जड वन जाता है।

ऐसे ब्रह्मचर्यका पालन मन, वचन और कर्म तीनोसे होना चाहिए। व्रत-मात्रके विषयमे यही वात समझनी चाहिए। हम गीतामे पढते है कि जो शरीरको तो वशमे रखता हुआ जान पडता है, पर मनसे विकारका पोषण किया करता है, वह मूढ मिथ्याचारी है। सवका यह अनुभव है कि मनको विकारी रहने देकर शरीरको दवानेकी कोशिश करनेमे हानि ही है। जहा

मन होता है वहा शरीर अतमे घिसटाये विना नही रहता। यहा एक भेद समझ लेना जरूरी है। मनको विकारवश होने देना एक बात है; मनका अपने-आप, अनिच्छासे, बलात्कारसे विकारको प्राप्त हो जाना या होते रहना दूसरी बात है। इस विकारमे यदि हम सहायक न बने तो अतमे जीत ही है। हमारा प्रतिपलका यह अनुभव है कि शरीर काबूमे रहता है, पर मन नही रहता। इसलिए शरीरको तो तुरन्त ही वशमे करके मनको वशमे करनेका हम सतत प्रयत्न करते रहे तो हमने अपना कर्तव्य पालन कर लिया। हमारे, मनके अधीन होते ही, शरीर और मनमे विरोध खडा हो जाता है, मिथ्याचारका आरम्भ हो जाता है। पर जहा तक मनोविकारको दबाते ही रहते है वहा तक दोनो साथ जानेवाले है, ऐसा कह सकते है।

इस ब्रह्मचर्यका पालन बहुत कठिन, करीब-करीब असम्भव माना गया है। इसके कारणकी खोज करनेसे मालूम होता है कि ब्रह्मचर्यको सकुचित अर्थमे लिया गया है। जननेद्रिय-विकारके निरोध-भरको ही ब्रह्मचर्यका पालन मान लिया गया है। मेरे खयालमे यह व्याख्या अधूरी और गलत है। विषय-मात्रका निरोध ही ब्रह्मचर्य है। निस्सदेह, जो अन्य इद्रियोको जहा-तहा भटकने देकर एक ही इद्रियको रोकनेका प्रयत्न करता है, वह निष्फल प्रयत्न करता है। कानसे विकारी बाते सुनना, आखसे विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तु देखना, जीभसे विकारोत्तेजक वस्तुका स्वाद लेना, हाथसे

की—शोधमे चर्या, अर्थात् तत्सबधी आचार। इस मूल अर्थमेसे सर्वेन्द्रिय-सयम-रूपी विशेष अर्थ निकलता है । केवल जननेंद्रिय-सयम-रूपी अधूरे अर्थको तो हमे भूल जाना चाहिए ।

ब्रह्मचर्यकी व्याख्या

(मादरण मुकामपर एक अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते हुए लोगोंके अनुरोधसे गाधीजीने ब्रह्मचर्यपर लम्बा प्रवचन किया। उसका सार यहा दिया जाता है।—स०)

"आप चाहते है कि ब्रह्मचर्यके विषयपर कुछ कहू। कितने ही विषय ऐसे है जिनपर मै 'नवजीवन' मे प्रसगोपान्त ही लिखता हू। और उनपर व्याख्यान तो शायद ही देता हू; क्योकि यह विषय ही ऐसा है कि कहकर नही समझाया जा सकता। आप तो मामूली ब्रह्मचर्यके विषयमे सुनना चाहते है। 'समस्त इन्द्रियोका संयम', विस्तृत व्याख्या जिस ब्रह्मचर्यकी है, उसके विषयमे नही। इस साधारण ब्रह्मचर्यको भी शास्त्रकारोने बडा कठिन बताया है। यह बात ९९ फीसदी सच है, १ फीसदी इसमे कमी है। इसका पालन इसलिए कठिन मालूम होता है कि हम, दूसरी इन्द्रियोको सयममे नही रखते। उनमे मुख्य है रसनेन्द्रिय। जो अपनी जिह्वाको कब्जेमे रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणि-शास्त्रके ज्ञाताओका कथन है कि पशु जिस दर्जेतक ब्रह्मचर्यका पालन करता है उस दर्जेतक मनुष्य नही करता। यह सच है। इसका कारण देखनेपर मालूम होगा कि पशु अपनी जिह्वेन्द्रियपर पूरा-पूरा निग्रह रखते है—इच्छापूर्वक नही, स्वभावत. ही। केवल चारेपर अपनी गुजर करते है—सो भी महज पेट भरने लायक ही खाते है। वे जिन्दगीके लिए खाते है, खानेके लिए जीते नही है; पर हम तो इसके विलकुल विपरीत है। मां बच्चेको तरह-तरहके सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालकके साथ प्रेम दिखानेका यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए हम उन

चीजोमे स्वाद डालते नही, वल्कि ले लेते है। स्वाद तो रहता है भूखमे। भूखके वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूखे आदमीको लड्डू भी फीके और अस्वादु मालूम होगे, पर हम तो अनेक चीजोको खा-खाकर पेटको ठसाठस भरते है और फिर कहते है कि ब्रह्मचर्यका पालन नही हो पाता। जो आखे ईश्वरने हमे देखनेके लिए दी है उनको हम मलिन करते है ओर देखनेकी वस्तुओको देखना नही सीखते। 'माताको क्यो गायत्री न पढना चाहिए और वालकोको वह क्यो गायत्री सिखावे ?' इसकी छान-बीन करनेकी अपेक्षा उसके तत्त्व—सूर्योपासनाको समझकर सूर्योपासना करावे तो क्या अच्छा हो। सूर्यकी उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनो कर सकते है। यह तो मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया है। इस उपासनाके मानी क्या है ? अपना सिर ऊचा रखकर, सूर्य-नारायणके दर्शन करके, आखकी शुद्धि करना। गायत्रीके रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होने कहा कि सूर्योदयमे जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है वह और कही नही दिखाई दे सकती। ईश्वरके जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नही मिल सकता और आकाशसे वढकर भव्य रगभूमि कही नही मिल सकती। पर कौन माता आज वालककी आखे धोकर उसे आकाश-दर्शन कराती है ? वल्कि माताके भावोमे तो अनेक प्रपच रहते है। वडे-वडे घरोमे जो शिक्षा मिलती है उसके फलस्वरूप तो लडका शायद वडा अधिकारी होगा, पर इस वातका कौन विचार करता है कि घरमे जाने-अनजाने जो शिक्षा वच्चोको मिलती है उससे कितनी वाते वह ग्रहण कर लेता है! मा-वाप हमारे शरीरको ढकते है, सजाते है, पर इसमे कही शोभा वढ सकती है ? कपडे वदनको ढकनेके लिए है, सर्दी-गर्मीसे रक्षा करनेके लिए है, सजानेके लिए नही। जाडेसे ठिठुरते हुए लडकेको जब हम अगीठीके पास धकेलेगे, अथवा मुहल्लेमे खेलने-कूदने भेज देगे, अथवा खेतमे कामपर छोड देगे, तभी उसका शरीर वज्रकी तरह होगा। जिसने ब्रह्मचर्यका पालन किया है उसका शरीर वज्रकी तरह जरूर होना चाहिए। हम तो वच्चोके शरीरका नाश कर डालते है। हम उसे जो घर मे रखकर गरमाना चाहते है उससे तो उसकी चमडीमे इस तरहकी

गरमी आती है जिसे हम छाजनकी उपमा दे सकते है। हमने शरीरको दुलराकर उसे बिगाड डाला है।

यह तो हुई कपडेकी बात । फिर घरमे तरह-तरहकी बाते करके हम उनके मनपर बुरा प्रभाव डालते है। उसकी शादीकी बाते किया करते है, और इसी किस्मकी चीज़े और दृश्य भी उसे दिखाये जाते है। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज जगली ही क्यो न हो गये ? मर्यादा तोड़नेके अनेक साधनोके होते हुए भी मर्यादाकी रक्षा हो सकती है। ईश्वरने मनुष्यकी रचना इस तरहसे की है कि पतनके अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। ऐसी उसकी लीला गहन है। यदि ब्रह्मचर्यके रास्तेसे ये विघ्न हम दूर कर दे तो उसका पालन बहुत आसान हो जाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनियाके साथ शारीरिक मुकाबला करना चाहते है। उसके दो रास्ते है। एक आसुरी और दूसरा दैवी—आसुरी मार्ग है—शरीर-बल प्राप्त करनेके लिए हर किस्मके उपायोसे काम लेना, हर तरहकी चीजे खाना, शारीरिक मुकाबले करना, गो-मास खाना इत्यादि। मेरे लडकपनमे मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मासाहार हमे अवश्य करना चाहिए, नही तो अग्रेज़ोकी तरह हट्टे-कट्टे हम न हो सकेगे। जापानको भी जब दूसरे देशके साथ मुकावला करनेका समय आया तब वहा गो-मास-भक्षणको स्थान मिला। सो यदि आसुरी प्रकारसे शरीरको तैयार करनेकी इच्छा हो तो इन चीजोका सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधनसे शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तव मुझे अपने-पर दया आती है। इस अभिनन्दन-पत्रमे मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। मो मुझे कहना चाहिए कि जिन्होने इस अभिनन्दन-पत्रका मजमून तैयार किया है उन्हे पता नही है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी किसका नाम है ? और जिसके वाल-बच्चे हुए है उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते है ? नैष्ठिक ब्रह्मचारीको न तो कभी वुखार आता है, न कभी सिर दर्द करता है, न कभी खासी होती है और न कभी अपेडिसाइटिस होता है। डॉक्टर लोग

कहते हैं कि नारगीका बीज आतमे रह जानेसे भी अपेंडिसाइटिस होता है, परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और निरोगी होता है उसमे ये बीज टिक ही नही सकते। जव आते शिथिल पड जाती हैं तब वे ऐसी चीज़ोको अपने-आप बाहर नही निकाल सकती। मेरी भी आते शिथिल हो गई होगी। इसीसे मैं ऐसी कोई चीज़ हज़म न कर सका हूगा। बच्चे ऐसी अनेक चीज़े खा जाते हैं। माता इसका कहा ध्यान रख सकती है? पर उसकी आतमे इतनी शक्ति स्वाभाविक तौरपर ही होती है। इसलिए मैं चाहता हू कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके पालनका आरोपण करके कोई मिथ्याचारी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका तेज तो मुझसे अनेक गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नही। हा, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हू। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभवकी कुछ बूदे पेश की है जो ब्रह्मचर्यकी सीमा बताते है। ब्रह्मचारी रहनेका अर्थ यह नही कि मै स्त्रीको स्पर्श न करू, अपनी वहनका स्पर्श न करू, पर ब्रह्मचारी होनेका अर्थ यह है कि स्त्रीका स्पर्श करनेसे किसी प्रकारका विकार न उत्पन्न हो, जिस तरह कि कागजको स्पर्श करनेसे नही होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्यके कारण मुझे हिचकना पडे तो वह ब्रह्मचर्य कौडीका है। जिस निर्विकार दशाका अनुभव जब हम किसी बडी सुन्दरी युवतीका स्पर्श करके कर सके तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हो कि बालक ऐसे ब्रह्मचर्यको प्राप्त करे तो इसका अभ्यास-क्रम आप नही बना सकते, मुझ जैसा अधूरा भी क्यो न हो, पर ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम सन्यासाश्रमसे भी बढकर है, पर उसे हमने गिरा दिया। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगडा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगडा है और सन्यासका तो नाम भी नही रह गया है। ऐसी हमारी असहाय अवस्था भी हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है कि उसका अनुकरण करके तो आप पाच सौ वर्षों तक भी पठानोका मुकाबला न कर सकेंगे। दैवी-मार्गका अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठानोका मुकाबला हो सकता

है; क्योकि दैवी साधनसे आवश्यक मानसिक परिवर्त्तन एक क्षणमे हो सकता है, पर शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते है। इस दैवी मार्गका अनुसरण तभी हमसे होगा जब हमारे पल्ले पूर्व-जन्मका पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेगे।

हिन्दी नवजीवन,
२६ जनवरी १९२५

: ३ :

एक अस्वाभाविक पिता

एक नवयुवकने मुझे एक पत्र भेजा है जिसका सार ही यहा दिया जा सकता है। वह निम्न प्रकार है

'मै एक विवाहित पुरुष हू। मै विदेश गया हुआ था। मेरा एक मित्र था, जिसपर मुझे और मेरे मा-बापको पूरा विश्वास था। मेरी अनुपस्थितिमे उसने मेरी पत्नीको फुसला लिया, जिससे अब वह गर्भवती भी हो गई है। अब मेरे पिता इस बातपर जोर देते है कि मेरी पत्नी गर्भको गिरा दे, नही तो वह कहते है, खानदानकी बदनामी होगी। मुझे ऐसा लगता है कि यह तो ठीक नही होगा। बेचारी स्त्री पश्चात्तापके मारे मरी जा रही है। न तो उसे खानेकी सुध है, न पीनेकी। जब देखो तब रोती ही रहती है। क्या आप कृपा करके बतलायेगे कि इस हालतमे मेरा क्या फर्ज़ है?'

यह पत्र मैने बडी हिचकिचाहटके साथ प्रकाशित किया है। जैसा कि हरेक जानता है, समाज मे ऐसी घटनाए कभी-कदास ही नही होती। इसलिए संयमके साथ सार्वजनिक-रूपसे इस प्रश्नकी चर्चा करना मुझे असगत नही मालूम पडता।

मुझे तो दिनके प्रकाशकी तरह यह स्पष्ट मालूम पडता है कि गर्भ गिराना जुर्म होगा। इस बेचारी स्त्रीने जो असावधानी की है, वैसी असावधानी तो अनगिनत पति करते है, लेकिन उनको कभी कोई कुछ नही कहता। समाज उन्हे माफ ही नही करता, बल्कि उनकी निन्दा भी नही करता। स्त्री तो अपनी शर्म को उस तरह छिपा भी नही सकती, जिस तरह कि पुरुष अपने पापको सफलताके साथ छिपा सकता है।

यह स्त्री तो दयाकी पात्र है। पतिका यह पवित्र कर्तव्य होगा कि वह अपने पिताकी सलाहको न माने और बच्चेकी परवरिश अपने भरसक

पूरे लाड़-प्यारसे करे। वह अपनी पत्नीके साथ रहना जारी रखे या नही, यह एक टेढा सवाल है। परिस्थितिया ऐसी भी हो सकती है जिनके कारण उसे उससे अलग होना पडे; लेकिन उस हालतमे वह इस बातके लिए वाध्य होगा कि उसकी परवरिश तथा शिक्षाकी व्यवस्था करे और शुद्ध मनसे हो तो उसे ग्रहण करनेमे भी मुझे कोई गलती नही मालूम पडती। यही नही; वल्कि मै तो ऐसी स्थितिकी भी कल्पना कर सकता हू जव पत्नीके अपनी गलतीके लिए पूरी तरह पश्चात्ताप करके उससे मुक्त हो जानेपर पति का यह पुनीत कर्त्तव्य होगा कि वह उसको फिरसे ग्रहण कर ले।

यग इडिया,
३ जनवरी १९२९

: ४ :

विद्यार्थियोंकी दशा

एक वहन, जिन्हे अपनी ज़िम्मेदारीका पूरा खयाल है, लिखती है :

"जबतक हमारे बच्चे वीर्यकी रक्षा करना नही सीखते, तबतक हिन्दुस्तानको जैसे आदमियोकी जरूरत है, वैसे कभी नही मिल सकते। हिन्दुस्तानमे कोई १६ वर्षो तक, लडकोके स्कूलोका भार मुझपर रहा है। यह देखकर रुलाई आती है कि हमारे बहुतसे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई लडके स्कूलकी पढाई शुरू करते है जोश, ताकत और उम्मीदोसे भरकर, लेकिन खत्म करते है शरीरसे निकम्मे बनकर। गिनकर सैकडो बार मैंने देखा है कि इसके कारणका पता ठेठ वीर्य-नाश, अप्राकृतिक कर्म या वाल-विवाहमे ही मिलता है। अभी आज मेरे पास ४२ लडकोके नाम है। ये अप्राकृतिक कर्मके दोषी है और इनमेसे एक भी १३ सालसे अधिक का नही है। शिक्षक और माता-पिता ऐसी हालतका होना गलत मानेंगे, लेकिन अगर सही तरीकोसे काम लिया जाय तो व्याधिका पता तुरन्त ही लग जायगा और करीव-करीव हमेशा ही लडके अपना गुनाह कवूल कर लेगे। इनमेसे अधिक लडके कहते है कि वह ऐव उन्होने स्याने आदमियो, कभी-कभी अपने सम्वन्धियोसे ही सीखा है।"

यह कोई खयाली तसवीर नही है। यह वह सचाई है, जिसे जानने वाले स्कूलोके कितने-एक मास्टर दवा जाते है। मै इसे पहलेसे जानता था। आज कोई आठ साल हुए, दिल्लीके किसी स्कूलमास्टरने मेरा ध्यान इस ओर दिलाया था। इसके इलाजके वारेमे अवतक खानगीमे ही मै वाते करता पाया हू और चुप रहा हू। यह दोष सिर्फ हिन्दुस्तान-भरमे ही परिमित नही है, मगर वाल-विवाहके पापके कारण हमपर इसका और भी अधिक मारक प्रभाव पडता है। इस वहुत ही नाजुक और मुश्किल

सवालकी आम चर्चा करना जरूरी हो गया है; क्योकि अबसे कुछ साल पहले जिस स्वच्छन्दतासे स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी बातोपर विचार करना गैर-मुमकिन था, आज उसके साथ हम प्रतिष्ठित समाचार-पत्रोमे भी इस-पर बहस होते देखते है ।

सभोगको देह और दिमागकी तन्दुरुस्तीके लिए फायदेमन्द, नैतिक, जरूरी और स्वाभाविक समझनेकी प्रथाने इस पापकी वृद्धि की है । हमारे सुशिक्षित पुरुषोके गर्भ-निरोधक साधनोके स्वच्छन्द व्यवहारके समर्थनने इस काम-वासनाके कीडोकी वृद्धिके लिए समुचित वातावरण पैदा कर दिया है । कमसिन लडकोके नाजुक और सग्राहक दिमाग ऐसे नतीजे बहुत जल्द निकाल लेते है कि उनकी अधार्मिक इच्छाए अच्छी और उचित है । इस मारक पापके प्रति माता-पिता और शिक्षक, बहुत ही बुरी, बल्कि पापके बराबर, उदासीनता और सहनशीलता दिखलाते है । मेरी समझमे, सामाजिक वातावरणको पूरा-पूरा शुद्ध बनाये बिना इस गुनाह-को और कुछ नही रोक सकता, विषय-भोगके खयालोसे भरे हुए वातावरणका अज्ञात और सूक्ष्म प्रभाव देशके विद्यार्थियोके मनपर बिना पडे रह ही नही सकता । नागरिक जीवनकी परिस्थिति, साहित्य, नाटक, सिनेमा, घरकी रचना, कितने एक सामाजिक रिवाज, सबका एक ही असर होता है, वह है काम-वासनाकी वृद्धि । छोटे लडकोके लिए, जिन्हे अपनी इस पाशविक प्रवृत्तिका पता लग गया है, इसके जोरको रोकना गैर-मुमकिन है । ऊपरी इलाजोसे काम नही चलनेका । यदि नई पीढीके प्रति वे अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहते है तो बडोको पहले अपनेसे ही यह सुधार शुरू करना होगा ।

हरिजन सेवक,
३ अप्रेल १९३३

: ५ :

बढ़ता हुआ दुराचार

सनातन धर्म कालेज, लाहौरके प्रिसिपल लिखते है

"इसके साथ मै कटिग और विज्ञप्तिया वगैरह भेज रहा हू, उन्हे देखनेकी मै आपसे प्रार्थना करता हू। इन कागजोसे ही आपको सारी बातका पता चल जायगा। यहा पजाबमे 'युवक हितकारी सघ' बहुत उपयोगी काम कर रहा है। विद्वत्-समाज एव अधिकारी-वर्गका ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ है, और बालकोके सुसस्कृत माता-पिताओकी भी दिलचस्पी सघने प्राप्त की है। विहार के पण्डित सीतारामदासजी इस आन्दोलनके प्रणेता है, और इस आन्दोलनके आश्रयदाताओमे यहाके अनेक प्रतिष्ठित सज्जनोके नाम गिनाये जा सकते है।

"इसमे तनिक भी सन्देह नही कि कोमल वयके बालकोको फसानेका यह दुराचार भारतके दूसरे भागोकी अपेक्षा इधर पजाब और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्तमे ज्यादा है।

"क्या आप कृपा कर 'हरिजन' मे अथवा किसी दूसरे अखबबारमें लेख या पत्र लिखकर इस बुराईकी तरफ देशका ध्यान आकर्षित करेगे?"

इस अत्यन्त नाजुक प्रश्नके सम्बन्धमे बहुत दिन हुए कि युवकसघके मन्त्रीने मुझे लिखा था। उनका पत्र आनेपर मैने डॉ० गोपीचन्दके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया, और उनसे यह मालूम हुआ कि सघके मत्रीने जो बाते अपने पत्रमे लिखी है, वे सब सच्ची है, लेकिन मुझे यह स्पष्ट नही सूझ रहा था कि इस प्रश्नकी क्या 'हरिजन' मे या किसी दूसरे पत्रमे चर्चा करू। इस दुराचारका मुझे पता था, मगर मुझे इस बातका पता नही था कि अखबारोमे इसकी चर्चा करनेसे कोई लाभ हो सकेगा या नही।

यह विश्वास अव भी नही है। किन्तु कालेजके प्रिंसिपल साहवने जो प्रार्थना की है उसकी मै अवहेलना नही करना चाहता।

यह दुराचार नया नही है। यह वहुत दूर-दूरतक फैला हुआ है; चूकि उसे गुप्त रखा जाता है इसलिए वह आसानीसे पकड़मे नही आ सकता। जहा विलासपूर्ण जीवन होगा वही यह दुराचार होगा। प्रिंसिपल साहवके वताये हुए किस्सेसे तो यह प्रगट होता है कि अध्यापक ही अपने विद्यार्थियोको भ्रष्ट करनेके दोषी है। वारी जव खुद ही खेतको चर जाय तो फिर किससे रखवारीकी आशा करे? वाइविलमे कहा है—"नौन जव खुद अलौना हो जाय तव उसे कौन चीज नमकीन वना सकती है?"

यह प्रश्न ऐसा है कि इसे न तो कोई जाच-कमेटी ही हल कर सकती है, न सरकार ही। यह तो एक नैतिक सुधारका काम है। माता-पिताओके दिलमे उनके उत्तरदायित्वका भाव पैदा करना चाहिए। विद्यार्थियोको शुद्ध स्वच्छ रहन-सहनके निकट ससर्गमे लाना चाहिए। सदाचार और निर्विकार जीवन ही सच्ची शिक्षाका आधार-स्तम्भ है, इस विचारका गम्भीरताके साथ प्रचार करना चाहिए। शिक्षण-सस्थाओके ट्रस्टियोको अध्यापकोके चुनावमे वहुत ही खवरदारी रखनी चाहिए और अध्यापकोको चुननेके वाद भी यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका आचरण ठीक है या नही? ये तो मैने थोडे-से उपाय वतलाये है। इन उपायोके सहारे यह भयकर दुराचार निर्मूल न हो तो कम-से-कम कावूमे तो आ ही सकता है।

हरिजन सेवक,
३ मई १९३५

: ६ :

नम्रताकी आवश्यकता

बगालमे कार्यकर्त्ताओसे बातचीत करते हुए एक नवयुवकसे मेरा सावका पडा, जिसने कहा कि लोग मुझे इसलिए भी माने कि मै ब्रह्मचारी हू। उसने यह बात इस तरह कही और ऐसे यकीनके साथ कही कि मै देखता रह गया। मैने मनमे कहा कि यह उन विषयोकी बाते करता है जिनका ज्ञान इसे बहुत थोडा है। उसके साथियोने उसकी बात-का खण्डन किया। और जब मैने उससे जिरह करनी शुरू की तब तो खुद उसने भी कबूल किया कि हा, मेरा दावा नही टिक सकता। जो शख्स शारीरिक पाप चाहे न करता हो, पर मानसिक पाप ही करता हो, वह ब्रह्मचारी नही। जो व्यक्ति परम रूपवती रमणीको देखकर अविचल नही रह सकता वह ब्रह्मचारी नही। जो केवल आवश्यकताके वशीभूत होकर अपने शरीरको अपने वशमे रखता है, वह करता तो अच्छी बात है, पर वह ब्रह्मचारी नही। हमे अनुचित अप्रासगिक प्रयोग करके पवित्र शब्दोका मान घटाना न चाहिए। वास्तविक ब्रह्मचर्यका फल तो अद्भुत होता है और वह तो पहचाना भी जा सकता है। इस गुणका पालन करना कठिन है। प्रयत्न तो बहुतेरे लोग करते है, पर सफल विरले ही होते है। जो लोग गेरुए कपडे पहनकर सन्यासियोके वेशमे देशमे घूमते-फिरते है, वे अक्सर बाज़ारके मामूली आदमीसे ज्यादा ब्रह्मचारी नही होते। फर्क इतना ही है कि मामूली आदमी अक्सर उसकी डीग नही हाकता और इसलिए बेहतर होता है। वह इस बातपर सन्तुष्ट रहता है कि परमात्मा मेरी आजमाइशको, मेरे प्रलोभनोको तथा मेरे विजयोत्सव और भगीरथ प्रयत्नके होते हुए भी, हो जानेवाले पतनको जानता है। यदि दुनिया उसके पतनको देखे और उससे उसे तोले तो भी वह सन्तुष्ट रहता

है। अपनी सफलताको वह कंजूसके धनकी तरह छिपाकर रखता है। वह इतना विनयी होता है कि उसे प्रकट नही करता। ऐसा मनुष्य उद्धारकी आशा रख सकता है; परन्तु वह आधा संन्यासी, जो कि संयमका ककहरा भी नही जानता, यह आशा नही रख सकता। वे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जो कि सन्यासीका वेष नही वनाते; पर जो अपने त्याग और ब्रह्मचर्यका ढिढोरा पीटते फिरते है और दोनोको सस्ता वताते है तथा अपनेको और अपने सेवा-कार्यको वदनाम करते है, उनसे खतरा समझिए।

जब कि मैने अपने सावरमती वाले आश्रमके लिए नियम वनाए तो उन्हे मित्रोके पास सलाह और समालोचनाके लिए भेजा। एक प्रति स्वर्गीय सर गुरुदास वनर्जीको भी भेजी थी। उस प्रतिकी पहुच लिखते हुए उन्होने सलाह दी कि नियमो मे उल्लिखित व्रतोमे नम्रताका भी एक व्रत होना चाहिए। अपने पत्रमे उन्होने कहा था कि आजकलके नवयुवकोमे नम्रताका अभाव पाया जाता है। मैने उनसे कहा कि मै आपकी सलाहके मूल्यको तो मानता हू और नम्रताकी आवश्यकताको भी सोलहो-आना मानता हू, पर एक व्रतमे उसको स्थान देना उसके गौरवको कम कर देना है। यह वात तो हमे गृहीत ही करके चलना चाहिए कि जो लोग अहिसा, ब्रह्मचर्यका पालन करेगे वे अवश्य ही नम्र रहेगे। नम्र-हीन सत्य एक उद्धत हास्य-चित्र होगा। जो सत्यका पालन करना चाहता है वह जानता है कि वह कितनी कठिन वात है। दुनिया उसकी विजयपर तो तालिया वजायगी, पर वह उसके पतनका हाल वहुत कम जानती है। सत्य-परायण मनुष्य वडा आत्म-ताडन करने वाला होता है। उसे नम्र वननेकी आवश्यकता है। जो शख्स सारे ससारके साथ, यहातक कि उसके भी साथ जो उसे अपना शत्रु कहता हो, प्रेम करना चाहता है वह जानता है कि केवल अपने वलपर ऐसा करना किस तरह असम्भव है। जवतक वह अपनेको एक क्षुद्र रज-कण न समझने लगेगा तवतक वह अहिसाके तत्त्वको नही ग्रहण कर सकता। जिस प्रकार उसके प्रेमकी मात्रा वढती जाती है उसी प्रकार यदि उसकी नम्रताकी मात्रा न वढी तो वह किसी कामका नही। जो मनुष्य अपनी आखोमे तेज लाना चाहता है,

जो स्त्री-मात्रको अपनी सगी माता या बहन मानता है उसे तो रज-कणसे भी क्षुद्र होना पडेगा। उसे एक खाईके किनारे समझिए। ज़रा ही मुह इधर-उधर हुआ कि गिरा। वह अपने मनसे भी अपने गुणोकी काना-फूसी करनेका साहस नही कर सकता, क्योकि वह नही जानता कि इसी अगले क्षणमे क्या होने वाला है? उसके लिए 'अभिमान विनाशके पहले जाता है और मगरूरी पतनके पहले।' गीतामे सच कहा है—

विषया विनवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्ज्यं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।

और जबतक मनुष्यके मनमे अहभाव मौजूद है तबतक उसे ईश्वरके दर्शन नही हो सकते। यदि वह ईश्वरमे मिलना चाहता हो तो उसे शून्यवत् ही जानना चाहिए। इस सघर्ष-पूर्ण जगत्मे कौन कहनेका साहस कर सकता है—"मैने विजय प्राप्त की?" हम नही, ईश्वर हमे विजय प्राप्त कराता है।

हमे इन गुणोका मूल्य ऐसा कम न कर देना चाहिए जिससे कि हम सब उनका दावा कर सके। जो बात भौतिक विषयमे सत्य है वही आध्यात्मिक विषयमे भी सत्य है। यदि एक सासारिक सग्राममे विजय पानेके लिए योरोपने पिछले युद्धमे, जो कि स्वय ही एक नाशवान् वस्तु है, कितने ही करोड लोगोका वलिदान कर दिया, तब यदि आध्यात्मिक युद्धमे करोडो लोगोको इसके प्रयत्नमे मिट जाना पडे, जिससे कि ससारके सामने एक पूर्ण उदाहरण रह जाय तो क्या आश्चर्य है? यह हमारे आधीन है कि हम असीम नम्रताके साथ इस वातका उद्योग करे।

इन उच्च गुणोकी प्राप्ति ही उनके लिए परिश्रमका पुरस्कार है। जो उसपर व्यापार चलाता है वह अपनी आत्माका नाश करता है। सद्गुण कोई व्यापार करनेकी चीज़ नही है। मेरा सत्य, मेरी अहिंसा, मेरा ब्रह्मचर्य, ये मेरे और मेरे कर्त्तासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय है। वे बिक्रीकी चीजे नही है। जो युवक उनकी तिजारत करनेका साहस करेगा

वह अपना ही नाश कर बैठेगा। ससारके पास कोई बाट ऐसा नही है, कोई साधन नही है, जिससे कि इन बातोकी तोल की जा सके। छान-बीन और विश्लेषण की वहा गुज़र नही। इसलिए हम कार्यकर्त्ताओको चाहिए कि हम उन्हे केवल अपने शुद्धीकरणके लिए प्राप्त करे। हम दुनियासे कह दे कि वह हमारे कार्योसे हमारी पहचान करे। जो सस्था या आश्रम लोगोसे सहायता पानेका दावा करता हो, उसका लक्ष्य भौतिक-सासारिक होना चाहिए जैसे—कोई अस्पताल, कोई पाठशाला, कोई कताई और खादी-विभाग। सर्वसाधारणको इन कामोकी योग्यता परखनेका अधिकार है और यदि वे उन्हे पसद करे तो उनकी सहायता करे। शर्ते स्पष्ट है। व्यवस्थापकोमे नेक-नीयती और योग्यता होनी चाहिए। वह प्रामाणिक मनुष्य जो शिक्षा-शास्त्रसे अपरिचित हो, शिक्षकके रूपमे लोगोसे सहायता पानेका दावा नही कर सकता। सार्वजनिक सस्थाओका हिसाब-किताब ठीक-ठीक रखा जाना चाहिए, जिससे कि लोग जब चाहे तब देख-भाल सके। इन शर्तोकी पूर्ति संचालकोको करनी चाहिए। उनकी सच्चरित्रता लोगोके आदर और आश्रयके लिए भाररूप न होनी चाहिए।

हरिजन सेवक,
२५ जून १९३५

: ७ :

एक परित्याग

सन् १८९१ मे विलायतसे लौटनेके बाद मैंने अपने परिवारके बच्चोको करीव-करीब अपनी निगरानीमे ले लिया, और उनके---बालक-बालिकाओ-के---कधोपर हाथ रखकर उनके साथ घूमनेकी आदत डाल ली। ये मेरे भाइयोके वच्चे थे। उनके वडे हो जानेपर भी यह आदत जारी रही। ज्यो-ज्यो परिवार वढता गया, त्यो-त्यो इस आदतकी मात्रा इतनी वढी कि इसकी ओर लोगोका ध्यान आर्कषित होने लगा।

जहातक मुझे याद है, मुझे कभी यह पता नही चला कि मै इसमे कोई भूल कर रहा हू। कुछ वर्ष हुए कि सावरमतीमे एक आश्रमवासीने मुझसे कहा था कि 'आप जव वडी-वडी उम्रकी लडकियो और स्त्रियोके कन्धोपर हाथ रखकर चलते है, तव इससे लोक-स्वीकृत सभ्यताके विचारको चोट पहुचती मालूम होती है।' किन्तु आश्रमवासियोके साथ चर्चा होनेके वाद यह चीज जारी ही रही। अभी हालमे मेरे दो साथी जव वर्धा आये तव उन्होने कहा कि 'आपकी यह आदत सम्भव है कि दूसरोके लिए एक उदाहरण वन जाय, इसलिए आपको यह वन्द कर देनी चाहिए।' उनकी यह दलील मुझे जची नही। तो भी उन मित्रोकी चेतावनीकी मै अवहेलना नही करना चाहता था। इसलिए मैने पाच आश्रमवासियोसे इसकी जाच करने और इसके सम्वन्धमे सलाह देनेके लिए कहा। इसपर विचार हो ही रहा था कि इस वीचमे एक निर्णया-त्मक घटना घटी। मुझे किसीने वताया कि यूनिवर्सिटीका एक तेज विद्यार्थी अकेलेमे एक लडकीके साथ, जो उसके प्रभाव मे थी, सभी तरहकी आज़ादीसे काम लेता था, और दलील यह दिया करता था कि वह उस लडकीको सगी वहनकी तरह प्यार करता है, और इसीसे कुछ चेष्टाओका

प्रदर्शन किये विना उससे रहा नही जाता। कोई उसपर अपवित्रताका जरा भी आरोपण करता तो वह नाराज हो जाता। वह नवयुवक क्या-क्या करता था उन सब बातोको अगर यहा लिखू तो पाठक विना किसी हिचकिचाहटके यह कह देगे कि जिस आजादीसे वह काम लेता था, उसमे अवश्य ही गन्दी भावना थी। मैने और दूसरे जिन लोगोने इस सम्बन्धका पत्र-व्यवहार जब पढा तब हम इस नतीजेपर पहुचे कि या तो वह युवक विद्यार्थी परले सिरेका बना हुआ आदमी है, या फिर खुद अपने-आपको धोखा दे रहा है।

चाहे जो हो, इस अनुसन्धानने मुझे विचारमे डाल दिया। मुझे अपने उन दोनो साथियोकी दी हुई चेतावनी याद आई और मैने अपने दिलसे पूछा कि अगर मुझे यह मालूम हो कि वह नवयुवक अपने बचावमे मेरे व्यवहारकी दलील दे रहा है तो मुझे कैसा लगे? मै यहा यह बतला दू कि यह लडकी, जो उस नवयुवककी चेष्टाओका शिकार बन गई है, यद्यपि वह उसे विलकुल पवित्र और भाईके समान मानती है, तो भी वह उसकी उन चेष्टाओको पसन्द नही करती, बल्कि यह आपत्ति भी करती है; पर उस वेचारीमे इतनी ताकत नही कि वह उस युवककी आपत्तिजनक चेष्टाओको रोक सके। इस घटनाके कारण मेरे मनमे जो आत्म-परीक्षण मथन कर रहा था, उसका यह परिणाम हुआ कि उस पत्र-व्यवहारको पढनेके दो-तीन दिनके अन्दर मैने अपनी उपर्युक्त प्रथाका परित्याग कर दिया, और गत १२वी तारीखको मैने वर्धाके आश्रमवासियोको अपना यह निश्चय सुना दिया। यह बात नही कि यह निर्णय करते समय मुझे कष्ट न हुआ हो। इस व्यवहारके बीच या इसके कारण कभी कोई अपवित्र विचार मेरे मनमे नही आया। मेरा आचरण कभी छिपा हुआ नही रहा है। मै मानता हू कि मेरा आचरण पिताके जैसा रहा है, और जिन अनेक लड़कियोका मै मार्ग-दर्शक और अभिभावक रहा हू, उन्होने अपने मनकी बाते इतने विश्वासके साथ मेरे सामने रखी कि जितने विश्वासके साथ वे शायद और किसीके सामने न रखती। यद्यपि ऐसे ब्रह्मचर्यमे मेरा विश्वास नही, जिसमे स्त्री-पुरुषका परस्पर स्पर्श बचानेके लिए एक रक्षाकी दीवार

बनानेकी ज़रूरत पडे, और जो ब्रह्मचर्य जरासे प्रलोभनके आगे भग हो जाय तो भी जो स्वतन्त्रता मैंने ले रखी है, उसके खतरोसे मै अनजान नही हू।

इसलिए जिस अनुसन्धानका मैंने ऊपर ज़िक्र किया है, उसने मुझे अपनी यह आदत छोड देनेके लिए सचेत कर दिया, फिर मेरा कन्धोपर हाथ रखकर चलनेका व्यवहार चाहे जितना पवित्र रहा हो। मेरे हरेक आचरण-को हज़ारो स्त्री-पुरुष खूब सूक्ष्मतासे देखते है, क्योकि मै जो प्रयोग कर रहा हू, उसमे सतत जागरूक रहनेकी आवश्यकता है। मुझे ऐसे काम नही करने चाहिए जिनका बचाव मुझे दलीलोके सहारे करना पडे। मेरे उदाहरणका कभी यह अर्थ नही था कि उसका चाहे जो अनुसरण करने लग जाय। इस नवयुवकका मामला बतौर एक चेतावनीके मेरे सामने आया और उससे मै आगाह हो गया। मैने इस आशासे यह निश्चय किया है कि मेरा यह त्याग उन लोगोको सही रास्ता सुझा देगा, जिन्होने या तो मेरे उदाहरणसे प्रभावित होकर गलती की है या यो ही। निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है। क्षणिक उत्तेजनाके पीछे, जिसे गलतीसे 'आनन्द' कहते है, इस निधिको यो ही बरबाद नही कर देना चाहिए। और इस चित्रमे चित्रित लडकीके समान कमज़ोर मनवाली लडकियोमे इतना बल तो होना ही चाहिए कि वे उन बदमाश या अपने कामोसे अनजान नवयुवकोकी हरकतोका—फिर वे उन्हे चाहे जितना निर्दोष जतलावे—साहसके साथ सामना कर सके।

हरिजन सेवक,
२७ सितम्बर १९३५

: ८ :

सुधारकोंका कर्त्तव्य

लाहौरके सनातन धर्म कालेजके प्रिंसिपलका निम्नलिखित पत्र मैं सहर्ष यहां प्रकाशित कर रहा हूं :

"बालकों पर जो अप्राकृतिक अत्याचार हो रहे हैं उनकी ओर मैं अधिक-से-अधिक जोर देकर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

आपको यह तो मालूम ही होगा कि इनमें से बहुत ही थोड़े मामलोंकी पुलिसमें रपट लिखाई जाती है, या उन्हें अदालतमें ले जाते हैं। इधर कुछ दिनोंसे पंजाबमें ऐसे केस इतने ज्यादा होने लगे हैं कि जिनकी कोई हद नहीं। इस पत्रके साथ आपके अवलोकनार्थ अखबारोंकी कुछ कतरनें भेज रहा हूं। अदालतमें कभी-कभी जो एकाध मामले आते हैं, उनमेंसे अत्यन्त बीभत्स किस्से ही अखबारोंमें प्रकाशित होते हैं। इन्हें पढ़कर आपको यह पूरी तरहसे मालूम हो जायगा कि हमारे कोमल वयस्क बालक-बालिकाओंपर इस भयका किस कदर आतंक छाया हुआ है। कुछ महीने पहले लाहौरमें गुण्डोंने दिन-दहाड़े कुछ स्कूलोंके फाटकोंपरसे छोटे-छोटे बच्चोंको उठा ले जानेके साहसिक प्रयत्न किये थे। आज भी बालकोंके स्कूलमें जाते और आते वक्त खास इन्तजाम रखना पड़ता है। अदालतमें जो मामले गये हैं, उनकी रिपोर्टोंमें बालकोंके ऊपर किये गए जिन आक्रमणोंका वर्णन आया है अत्यन्त क्रूरता और साहसपूर्ण है। ऐसे राक्षसी काम विरले ही मनुष्य कर सकते हैं।

साधारण जनता या तो इस विषयमें उदासीन है, या वह इस तरहकी लाचारी महसूस करती है कि इन अपराधोंको संगठित होकर कुचल देनेकी लोगोंमें आत्म-श्रद्धा नहीं।

पंजाब-सरकारके जारी किये गए सरकुलरकी जो नकल इसके साथ मैं

भेज रहा हू, उससे आपको यह पता चल जायगा कि जनता और सरकारी अफसरोकी उदासीनताके कारण सरकार भी इस विषयमे अपनेको लाचार-सा अनुभव करती है ।

आपने 'यग इडिया' के ९ सितम्बर १९२६ के तथा २७ जून १९२९ के अकमे यह ठीक ही कहा था कि इस प्रकारके अप्राकृतिक व्यभिचारके अपराधोके सम्बन्धमे सार्वजनिक चर्चा करनेका समय आगया है और इस विषयमे सारे देशमे लोकमत जागृत करनेके लिए अखबारो द्वारा इन जुर्मोका प्रकाशन ही एक-मात्र प्रभावोत्पादक उपाय है ।

मै आपको अत्यन्त आदरके साथ यह बतलाना चाहता हू कि आजकी मोजूदा स्थितिमे कम-से-कम इतना तो हमे करना ही चाहिए । मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस दुराचारके विरुद्ध अखबारो द्वारा जोरदार आन्दोलन चलानेके लिए आप अपनी प्रभावशाली आवाज उठाकर दूसरे अखबारोको रास्ता दिखाइए ।"

इस बुराईके खिलाफ हमे अविश्रान्त लडाई लडनी चाहिए, इस विषयमे तो शका हो ही नही सकती । इस पत्रके साथ जो अत्यन्त घृणोत्पादक रिपोर्टे भेजी गई थी, उन्हे मैने पढ डाला है । सनातन धर्म कालेजके आचार्यने मेरे जिन लेखोका उल्लेख किया है, उनमे जिस किस्मके मामलोकी मैने चर्चा की थी, उससे ये मामले जुदे ही प्रकारके है । वे मामले अध्यापकोकी अनीतिके थे, जिनमे उन्होने वालकोको फुसलाया था । और इन रिपोर्टोमे अधिकतर जिन मामलोका वर्णन आया है, उनमे तो गुण्डोने कोमल वयके वालको पर अप्राकृतिक व्यभिचार करके उनका खून किया है । अप्राकृतिक व्यभिचार और उनके वाद खून किये जानेके केस हालाकि और भी अधिक घृणा पैदा करनेवाले मालूम होते है, तो भी मेरा यह विश्वास है कि जिन मामलोमे वालक जान-बूझकर अध्यापकोकी विपय-वासनाके शिकार होते है, उनकी अपेक्षा इस प्रकारके मामलोका इलाज करना सहज है । दोनोके ही विपयमे सुधारकोके सतत-जागृत रहने और इस वीभत्स कार्यके सम्वन्धमे लोगोकी अन्तरात्मा जगानेकी आवश्यकता है । पजावमे चूकि इस किस्मके अपराध वहुत अधिक होने लगे है, इसलिए वहाके

नेताओंका यह कर्तव्य है कि वे जाति और धर्मका भेद एक तरफ रखकर एक जगह इकट्ठे हो, और बालकोको फुसलाकर फसाने वाले या उन्हे उठा ले जाकर उनके साथ अप्राकृतिक बलात्कार करके उनका खून करने वाले अपराधियोके पजेसे इस पचनद प्रदेशके, कोमल वयस्क युवकोको बचानेके उपायका आयोजन करे। अपराधियोकी निदा करने वाले प्रस्ताव पास करनेसे कुछ भी होने-हवानेका नही। पाप-मात्र भिन्न-भिन्न प्रकारके रोग है और सुधारकोको उन्हे ऐसा रोग समझकर ही उनका इलाज करना चाहिए।

इसका अर्थ यह नही कि पुलिस इन मामलोको सार्वजनिक अपराध समझनेका अपना काम मुल्तवी रखेगी, किन्तु पुलिस जो कार्रवाई करती है, उसकी मशा इन सामाजिक अव्यवस्थाओके मूल कारण ढूढकर उन्हे दूर करनेकी होती ही नही। यह तो सुधारकोका खास अधिकार है। और अगर समाजमे सदाचारके विषयकी भावना और आग्रह न बढा, तो अखबारोमे दुनिया-भरके लेख लिखे जाय तो भी ऐसे अपराध और-और बढते ही जायगे। इसका कारण यही है कि इस उलटे रास्तेपर जाने वाले लोगोकी नैतिक भावना कुठित हो जाती है और वे अखबारोको—खासकर उन भागोको जिनमे ऐसे-ऐसे दुराचारोके विरुद्ध जोशसे भरी हुई नसीहते होती है—शायद ही कभी पढते हो। इसलिए मुझे भी यह एक ही प्रभावकारक मार्ग सूझ रहा है कि सनातन धर्म कालेजके प्रिन्सिपल (यदि वे उनमेसे एक हो तो) जैसे कुछ उत्साही सुधारक दूसरे सुधारकोको एकत्रित करे और इस बुराईको दूर करनेके लिए कुछ सामूहिक उपाय हाथमे ले।

हरिजन सेवक,

२ नवम्बर १९३५

: ६ :

उसकी कृपा बिना कुछ नहीं

डॉक्टरो और अपने-आप जेलर बनने वाले सरदार वल्लभभाई तथा जमनालालजी की कृपासे मै फिर पाठकोके सम्पर्कमे आनेके काबिल हो गया हूँ, हालाकि है यह परीक्षणके तौरपर और एक निश्चित सीमातक ही। इन लोगोने मेरी स्वतन्त्रतापर यह बन्धन लगा दिया है और मैने उसे स्वीकार कर लिया है कि फिलहाल मै 'हरिजन' मे उससे अधिक किसी हालतमे नही लिखूगा जो कि मुझे बहुत जरूरी मालूम पडे, और वह भी इतना ही कि जिसके लिखनेमे प्रति सप्ताह कुछ घटेसे अधिक समय न लगे। सिवा उनके कि जिनके साथ मैने अभीसे लिखा-पढी शुरू कर दी है, और किसीकी निजी समस्याओ या घरेलू कठिनाइयोके बारेमे मै निजी पत्र-व्यवहार नही करूगा, और न तो मै किसी सार्वजनिक कार्यक्रमको स्वीकार करूगा, न किसी सार्वजनिक सभामे भाषण दूगा या उपस्थित ही होऊगा। सोने, दिलबहलाव, मिहनत और भोजनके बारेमेभी निश्चित रूपसे निर्देशकर दिये गये है, लेकिन उनके वर्णनकी कोई जरूरत नही, क्योकि उनसे पाठको-का कोई सम्बन्ध नही है। मुझे आशा है कि इन हिदायतोका पालन करनेमे 'हरिजन'के पाठक तथा सवाद-दाता लोग मेरे और महादेव भाईके साथ, जिन-के जिम्मे सब पत्र-व्यवहारको भुगतानेका काम होगा, पूरा सहयोग करेगे।

मेरी बीमारीके मूल और उसके लिए किये जाने वाले उपायोकी कुछ बात पाठकोके लिए अवश्य रुचिकर होगी। जहातक मैने अपने डॉक्टरको समझा है, मेरे शरीरका बहुत सावधानी और सिरदर्दीके साथ निरीक्षण करनेपर भी उन्हे मेरे शारीरिक अवयवोमे कोई खराबी नही मिली। उनकी रायमें बहुत सम्भवत 'प्रोटीन' और 'कारबोहाइड्रेट्स' की कमी, जो कि शक्कर और निशास्तेके द्वारा प्राप्त होती है, और बहुत दिनोसे

अपने रोजमर्राके सार्वजनिक काम-काजके अलावा लगातार लम्बे-लम्बे समयतक परेशान कर देनेवाली विविध निजी समस्याओमे उलझे रहनेसे यह बीमारी हुई थी। जहातक मुझे याद पडता है पिछले बारह महीने या इससे भी अधिक समयसे मै इस बातको बराबर कहता आ रहा था कि लगातार बढते जानेवाले कामकी तादादमे अगर कमी न हुई तो मेरा बीमार पड़ जाना निश्चित है। इसलिए, जब बीमारी आई तो मेरे लिए वह नई बात नही थी। और बहुत सम्भव है कि दुनियामे इसका इतना ढिंढोरा ही न पिटता, अगर एक मित्रकी ज़रूरतसे ज्यादा चिन्ता सामने न आती, जिन्होने कि मेरे स्वास्थ्यको गिरता देखकर जमनालालजीको सनसनीदार रुक्का भेज दिया। बस, जमनालालजीने यह खबर पाते ही उन सब होशियार डॉक्टरोको बुला लिया जो कि वर्धामे मिल सकते थे और विशेष सहायताके लिए नागपुर व बम्बई भी खबर भेज दी।

जिस दिन मैं बीमार पडा, उस दिन सवेरे ही मुझे उसकी चेतावनी मिल गई थी। जैसे ही सोकर उठा, मुझे अपनी गर्दनके पास एक खास तरहका दर्द मालूम पडा, लेकिन मैने उसपर ज्यादा ध्यान नही दिया और किसीसे कुछ नही कहा। दिन-भर मै अपना काम करता रहा। शामकी हवाखोरीके वक्त जब मैं एक मित्रके साथ बाते कर रहा था तो मुझे बहुत थकावट मालूम पडने लगी और मैं बहुत गम्भीर हो गया। मेरे स्नायु इससे पहले पखवाडेमे ऐसी समस्याओंके सोच-विचारमे पहले ही काफी ढीले पड चुके थे, जो कि मेरे लिए मानो स्वराज्यके सर्वप्रधान प्रश्नकी ही तरह महत्त्वपूर्ण थी।

मेरी बीमारीको अगर इतना तूल न दिया गया होता तो भी जो निश्चित चेतावनी प्रकृति मुझे दे रही थी, उसपर मुझे ध्यान देना पडता और मैंने अपनेको थोडा आराम देकर उस कठिनाईको हल करनेकी कोशिश की होती; लेकिन जो कुछ हो गया उसपर नजर डालनेसे मुझे ऐसा मालूम पडता है कि जो-कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ। डॉक्टरोने जो असाधारण सावधानी रखनेकी सलाह दी और उन्हीके समान असाधारण रूपसे उक्त दोनो जेलरोने जो देख-भाल रखी उसके कारण मजबूरन मुझे

आराम करना पडा, जो वैसे मै कभी न करता, और उससे मुझे आत्म-निरीक्षणका काफी समय मिल गया। इसलिए उससे मुझे स्वास्थ्यका लाभ ही नही हुआ, बल्कि आत्म-निरीक्षणसे मुझे यह भी मालूम हुआ कि गीताका जो अर्थ मै समझा हू उसका पालन करनेमे मै कितनी गलती कर रहा हू। मुझे पता लगा कि जो विविध समस्याए हमारे सामने उपस्थित है, उनकी काफी गहराईमे मै नही पहुचा हू। यह स्पष्ट है कि उनमेसे अनेकने मेरे हृदयपर असर डाला है और मैने उन्हे, अपनी भावुकताको प्रेरित करके, अपने स्नायुओपर जोर डालने दिया है। दूसरे शब्दोमे कहू तो गीताके भक्तको उनके प्रति जैसा अनासक्त रहना चाहिए वैसा मेरा मन या शरीर नही रहा है। सचमुच मेरा यह विश्वास है कि जो व्यक्ति प्रकृतिके आदेशका पूर्णत अनुसरण करता है उसके मनमे बुढापेका भाव कभी आना ही नही चाहिए। ऐसा व्यक्ति तो अपनेको सदा तरो-ताजा और नौजवान ही महसूस करेगा और जब उसके मरनेका समय आयगा तो उसी तरह मरेगा जैसे किसी मजबूत वृक्षके पत्ते गिरते हो। भीष्म पितामहने मृत्यु-शैय्यापर पडे हुए भी युधिष्ठिरको जो उपदेश दिया, मेरी समझमे उसका यही अर्थ है। डॉक्टर लोग मुझे यह चेतावनी देते कभी नही थकते थे कि हमारे आस-पास जो घटनाए हो रही है, उनसे मुझे उत्तेजित हर्गिज नही होना चाहिए। कोई दु खद या उत्तेजक घटना अथवा समाचार मेरे सामने न आये, इसकी भी खास तौरपर सावधानी रखी गई। यद्यपि मेरा खयाल है कि मै गीताका उतना बुरा अनुयायी नही हू, जैसा कि इस सावधानीकी कार्रवाईसे मालूम पडता है, लेकिन इसमे सन्देह नही कि उनकी हिदायतोमे सार अवश्य था, क्योकि मगनवाडीसे महिलाश्रम जानेकी जमनालालजीकी बात मैने कितनी अनिच्छासे कबूल की, यह मुझे मालूम है। जो भी हो, उन्हे यह विश्वास नही रहा कि अनासक्त-रूपसे मै कोई काम कर सकता हू। मेरा बीमार पड जाना उनके लिए इस बातका बडा भारी प्रमाण था कि अनासक्तिकी मेरी जो ख्याति है, वह थोथी है, और इसमे मुझे अपना दोष स्वीकार करना ही पडेगा।

लेकिन अभी तो इससे भी अधिक बुरा होनेको बाकी था। १८९९ से

में, जान-बूझ कर और निश्चय के साथ, बराबर ब्रह्मचर्य का पालन करनेकी कोशिश करता रहा हू। मेरी व्याख्याके अनुसार, इसमे न केवल शरीर की, बल्कि मन और वचनकी शुद्धता भी शामिल है। और सिवा उस अपवादके, जिसे कि मानसिक स्खलन कहना चाहिए, अपने ३६ वर्षसे अधिक समयके सतत एव जागरूक प्रयत्नके बीच, मुझे याद नही पडता कि कभी भी मेरे मनमे इस सम्बन्धमे ऐसी बेचैनी पैदा हुई हो, जैसी कि इस बीमारीके समय मुझे महसूस हुई। यहातक कि मुझे अपनेसे निराशा होने लगी, लेकिन जैसे ही मेरे मनमे ऐसी भावना उठी, मैंने अपने परिचारको और डॉक्टरोको उससे अवगत कर दिया, लेकिन वे मेरी कोई मदद नही कर सके। मैंने उनसे आशा भी नही की थी। अलबत्ता इस अनुभवके बाद मैंने उस आराममे ढिलाई कर दी, जो कि मुझपर लादा गया था और अपने इस बुरे अनुभवको स्वीकार कर लेनेसे मुझे बडी मदद मिली। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेरे ऊपरसे बडा भारी बोझ हट गया और कोई हानि हो सकनेसे पहले ही मै सम्हल गया; लेकिन गीताका उपदेश तो स्पष्ट और निश्चित है, जिसका मन एक बार ईश्वरमे लग जाय वह कोई पाप नही कर सकता। मै उससे कितना दूर हू, यह तो वही जानता है। ईश्वरको धन्यवाद है कि अपने महात्मापनकी प्रसिद्धिसे मै कभी धोखेमे नही पडा हू, लेकिन इस जबर्दस्तीके विश्रामने तो मुझे इतना विनम्र बना दिया है, जितना मै पहले कभी नही था। इससे अपनी मर्यादाए और अपूर्णताए भली-भाति मेरे सामने आ गई है, लेकिन उनके लिए मै उतना लज्जित नही हू जितना कि सर्वसाधारणसे उनको छिपानेमे होता। गीताके सन्देशमे सदाकी तरह आज मेरा वैसा ही विश्वास है। उस विश्वासको ऐसे सुन्दर रूपमे परिणत करनेके लिए कि जिससे गिरावटका अनुभव ही न हो, लगातार अथक प्रयत्नकी आवश्यकता है, लेकिन उसी गीतामे साथ-साथ असदिग्ध रूपसे यह भी कहा हुआ है कि ईश्वरीय अनुग्रहके बिना वह स्थिति ही प्राप्त नही हो सकती। अगर विधाताने इतनी गुजाइश न रखी होती तो हमारे हाथ-पैर ही फूल गये होते और हम अकर्मण्य हो गये होते।

हरिजन सेवक, २९.२.३६

: १० :

सन्तति-निग्रह—१

मेरे एक साथीने, जो मेरे लेखोको बडे ध्यानके साथ पढते रहते है, जब यह पढा कि सन्तति-निग्रहके लिए सम्भवत मे उन दिनो सहवासकी बात स्वीकार कर लूगा जिनमे कि गर्भ रहनेकी सम्भावना नही होती, तो उन्हे बडी बेचैनी हुई। मैने उन्हे यह समझानेकी कोशिश की कि कृत्रिम साधनोसे सतति-निग्रह करनेकी बात मुझे जितनी खलती है उतनी यह नही खलती, फिर यह है भी अधिकतर विवाहित दम्पतियोके ही लिए। आखिर बहस बढते-बढते इतनी गहराईपर चलती गई जिसकी हम दोनोमेसे किसीने आशा न की थी। मैने देखा कि यह बात भी उन मित्रको कृत्रिम साधनोसे सतति-निग्रह करने-जैसी ही बुरी प्रतीत हुई। इससे मुझे मालूम पडा कि यह मित्र स्मृतियोके इस बन्धनको साधारण मनुष्योके लिए व्यवहार-योग्य समझते है कि पति-पत्नीको भी तभी सहवास करना चाहिए, जबकि उन्हे सचमुच सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा हो। इस नियमको जानता तो मै पहलेसे था, लेकिन उसे इस रूपमे पहले कभी नही माना था, जिस रूपमे कि इस बातचीतके बाद मानने लगा हू। अभी तक तो, पिछले कितने ही सालोसे, मै इसे ऐसा पूर्ण आदर्श ही मानता आया हू, जिसपर ज्यो-का-त्यो अमल नही हो सकता। इसलिए मै समझता था कि सन्तानोत्पत्तिकी खास इच्छाके बगैर भी विवाहित स्त्री-पुरुष जबतक एक-दूसरेकी रजामन्दीसे सहवास करे तबतक वे वैवाहिक उद्देश्यकी पूर्ति करते हुए स्मृतियोके आदेशका भग नही करते, लेकिन जिस नये रूपमे अब मै स्मृतिकी बातको लेता हू वह मेरे लिए मानो एक इलहाम है। स्मृतियोका जो यह कहना है कि जो विवाहित स्त्री-पुरुष इस आदेशका दृढताके साथ पालन करे वे वैसे ही ब्रह्मचारी है जैसे

अविवाहित रहकर सदाचारी जीवन व्यतीत करनेवाले होते है, उसे अब मैं इतनी अच्छी तरह समझ गया हू जैसे पहले कभी नही जानता था।

इस नये रूपमे, अपनी काम-वासनाको तृप्त करना नही; वल्कि सन्तानोत्पत्ति ही सहवासका एक-मात्र उद्देश्य है। साधारण काम-पूर्ति तो, विवाहकी इस दृष्टिसे, भोग ही माना जायगा। जिस आनन्दको अभी तक हम निर्दोष और वैध मानते आये हैं उसके लिए ऐसे शब्दका प्रयोग कठोर तो मालूम होगा, लेकिन प्रचलित प्रथाकी बात मैं नही कर रहा हू; वल्कि उस विवाह-विज्ञानको ले रहा हू जिसे हिन्दू-ऋपियोने वताया है। यह हो सकता है कि उन्होने ठीक ढगसे न रखा हो या वह बिलकुल गलत ही हो; लेकिन मुझ-जैसे आदमीके लिए तो, जो स्मृतियोकी कई वातोको अनुभवके आधार-भूत मानता है, उनके अर्थको पूरी तरह स्वीकार किये वगैर कोई चारा ही नही हैं। कुछ पुरानी वातोको उनके पूरे अर्थोमे ग्रहण करके प्रयोगमे लानेके अलावा ओर कोई ऐसा तरीका मैं नही जानता जिससे उनकी सचाईका पता लगाया जा सके। फिर वह जाच कितनी ही कडी क्यो न प्रतीत हो और उससे निकलनेवाले निष्कर्ष कितने ही कठोर क्यो न लगे।

ऊपर मैंने जो-कुछ कहा है उसको देखते हुए, कृत्रिम साधनो या ऐसे दूसरे उपायोसे सन्तति-निग्रह करना वडी भारी गलती है। अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरह समझते हुए मैं यह लिख रहा हू। श्रीमती मार्गरेट सेगर और उनके अनुयायियोके लिए मेरे मनमे वडे आदरका भाव है। अपने उद्देश्यके लिए उनके अन्दर जो अदम्य उत्साह है उससे मैं वहुत प्रभावित हुआ हू। यह भी मैं जानता हू कि स्त्रियोको अनचाहे वच्चोकी सार-सम्हाल और परवरिश करनेके कारण जो कष्ट उठाना पडता है, उसके लिए उनके मनमे स्त्रियोके प्रति वडी सहानुभूति है। साथ ही यह भी मैं जानता हूं कि कृत्रिम सन्तति-निग्रहका अनेक उदार धर्माचार्यो, वैज्ञानिको, विद्वानो और डॉक्टरोने भी समर्थन किया है, जिनमे वहुतोको तो मैं व्यक्तिगत रूपसे जानता और मानता भी हू; लेकिन इस सम्वन्धमे मेरी जो मान्यता है उसे अगर मैं पाठको या कृत्रिम सन्तति-निग्रहके महान् समर्थकोसे छिपाऊ तो मैं अपने ईश्वरके प्रति, जोकि सत्यके अलावा और कुछ नही है, सच्चा

साबित नही होऊगा, और अगर मैंने अपनी मान्यताको छिपाया तो यह निश्चित है कि अपनी गलतीको, अगर मेरी यह मान्यता गलत हो, मैं कभी नही जान सकूगा। अलावा इसके, उन अनेक स्त्री-पुरुषोकी ख़ातिर भी मैं यह जाहिर कर रहा हू जोकि सन्तति-निग्रह सहित अनेक नैतिक समस्याओके वारेमे मेरे आदेश और मतको स्वीकार करते है।

सन्तति-निग्रह होना चाहिए, इस वातपर तो वे भी सहमत है जो इसके लिए कृत्रिम साधनोका समर्थन करते है, और वे भी जो अन्य उपाय वतलाते है। आत्म-सयमसे सन्तति-निग्रह करनेमे जो कठिनाई होती है, उससे इन्कार नही किया जा सकता, लेकिन अगर मनुष्य-जातिको अपनी किस्मत जगानी है तो इसके सिवा इसकी पूर्तिका कोई और उपाय ही नही है, क्योकि यह मेरा आन्तरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनोसे सन्तति-निग्रहकी वात सवने मजूर कर ली तो मनुष्य-जातिका बडा भारी नैतिक पतन होगा। कृत्रिम सन्तति-निग्रहके समर्थक इसके विरुद्ध प्राय जो दलीले पेश करते हैं उनके वावजूद मैं यह कहता हू।

मेरा विश्वास है कि मुझमे अन्ध-विश्वास कोई नही है। मैं यह नही मानता कि कोई वात इसीलिए सत्य है, क्योकि वह प्राचीन है। न मैं यह मानता हू कि चूकि वह प्राचीन है इसलिए उसे सन्दिग्ध समझा जाय। जीवनकी आधारभूत कई ऐसी वाते है जिन्हे हम यह समझकर यो ही नही छोड सकते कि उनपर अमल करना मुश्किल है।

इसमे शक नही कि आत्म-सयमके द्वारा सन्तति-निग्रह है कठिन, लेकिन अभीतक ऐसा कोई नजर नही आया जिसने सजीदगीके साथ इसकी उपयोगितामे सन्देह किया हो या यह न माना हो कि कृत्रिम साधनोकी वनिस्वत यह ऊचे दर्जेका है।

मैं समझता हू, जव हम सहवासको दृढतासे मर्यादित रखनेके शास्त्रोके आदेशको पूर्णत स्वीकार कर ले, और उसको ही सवसे वडे आनन्द-का साधन न माने, तो यह अपेक्षाकृत आसान भी हो जायगा। जननेन्द्रियोका काम तो सिर्फ यही है कि विवाहित दम्पतिके द्वारा यथासम्भव सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति करे। और यह तभी हो सकता है, और होना चहिए, जवकि

स्त्री-पुरुष दोनो सहवासकी नही बल्कि सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे, जो कि ऐसे सहवासका परिणाम होता है, प्रेरित हो। अतएव सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बगैर सहवास करना अवैध समझा जाना चाहिए और उसपर नियत्रण लगाना चाहिए।

साधारण आदमियोपर ऐसा नियत्रण किया जा सकता है या नही, इसपर आगे विचार किया जायगा।

हरिजन सेवक,
१४ मार्च १९३६

: ११ :

सन्तति-निग्रह—२

हमारे समाजकी आज ऐसी दशा है कि आत्म-सयमकी कोई प्रेरणा ही उससे नही मिलती। शुरूसे हमारा पालन-पोषण ही उससे विपरीत दिशामे होता है। माता-पिताकी मुख्य चिन्ता तो यही होती है कि, जैसे भी हो, अपनी सन्तानका व्याह कर दे जिससे चूहोकी तरह वे बच्चे जनते रहे और अगर कही लडकी पैदा हो जाय तब तो जितनी भी कम उम्रमे हो सके, बिना यह सोचे कि इससे उसका कितना नैतिक पतन होगा, उसका व्याह कर दिया जाता है। विवाहकी रस्म भी क्या है, मानो दावत और फिजूल-खर्चीकी एक लम्बी सरदर्दी ही है। परिवारका जीवन भी वैसा ही होता है जैसा कि पहलेसे होता आया है, यानी भोगकी ओर बढना ही होता है। छुट्टिया और त्यौहार भी इस तरह रखे गये है, जिनसे वैषयिक रहन-सहनकी ओर ही अधिक-से-अधिक प्रवृत्ति होती है। जो साहित्य एक तरहसे गले चपेटा जाता है उससे भी आमतौरपर विषयोन्मुख मनुष्योको उसी ओर अग्र-सर होनेका प्रोत्साहन मिलता है। और अत्यत आधुनिक साहित्य तो प्राय यही शिक्षा देता है कि विषय-भोग ही कर्तव्य है और पूर्ण सयम एक पाप है।

ऐसी हालतमे कोई आश्चर्य नही कि काम-पिपासाका नियत्रण बिलकुल असम्भव नही तो कठिन अवश्य हो गया है और अगर हम यह मानते है कि सन्तति-निग्रहका अत्यत वाछनीय और बुद्धिमत्तापूर्ण एव सर्वथा निर्दोष साधन आत्म-सयम ही है तो सामाजिक आदर्श और वातावरणको ही बदलना होगा। इस इच्छित उद्देश्यकी सिद्धिका एक-मात्र उपाय यही है कि जो व्यक्ति आत्म-सयमके साधनमे विश्वास रखते है वे दूसरोको भी उससे प्रभावित करनेके लिए अपने अटूट विश्वासके साथ खुद ही इसका अमल शुरू कर दे। ऐसे लोगोके लिए, मै समझता हू, विवाहकी जिस धारणाकी मैने

पिछले सप्ताह चर्चा की थी वह बहुत महत्त्व रखती है। उसे भली-भाति ग्रहण करनेका मतलब है अपनी मन स्थितिको बिलकुल बदल देना अर्थात् पूर्ण मानसिक क्रान्ति। यह नही कि सिर्फ कुछ चुने हुए व्यक्ति ही ऐसा करे, बल्कि यही समस्त मानव-जातियोके लिए नियम हो जाना चाहिए, क्योकि इसके भगसे मानव-प्राणियोका दर्जा घटता है और अनचाहे बच्चोकी वृद्धि, सदा बढती रहनेवाली बीमारियोकी श्रृखला और मनुष्यके नैतिक पतनके रूपमे उन्हे तुरन्त ही इसकी सजा मिल जाती है। इसमे शक नही कि कृत्रिम साधनो द्वारा सन्तति-निग्रहसे नव-जात शिशुओकी सख्या-वृद्धिपर किसी हदतक अकुश रहता है, और साधारण स्थितिके मनुष्योका थोडा बचाव हो जाता है, लेकिन व्यक्ति और समाजकी जो नैतिक हानि इससे होती है उसका पार नही, क्योकि जो लोग भोगके लिए ही अपनी काम-वासनाकी तृप्ति करते है, उनके लिए जीवनका दृष्टिकोण ही बिलकुल बदल जाता है। उनके लिए विवाह धार्मिक सम्बन्ध नही रहता, जिसका मतलब है उन सामाजिक आदर्शोका बिलकुल बदल जाना, जिन्हे अभीतक हम बहुमूल्य निधिके रूपमे मानते रहे है। निस्सन्देह जो लोग विवाहके पुराने आदर्शोको अन्ध-विश्वास मानते है, उनपर इस दलीलका ज्यादा असर न होगा। इसलिए मेरी यह दलील सिर्फ उन्ही लोगोके लिए है जो विवाहको एक पवित्र सबध मानते है और स्त्रीको पाशविक आनन्द (भोग) का साधन नही, बल्कि सन्तानके धारण और सरक्षणका गुण रखनेवाली माताके रूपमे मानते है।

मैने और मेरे साथी कार्यकर्त्ताओने आत्म-सयमकी दिशामे जो प्रयत्न किया है, उसके अनुभवसे इस विचारकी पुष्टि होती है, जिसे कि मैने यहा उपस्थित किया है। विवाहकी प्राचीन धारणाके प्रखर प्रकाशमे होनेवाली खोजसे इसे बहुत ज्यादा बल प्राप्त हो गया है। मेरे लिए तो अब विवाहित-जीवनमे ब्रह्मचर्य बिलकुल स्वाभाविक और अनिवार्य स्थिति बनकर स्वय विवाहकी ही तरह एक मामूली बात हो गई है। सन्तति-निग्रहका और कोई उपाय व्यर्थ और अकल्पनीय मालूम पडता है। एक बार जहा स्त्री और पुरुषमे इस विचारने घर किया नही कि जननेन्द्रियोका एक-मात्र

और महान् कार्य सन्तानोत्पत्ति ही है, सन्तानोत्पत्तिके अलावा और किसी उद्देश्यसे सहवास करनेको वे अपने रज-वीर्यकी दण्डनीय क्षति मानने लगेगे और उसके फलस्वरूप स्त्री-पुरुषमे होनेवाली उत्तेजनाको अपनी मूल्यवान शक्तिकी वैसी ही दण्डनीय क्षति समझेगे। हमारे लिए यह समझना बहुत मुश्किल बात नही है कि प्राचीन कालके वैज्ञानिकोने वीर्य-रक्षाको क्यो इतना महत्त्व दिया है और क्यो इस बातपर उन्होने इतना जोर दिया है कि हम समाजके कल्याणके लिए उसे शक्तिके सर्वोत्कृष्ट रूपमे परिणत करे। उन्होने तो स्पष्टरूपसे इस बातकी घोषणा की है कि जो (स्त्री और पुरुष) अपनी काम-वासनापर पूर्ण नियत्रण कर ले वह शारीरिक, मानसिक ओर आध्यात्मिक सभी प्रकारकी इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है जो और किसी उपायसे प्राप्त नही की जा सकती।

ऐसे महान् ब्रह्मचारियोकी अधिक सख्या क्या, एक भी कोई हमे अपने बीचमे दिखाई नही पडता, इससे पाठकोको घबराना नही चाहिए। अपने बीच जो ब्रह्मचारी आज हमे दिखाई देते है वे सचमुच बहुत अपूर्ण नमूने है। उनके लिए तो बहुत-से-बहुत यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे जिज्ञासु है, जिन्होने अपने शरीरका सयम कर लिया है, पर मनपर अभी सयम नही कर पाये है। ऐसे दृढ वे अभी नही हुए है कि उनपर प्रलोभनका कोई असर ही न हो, लेकिन यह इसलिए नही है कि ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति बहुत दुरूह है, बल्कि सामाजिक वातावरण ही उसके विपरीत है और जो लोग ईमानदारीके साथ यह प्रयत्न कर रहे है उनमेसे अधिकाश अनजाने सिर्फ इसी सयमका यत्न करते है, जबकि इसमे सफल होनेके लिए उन सब विषयो-के सयमका यत्न किया जाना चाहिए, जिनके चगुलमे मनुष्य फस सकता है। इस तरह किया जाय तो साधारण स्त्री-पुरुषोके लिए भी वैसे ही प्रयत्नकी आवश्यकता है जैसा कि किसी भी विज्ञानमे निष्णात होनेके अभिलाषी किसी विद्यार्थीको करना पडता है। यहा जिस रूपमे ब्रह्मचर्य लिया गया है, उस रूपमे जीवन-विज्ञानमे निष्णात होना ही वस्तुत उसका अर्थ भी है।

हरिजन सेवक,

२१ मार्च १९३६

: १२ :

नवयुवकोंसे !

आजकल कही-कही नवयुवकोकी यह आदत-सी पड गई है कि बडे-बड़े जो-कुछ कहे वह नही मानना चाहिए । मै यह तो नही कहना चाहता कि उसके ऐसा माननेका विलकुल कोई कारण ही नही है; लेकिन देशके युवकोको इस बातसे आगाह जरूर करना चाहता हू कि वडे-बडे स्त्री-पुरुषो द्वारा कही हुई हरेक बातको सिर्फ इसी कारण माननेसे इन्कार न करे कि उसे वड़े-बूढोने कहा है । अक्सर बुद्धिकी वात बच्चो तकके मुहसे जैसे निकल जाती है, उसी तरह बहुधा वडे-बूढोके मुहसे निकल जाती है । स्वर्णनियम तो यही है कि हरेक बातको बुद्धि और अनुभवकी कसौटीपर कसा जाय, फिर वह चाहे किसीकी कही या बताई हुई क्यो न हो । कृत्रिम साधनोसे सन्तति-निग्रहकी बातपर मै अब आता हू । हमारे अन्दर यह वात जमा दी गई है कि अपनी विषय-वासनाकी पूर्ति करना भी हमारा वैसा ही कर्तव्य है, जैसे वैध रूपमे लिये हुए कर्जको चुकाना हमारा कर्तव्य है, और अगर हम ऐसा न करे तो उससे हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जायगी । इस विषयेच्छा-को सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे पृथक् माना जाता है और सन्तति-निग्रहके लिए कृत्रिम-साधनोके समर्थकोका कहना है कि जबतक सहवास करने वाले स्त्री-पुरुषको बच्चे पैदा करनेकी इच्छा न हो तबतक गर्भ-धारण नही होने देना चाहिए । मै वडे साहसके साथ यह कहता हू कि यह ऐसा सिद्धान्त है, जिसका कही भी प्रचार करना बहुत खतरनाक है, और हिन्दुस्तान-जैसे देशके लिए तो, यहा मध्य-श्रेणीके पुरुष अपनी जननेन्द्रियका दुरुपयोग करके अपना पुरुषत्व ही खो बैठे है, यह और भी बुरा है । अगर विषयेच्छाकी पूर्ति कर्तव्य हो, तव तो जिस अप्राकृतिक व्यभि-चारके बारेमे कुछ समय पहले मैंने लिखा था उसे तथा कामपूर्तिके कुछ

अन्य उपायोको भी ग्रहण करना होगा। पाठकोको याद रखना चाहिए कि बडे-बडे आदमी भी ऐसे काम पसन्द करते मालूम पड रहे हैं जिन्हे आम तौरपर वैषयिक पतन माना जाता है। सम्भव है कि इस बातसे पाठकोको कुछ ठेस लगे, लेकिन अगर किसी तरह इसपर प्रतिष्ठाकी छाप लग जाय तो बालक-बालिकाओमे अप्राकृतिक व्यभिचारका रोग बुरी तरह फैल जायगा। मेरे लिए तो कृत्रिम साधनोके उपयोगसे कोई खास फर्क नही है, जिन्हे लोगोने अभीतक अपनी विषयेच्छा-पूर्तिके लिए अपनाया है, और जिनसे ऐसे कुपरिणाम आये है कि बहुत कम लोग उनसे परिचित है। स्कूली लडके-लडकियोमे गुप्त व्यभिचारने क्या तूफान मचाया है, यह मै जानता हू। विज्ञानके नामपर सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोके प्रवेश और प्रख्यात सामाजिक नेताओके नामसे उनके छपानेसे स्थिति आज और भी पेचीदा हो गई है और सामाजिक जीवनकी शुद्धताके लिए सुधारकोका काम बहुत-कुछ सम्भव-सा हो गया है। पाठकोको यह बताकर मै अपने-पर किये गए किसी विश्वासको भग नही कर रहा हू कि स्कूल-कालिजोमे ऐसी अविवाहित जवान लडकिया भी है, जो अपनी पढाईके साथ-साथ कृत्रिम सन्तति-निग्रहके साहित्य व मासिक पत्रोको बडे चावसे पढती रहती है और कृत्रिम साधनोको अपने साथ रखती है। इन साधनोको विवाहिता स्त्रियोतक ही सीमित रखना असम्भव है। और, विवाहकी पवित्रता तो तभी लोप हो जाती है, जबकि उसके स्वाभाविक परिणाम सन्तानोत्पत्तिको छोडकर महज अपनी पाशविक विषय-वासनाकी पूर्ति ही उसका सबसे बडा उपयोग मान लिया जाता है।

मुझे इसमे कोई सदेह नही कि जो विद्वान् स्त्री-पुरुष सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोके पक्षमे बडी लगनके साथ प्रचार-कार्य कर रहे है, वे इस झूठे विश्वासके साथ कि इससे उन बेचारी स्त्रियोकी रक्षा होती है, जिन्हे अपनी इच्छाके विरुद्ध बच्चोका भार सम्भालना पडता है, देशके युवकोकी ऐसी हानि कर रहे है, जिसकी कभी पूर्ति ही नही हो सकती। जिन्हे अपने बच्चोकी सख्या सीमित करनेकी जरूरत है, उनतक तो आसानी से वे पहुच भी नही सकेगे, क्योकि हमारे यहाकी गरीब स्त्रियोको पश्चिमी

स्त्रियोंकी भांति ज्ञान या शिक्षण कहां प्राप्त है ? यह भी निश्चय है कि मध्य-श्रेणीकी स्त्रियोंकी ओरसे भी यह प्रचार-कार्य नहीं हो रहा है; क्योंकि इस ज्ञानकी उन्हें उतनी जरूरत ही नहीं है, जितनी कि गरीब लोगोंको है।

इस प्रचार-कार्यसे सबसे बड़ी जो हानि हो रही है, वह तो पुराने आदर्शको छोड़कर उसकी जगह एक ऐसे आदर्शको अपनाना है, जो अगर अमलमें लाया गया तो जातिका नैतिक तथा शारीरिक सर्वनाश निश्चित है। प्राचीन शास्त्रोंने व्यर्थ वीर्य-नाशको जो भयावह बताया है, वह कुछ अज्ञान-जनित अन्ध-विश्वास नहीं है। कोई किसान अपने पासके सबसे बढ़िया बीजको बंजर जमीनमें बोवे, या बढ़िया खादसे खूब उपजाऊ बने हुए किसी खेतके मालिकको इस शर्तपर बढ़िया बीज मिले कि उसके लिए उसकी उपज करना ही सम्भव न हो तो उसे हम क्या कहेंगे ? परमेश्वरने कृपा करके पुरुषको तो बहुत बढ़िया बीज दिया है और स्त्रीको ऐसा बढ़िया खेत दिया है कि जिससे बढ़िया इस भू-मंडलमें कोई मिल ही नहीं सकता। ऐसी हालतमें मनुष्य अपनी बहुमूल्य सम्पत्तिको व्यर्थ जाने दे तो यह उसकी दण्डनीय मूर्खता है। उसे तो चाहिए कि अपने पासके बढ़िया-से-बढ़िया हीरे-जवाहरात अथवा अन्य मूल्यवान वस्तुओंकी वह जितनी देख-भाल रखता हो, उससे भी ज्यादा उसकी सार-सम्हाल करे।

उनके दिमागमे ऐसी विचार-धारा भर देता है, जो मेरे खयालमे, गलत है। भारतके नौजवान स्त्री-पुरुषोका भविष्य उनके अपने ही हाथोमे है। उन्हे चाहिए कि इस झूठे प्रचारसे सावधान हो जाय और जो बहुमूल्य वस्तु परमेश्वरने उन्हे दी है, उसकी रक्षा करे, और जब वे उसका उपयोग करना चाहे तो सिर्फ उसी उद्देश्यसे करे कि जिसके लिए वह उन्हे दिया गया है।

हरिजन सेवक,
२८ मार्च १९३६

: १३ :

कृत्रिम साधनोंसे सन्तति-निग्रह

एक सज्जन लिखते है :

"हालमे 'हरिजन'मे श्रीमती सेंगर और महात्मा गाधीकी मुलाकातका जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके बारेमे मै कुछ कहना चाहता हू।

"इस बातचीतमे जिस खास बातकी ओर ध्यान नही दिया गया मालूम पडता है वह यह है कि मनुष्य अन्ततोगत्वा कलाकार और उत्पादक है। कम-से-कम आवश्यकताओकी पूर्तिपर ही वह सतोष नही करता; बल्कि सुन्दरता, रग-बिरगापन और आकर्षण भी उसके लिए आवश्यक होता है। मुहम्मद साहबने कहा है कि 'अगर तेरे पास एक ही पैसा हो तो उससे रोटी खरीद ले; लेकिन अगर दो हो तो एकसे रोटी खरीद और एकसे फूल।' इसमे एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है—वह यह कि मनुष्य स्वभावत. कलाकार है, इसलिए हम उसे ऐसे कामोके लिए भी प्रयत्नशील पाते है, जो महज उसके शरीर-धारणके लिए आवश्यक नही है। उसने तो अपनी आवश्यकता-को कलाका रूप दे रखा है और उन कलाओकी खातिर मनो खून बहाया है। मनुष्यकी उत्पादक-बुद्धि नई-नई कठिनाइयो और समस्याओको पैदा करके उनका तैल निकालनेके लिए उसे प्रेरित करती रहती है। रूसो, रस्किन, टॉलस्टाय, थोरो और गाधी उसे जैसा 'सरल-सादा' बनाना चाहते है वैसा बन नही सकता। युद्ध भी उसके लिए एक आवश्यक चीज है; और उसे भी उसने एक महान् कलाके रूपमे परिणत कर दिया है।

"उसके मस्तिष्कको अपील करनेके लिए प्रकृतिका उदाहरण व्यर्थ है, क्योकि वह तो उसके जीवनसे ही बिलकुल मेल नही खाती है। 'प्रकृति उसकी शिक्षिका नही बन सकती।' जो लोग प्रकृतिके नामपर अपील करते है वे यह भूल करते है कि प्रकृतिमे केवल पर्वत तथा उपत्यकाए और कुसुम-

क्यारिया ही नही है, बल्कि बाढ, झझावात और भूकम्प भी है। कट्टर निराकारवादी नीत्सेका कहना है कि कलाकारकी दृष्टिसे प्रकृति कोई आदर्श नही है। वह तो अत्युक्ति तथा विकृतीकरणसे काम लेती है और बहुत-सी चीजोको छोड जाती है। प्रकृति तो एक आकस्मिक घटना है। 'प्रकृतिसे अध्ययन करना' कोई अच्छा चिह्न नही है, क्योकि इन नगण्य चीजोके लिए धूलमे लोटना अच्छे कलाकारके योग्य नही है। भिन्न प्रकारकी वृद्धिके कार्यको, कला-विरोधी मामूली बातोको, देखनेके लिए यह आवश्यक है कि हम यह जाने कि हम क्या है? हम यह जानते है कि जगली जानवर अपने शरीरको बनाये रखनेकी आवश्यकतावश कच्चा मास खाते है, स्वाद-वश नही। यह भी जानते है कि प्रकृतिमे तो पशुओसे समागमकी ऋतुए होती है। ऋतुओके अतिरिक्त कभी मैथुन होता ही नही, लेकिन उसी फिलासफरके अनुसार यह तो अच्छे कलाकारके योग्य नही है। जो मनुष्य स्वभावत अच्छा कलाकार है इसलिए जब सन्तानोत्पत्तिकी आवश्यकता न रहे तब मैथुन-कार्यको बन्द कर देना या केवल सन्तानोत्पत्तिकी स्पष्ट इच्छासे प्रेरित होकर ही मैथुन करना, इतनी प्राकृतिक, इतनी मामूली, इतनी हिसाब-किताबकी-सी बात है कि हमारे फिलासफरके कथनानुसार वह उसकी कला-प्रेमी प्रकृतिको अपील नही कर सकता। इसलिए वह तो स्त्री-पुरुषके प्रेमको एक बिलकुल दूसरे पहलूसे देखता है—ऐसे पहलूसे जिसका सन्तान-वृद्धिसे कोई सम्बन्ध नही। यह बात हेवलॉक एलिस और मेरी स्टोप्स-जैसे आप्त पुरुषोके कथनोसे स्पष्ट होती है। यह इच्छा यद्यपि आत्मासे उत्पन्न होती है, पर वह शारीरिक सम्भोगके बिना अपूर्ण रह जाती है। यह उस समयतक रहेगा जबतक हम इस अशको केवल आत्मामे पूरा नही कर सकते और उसके लिए शरीरयत्रकी आवश्यकता समझते है। ऐसे ही सहवासके परिणामका सामना करना बिलकुल दूसरी समस्या है। यही सन्तान-निग्रहके आन्दोलनका काम आ जाता है, पर यह काम अगर स्वय आत्माकी ही पुन व्यवस्था पर छोड दिया जाय और बाह्य अनुशासन द्वारा—आत्म-सयमके माने इसके अतिरिक्त और कुछ नही है—तो हमे यह आशा नही होती कि उससे जिन उद्देश्योकी पूर्ति होनी चाहिए,

उन सबको वह सिद्ध कर सकेगा। न इससे बिना सुदृढ मनोवैज्ञानिक आधारके सन्तति-निग्रह ही हो सकता है।

“अपनी बातको समाप्त करनेसे पहले मै यह और कहूगा कि आत्म-सयम या ब्रह्मचर्यका महत्त्व मै किसी प्रकार कम नही करना चाहता। वैष-यिक नियत्रणको पूर्णतापर ले जानेवाली कलाके रूपमे मै हमेशा उसकी सराहना करूगा; लेकिन जैसे अन्य कलाओकी सम्पूर्णता हमारे जीवनमे, (और नीत्सेके अनुसार) हमारे सारे जीवनमे, कोई हस्तक्षेप नही करती, वैसे ही ब्रह्मचर्यके आदर्शको मै दूसरी बातोपर प्रभुत्व पानेका सहारा नही बनने दूगा—जनसख्या-वृद्धि-जैसी समस्याओके हल करनेका साधन तो वह और भी कम है। हमने इसका कैसे हौवा बना डाला है। युद्धकालीन बच्चोके बारेमे तो हम जानते ही है। जिन सैनिकोने अपना खून बहाकर अपने देशवासियोके लिए समरागणमे विजय प्राप्त की, क्या हम इसीलिए उन्हे इसका श्रेय न देगे कि उन्होने रणक्षेत्रमे भी बच्चे पैदा कर डाले? नही, कोई ऐसा नही करेगा। मै समझता हू कि इन बातोको मद्दे-नजर रखकर ही शास्त्रो (प्रश्नोपनिषद्)मे यह कहा गया है कि ‘ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या सयुज्यते’ अर्थात् केवल रात्रिमे ही.. (याने दिनके असाधारण समयको छोड़कर) सहवास किया जाय तो वह ब्रह्मचर्य ही जैसा है। यहा साधारण वैषयिक जीवनको भी ब्रह्मचर्यके ही समान बताया गया है, उसमे इतनी कठोरता तो जीवनके विविध रूपोमे उलट-फेर करनेके फलस्वरूप ही आई है।”

जो भी कोई ऐसी चीज हो, जिसमे कोरा शब्दाडम्बर, गालीगलौज या आरोप-आक्षेप न हो उसे मै सहर्ष प्रकाशित करूगा, जिससे पाठकोके सामने समस्याके दोनो पहलू आ जाय, और वे अपने आप किसी निर्णयपर पहुच सके। इसलिए इस पत्रको मै बडी खुशीके साथ प्रकाशित करता हू। खुद मै भी यह जाननेके लिए उत्सुक हू कि जिस बातको विज्ञान-सिद्ध और हितकारी होनेका दावा किया जाता है तथा अनेक प्रमुख व्यक्ति जिसका समर्थन करते है, उसका उज्ज्वल पक्ष देखनेकी कोशिश करनेपर भी मुझे वह क्यो इतनी खलती है?

लेकिन मेरे सन्तोषकी कोई ऐसी बात सिद्ध नही होती, जिससे मुझे इसका विश्वास हो जाय कि विवाहित जीवनमे मैथुन स्वय कोई अच्छाई है और उसे करनेवालोको उससे कोई लाभ होता है। हा, अपने खुदके तथा दूसरे अनेक अपने मित्रोके अनुभवके आधारपर इससे विपरीत बात मै जरूर कह सकता हू। हममेसे किसीने भी मैथुन द्वारा कोई मानसिक, आध्यात्मिक या शारीरिक उन्नति की हो, यह मै नही जानता। क्षणिक उत्तेजन और सन्तोष तो उससे अवश्य मिला, लेकिन उसके बाद ही थकावट भी जरूर हुई और जैसे ही उस थकावटका असर मिटा नही कि मैथुनकी इच्छा तुरन्त ही फिर जागृत हो गई। हालाकि मै सदासे जागरूक रहा हू, फिर भी अच्छी तरह मुझे याद है कि इस विकारसे मेरे कामोमे बडी बाधा पडी है। इस कमजोरीको समझकर ही मैने आत्म-सयमका रास्ता पकडा, और इसमे सन्देह नही कि तुलनात्मक रूपसे काफी लम्बे-लम्बे समयतक मै जो बीमारीसे बचा रहता हू और शारीरिक एव मानसिक रूपसे जो इतना अधिक और विचित्र प्रकारका काम कर सकता हू कि जिसे देखनेवालोने अदभुत बतलाया है, उसका कारण मेरा यह आत्म-सयम या ब्रह्मचर्य-पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त सज्जनने जो-कुछ पढा उसका उन्होने गलत अर्थ लगाया है। मनुष्य कलाकार और उत्पादक है इसमे तो कोई शक नही, सुन्दरता और रग-बिरगापन भी उसे चाहिए ही, लेकिन मनुष्यकी कलात्मक और उत्पादक प्रवृत्तिने अपने सर्वोत्तम रूपमे उसे यही सिखाया है कि वह आत्म-सयममे कलाका और अनुत्पादक (जो सन्तानोत्पत्तिके लिए न हो) ऐसे सहवासमे अ-सुन्दरताका दर्शन करे। उसमे कलात्मकताकी जो भावना है, उसने उसे विवेकपूर्वक यह जाननेकी शिक्षा दी है कि विविध रगोका चाहे-जैसा मिश्रण सौन्दर्यका चिह्न नही है, और न हर तरहका आनन्द ही अपने-आपमे कोई अच्छाई है। कलाकी ओर उसकी जो दृष्टि है उसने उसे यह सिखाया है कि वह उपयोगितामे ही आनन्दकी खोज करे, याने वही आनन्दोपभोग करे, जो हितकर हो। इस प्रकार अपने विकासके प्रारम्भिक कालमे ही उसने यह जान लिया था कि खानेके लिए ही उसे

खाना नही खाना चाहिए, जैसा कि हममेसे कुछ लोग अभी भी करते हैं; बल्कि जीवन टिका रहे इसलिए खाना चाहिए। बादमे उसने यह भी जाना कि जीवित रहनेके लिए ही उसे जीवित नही रहना चाहिए, बल्कि अपने सहजीवियो और उनके द्वारा उस प्रभुकी सेवाके लिए उसे जीना चाहिए, जिसने उसे तथा उन सबको बनाया या पैदा किया हैं। इसी प्रकार जब उसने विषय-सहवास या मैथुनजनित आनन्दकी बात पर विचार किया तो उसे मालूम पडा कि अन्य प्रत्येक इन्द्रियकी भाति जननेद्रियका भी उपयोग दुरुपयोग होता है और इसका उचित कार्य याने सदुपयोग इसीमे है कि केवल प्रजनन या सन्तानोत्पत्तिके ही लिए सहवास किया जाय इसके सिवा और किसी प्रयोजनसे किया जानेवाला सहवास अ-सुन्दर है और ऐसा करनेवाला व्यक्ति और उसकी नस्लके लिए उसके बहुत भयकर परिणाम हो सकते हैं। मै समझता हू, अब इस दलीलको और आगे बढानेकी कोई जरूरत नही।

उक्त सज्जनका यह कहना ठीक है कि मनुष्य आवश्यकतासे प्रेरित होकर कलाकी रचना करता है। इस प्रकार आवश्यकता न केवल आविष्कारकी जननी है, वल्कि कलाकी भी जननी हैं। इसलिए जिस कलाका आधार आवश्यकता नही हैं, उससे हमे सावधान रहना चाहिए।

साथ ही, अपनी हरेक इच्छाको हमे आवश्यकताका नाम नही देना चाहिए। मनुष्यकी स्थिति तो एक प्रकारसे प्रयोगात्मक है। इस बीच आसुरी और दैवी दोनो प्रकारकी शक्तिया अपने खेल खेलती है। किसी भी समय वह प्रलोभनका शिकार हो सकता है। अत प्रलोभनसे लडते हुए, उनका शिकार न वननेके रूपमे उसे अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिए। जो अपने माने हुए बाहरी दुश्मनोसे तो लडता है, किन्तु अपने अन्दरके विविध शत्रुओके आगे अगुली भी नही उठा सकता या उन्हे अपना मित्र समझनेकी गलती करता है, वह योद्धा नही है। "उसे युद्ध तो करना ही चाहिए"—लेकिन उक्त सज्जनका यह कहना गलत है "कि उसे भी उसने (मनुष्यने) एक महान् कलाके ही रूपमे परिणत कर दिया है।" क्योकि युद्धकी कला तो हमने अभी शायद ही सीखी हो। हमने तो झूठे युद्धको

उसी तरह सच्चा मान लिया है, जैसे हमारे पूर्व पुरुषोने बलिदानका गलत अर्थ लगाकर वजाय अपनी दुर्वासनाओके, बेचारे निर्दोष पशुओका बलिदान शुरू कर दिया। अबीसीनियाकी सीमामे आज जो-कुछ हो रहा है, उसमे निश्चय ही न तो कोई सौन्दर्य है और न कोई कला। उक्त सज्जनने उदाहरणके लिए जो नाम चुने है, वे भी (अपने) दुर्भाग्यसे ठीक नही चुने, क्योकि रूसो, रस्किन, थोरो और टॉलस्टाय तो अपने समयमे प्रथम श्रेणीके क़लाकार थे और उनके नाम हममेसे अनेकोके मरकर भुला दिये जानेके बाद भी वैसे ही अमर रहेगे।

'प्रकृति' शब्दका उक्त सज्जनने जो उपयोग किया है, वह भी ठीक नही किया मालूम पडता है। प्रकृतिका अनुसरण या अध्ययन करनेके लिए जब मनुष्योको प्रेरित किया जाता है तो उनसे यह नही कहा जाता कि वे जगली कीडे-मकोडो या शेरकी तरह काम करने लगे, बल्कि यह अभिप्राय होता है कि मनुष्यकी प्रकृतिका उसके सर्वोत्तम रूपमे अध्ययन किया जाय। मेरे खयालसे वह सर्वोत्तम रूप मनुष्यकी नई सृष्टि पैदा करनेकी प्रकृति है, या जो-कुछ भी वह हो, उसीके अध्ययनके लिए कहा जाता है, लेकिन शायद इस बातको जाननेके लिए काफी प्रयत्नकी आवश्यकता है। पुराने लोगोके उदाहरण देना आजकल ठीक नही है। उक्त सज्जनसे मेरा कहना है कि नीत्से या प्रश्नोपनिषद्को बीचमे घुसेडना व्यर्थ है। मेरे लिए तो इस बारेमे अब उद्धरणोकी कोई जरूरत नही रही है। देखना यह है कि जिस बारेमे हम चर्चा कर रहे है, उसमे तर्क क्या कहता है? प्रश्न यह है कि हम जो यह कहते है कि जननेद्रियका सदुपयोग केवल इसीमे है कि प्रजनन या सन्तानोत्पत्तिके लिए ही उसका उपयोग किया जाय और उसका अन्य कोई उपयोग दुरुपयोग ही है, यह बात ठीक है या नही? अगर यह ठीक है, तो फिर दुरुपयोगको रोककर सदुपयोग पर जानेमे कितनी ही कठिनाई क्यो न हो, उससे वैज्ञानिक शोधकको घबराना नही चाहिए।

हरिजन सेवक,

४ अप्रैल १९३६

: १४ :

सुधारक बहनोंसे

एक वहनसे गम्भीरतापूर्वक मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे भय होता है कि कृत्रिम सन्तति-निरोध-सम्वन्धी मेरी स्थितिको अभीतक लोगोने काफी अच्छी तरह नही समझा। कृत्रिम सन्तति-निरोधके साधनोका मैं जो विरोध करता हू वह इस कारण नही कि वे हमारे यहा पश्चिमसे आये है। कुछ पश्चिमी चीजे तो हमारे लिए वैसी ही उपयोगी है जैसी कि वे पश्चिमके लिए है और कृतज्ञताके साथ मे उनका प्रयोग करता हू। अतएव कृत्रिम सन्तति-निरोधके साधनोसे मेरा विरोध तो केवल उनके गुण-दोषकी दृष्टिसे ही है।

मैं यह मानता हू कि कृत्रिम सन्तति-निग्रहके साधनोका प्रतिपादन करनेवालोमे जो सबसे अधिक बुद्धिमान् है वे उन्हे उन स्त्रियोतक ही मर्यादित रखना चाहते है जो सन्तानोत्पत्तिसे वचते हुए अपनी और अपने पतियोकी विषय-वासनाको तृप्त करना चाहती है, लेकिन मेरे खयालमे, मानव-प्राणियोमे यह इच्छा अस्वाभाविक है और इसको तृप्त करना मानव-कुटुम्वकी आध्यात्मिक गतिके लिए घातक है। इसके खिलाफ अन्य बातोके साथ अक्सर पेन के लार्ड डासनकी यह राय पेश की जाती है

"विपय-सम्वन्धी प्रेम ससारकी एक प्रचड और प्रधान शक्ति है। हमारे अन्दर यह भावना इतनी तीव्र, मौलिक और वलवती होती है कि हमे इसके प्रभावको तथ्य-रूपमे स्वीकार करना ही होगा, आप इसका दमन नही कर सकते। आप चाहे तो इसे अच्छे रूपमे परिणत कर सकते है, किन्तु इसके प्रवाहको रोक नही सकते। और यदि इसके प्रवाहका स्रोत अपर्याप्त या जरूरतसे ज्यादा प्रतिवन्ध-युक्त हुआ तो यह अनियमित

स्रोतोसे निकल पडेगा। आत्म-सयममे हानिकी सम्भावना रहती है। और यदि किसी जातिमे विवाह होनेमे कठिनाई होती हो या वहुत देरमे जाकर विवाह होते हो तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अनुचित सम्बन्धोकी वृद्धि हो जायगी। इस वातको तो सभी मानते है कि शारीरिक सहवास तभी होना चाहिए जव मन और आत्मा भी उसके अनुकूल हो और इस वातपर भी सब सहमत है कि सन्तानोत्पत्ति ही उसका प्रधान उद्देश्य है; लेकिन क्या यह सच नही है कि वारम्वार हम जो सम्भोग करते है वह हमारे प्रेमका शारीरिक प्रदर्शन ही होता है, जिसमे सन्तानोत्पत्तिका कोई विचार या इरादा नही होता। तो क्या हम सव गलत ही करते आ रहे है? या, यह वात है कि धर्मका हमारे वास्तविक जीवनसे आवश्यक सम्पर्क नही है, जिसके कारण उसके और सर्वसाधारणके बीच खाई पड गई है? जबतक किसी सत्ता या शासकका, और धर्माधिकारियोको भी मै इन्हीमे शुमार करता हू, रुख नौजवानोके प्रति अधिक स्पष्ट, अधिक साहसपूर्ण और वास्तविकताके अधिक अनुकूल न होगा तवतक उनकी वफादारी कभी प्राप्त नही होगी।

"फिर सन्तानोत्पत्तिके अलावा भी विषय-प्रेमका अपना प्रयोजन है। विवाहित जीवनमे स्वस्थ और सुखी रहनेके लिए यह अनिवार्य है। वैषयिक सहवास यदि परमेश्वरकी देन है तो उसके उपयोगका ज्ञान भी प्राप्त करनेके लायक है। अपने क्षेत्रमे यह इस तरह पैदा किया जाना चाहिए जिससे न केवल एक की; वल्कि सम्भोग करने वाले स्त्री-पुरुष दोनोकी शारीरिक तृप्ति हो। इस तरह एक-दूसरेको जो शारीरिक आनन्द प्राप्त होगा उससे उन दोनोमे एक स्थायी वन्धन स्थापित होगा, उससे उनका विवाह-सम्वन्ध स्थिर होगा। अत्यधिक विषय-प्रेमसे उतने विवाह असफल नही होते जितने कि अपर्याप्त और वेढगे वैषयिक प्रेमसे होते है। कामवासना अच्छी चीज़ है, ऐसे अधिकाश व्यक्ति, जो किसी भी रूपमे अच्छे है, काम-भावना रखनेमे समर्थ है। काम-भावना-विहीन विषय-प्रेम तो विलकुल वेजान चीज है। दूसरी ओर ऐयाशी पेटूपनके समान एक शारीरिक अति है। अव चूकि 'प्रार्थना-पुस्तक' के परिवर्द्धन पर विचार हो रहा है,

मै यह बडे आदरके साथ सुझाना चाहता हू कि उसके विवाह-विधानमे यह और जोड दिया जाय कि 'स्त्री और पुरुषके पारस्परिक प्रेमकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही विवाहका उद्देश्य है ।'

"अब मै यह सब छोडकर सन्तति-निग्रहके सबसे जरूरी प्रश्न पर आता हू । सन्तति-निग्रह स्थायी होनेके लिए आया है । वह तो अव जम चुका है . . और अच्छा हो या बुरा, उसे हमको स्वीकार करना ही होगा। इन्कार करनेसे उसका अन्त नही होगा । जिन कारणोसे प्रेरित होकर अभिभावक लोग सन्तति-निग्रह करना चाहते है, उनमे कभी-कभी तो स्वार्थ होता है, लेकिन वे बहुधा आदरणीय और उचित ही होते है। विवाह करके अपनी सन्तानको जीवन-सघर्षके योग्य बनाना, मर्यादित आय, जीवन-निर्वाहका खर्च, विविध करोका बोझ—ये सब इसके लिए ज़ोरदार कारण है । और फिर शिक्षितवर्गके अन्दर स्त्रिया अपने पतियोके काम-धन्धो तथा सार्वजनिक जीवनमे भाग लेनेकी भी इच्छा करती है । यदि वे बार-बार गर्भवती होती रहे तो वे इच्छाए पूरी नही हो सकती । यदि सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोका सहारा न लिया जाय तो देरमे विवाह करनेका तरीका अख्तियार करना पडेगा, लेकिन ऐसा होनेपर उसके साथ अनुचित (गुप्त) रूपसे अपनी विषयेच्छा तृप्त करनेके विविध दुष्परिणाम सामने आयगे । एक ओर तो हम ऐसे अनुचित सम्बन्धोकी बुराई करे और दूसरी ओर विवाहके मार्गमे बाधाएं उपस्थित करे तो उससे कोई लाभ न होगा । बहुत-से लोग कहते है 'सम्भव है कि सन्तति-निग्रह करना ठीक हो सकता है वह तो स्वेच्छापूर्ण सयम ही है; लेकिन ऐसा सयम या तो व्यर्थ होगा या यदि उसका कोई असर पडा तो वह अव्यावहारिक और स्वास्थ्य व सुखके लिए हानिकर होगा ।' परिवारके लिए, मान लो, हम चार बच्चोकी मर्यादा बना ले, तो यह विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए एक तरहका सयम ही होगा, जो देर-देरमे सतानोत्पत्ति होनेके कारण ब्रह्मचर्यके समान ही माना जायगा । और जब हम इस बातपर ध्यान दे कि आर्थिक कठिनाईके कारण विवाहित जीवनके प्रारम्भिक वर्षोमे बहुत कठोर सयम करना पडेगा, जब कि विषयेच्छा बहुत प्रबल रहती है, तो मै

कहता हू कि वह इच्छा इतनी तीव्र होगी कि अधिकाश व्यक्तियोके लिए उसका दमन करना असभव होगा और यदि उसे जवर्दस्ती दबानेका यत्न किया तो स्वास्थ्य और सुखपर उसका बहुत बडा असर पडेगा और नैतिकताके लिए भी वह बहुत खतरनाक होगा। यह तो विलकुल अस्वाभाविक वात है। यह तो वही बात हुई कि प्यासे आदमीके पास पानी रखकर उससे कहा जाय कि खबरदार, इसे पीना मत। नही, सयम द्वारा सन्तति-निग्रहसे कोई लाभ न होगा और यदि इसका असर हुआ भी तो वह विनाशक होगा।

"यह तो अस्वाभाविक और मूलत अनैतिक वात कही जाती है। सभ्यताका तो काम ही यह है कि प्राकृतिक शक्तियोको वशमे करके उन्हे इस तरह परिणत कर लिया जाय कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग कर सके। वच्चा आसानीसे पैदा करनेके लिए जव पहले-पहल औजारो (Anaesthetics) का प्रयोग शुरू हुआ तो यही शोर मचाया गया था कि ऐसा करना अस्वाभाविक और अधार्मिक काम है, क्योकि प्रसव-पीडा सहनेके लिए ही तो भगवान्ने स्त्रियोको वनाया है। यही वात कृत्रिम साधनोसे सन्तति-निग्रह करनेकी है, उसमे भी इससे अधिक कोई अस्वाभाविकता नही है। उनका प्रयोग तो अच्छा ही है, अलवत्ता दुरुपयोग नही करना चाहिए। अतमे क्या मै यह प्रार्थना करू कि धर्माधिकारी लोग इस प्रश्नका विचार करते समय इन पुरातन परम्पराओकी परवाह नही करेगे जो व्यर्थ-सी हो गई है, वल्कि ऐसे ही अन्य कुछ प्रश्नोकी तरह, नये ससारकी आवश्यकताओ और आधुनिक ज्ञानके प्रकाशमे ही इस प्रश्नपर विचार करेगे ?"

यह कितने वडे डॉक्टर है इससे इन्कार नही किया जा सकता, लेकिन डॉक्टरके रूपमे उनका जो वडप्पन है, उसके लिए काफी आदरका भाव रखते हुए भी मै इस वातपर सन्देह करनेका साहस करता हू कि उनका यह कथन कहातक ठीक है, खासकर उस हालतमे जवकि यह उन स्त्री-पुरुषोके अनुभवके विपरीत है, जिन्होने आत्म-सयमका जीवन विताया है, किन्तु उससे उनकी कोई नैतिक या शारीरिक हानि नही हुई। वस्तुत बात यह है कि डॉक्टर लोग आमतौरपर उन्ही लोगोके सम्पर्कमे आते है

जो स्वास्थ्यके नियमोकी अवहेलना करके कोई-न-कोई बीमारी मोल ले लेते है। इसलिए बीमारीके अच्छा होनेके लिए क्या करना चाहिए, यह तो वे अक्सर सफलताके साथ बता देते है, लेकिन यह बात वे हमेशा नही जानते कि स्वस्थ स्त्री-पुरुष किसी खास दिशामे क्या कर सकते है ? अतएव विवाहित स्त्री-पुरुषो पर सयमके जो असर पडनेकी बात लार्ड डासन कहते है उसे अत्यन्त सावधानीके साथ ग्रहण करना चाहिए। इसमे सन्देह नही कि विवाहित स्त्री-पुरुष अपनी विषय-तृप्तिको स्वत: कोई बुराई नही मानते, उनकी प्रवृत्ति उसे वैध माननेकी ही है, लेकिन आधुनिक युगमे तो कोई बात स्वयसिद्ध नही मानी जाती और हरेक चीजकी बारीकीसे छान-बीन की जाती है। अत यह मानना सरासर गलती होगी कि चूकि अबतक हम विवाहित जीवनमे विषय-भोग करते रहे है इसलिए ऐसा करना ठीक ही है या स्वास्थ्यके लिए उसकी आवश्यकता है। बहुत-सी पुरानी प्रथाओको हम छोड चुके है और उसके परिणाम अच्छे ही हुए है। तब इस खास प्रथाको ही उन स्त्री-पुरुषोके अनुभवकी कसौटी पर क्यो न कसा जाय, जो विवाहित होते हुए भी एक-दूसरेकी सहमतिसे सयमका जीवन व्यतीत कर रहे है और उससे नैतिक तथा शारीरिक दोनो तरहका लाभ उठा रहे है ?

लेकिन मै तो, इसके अलावा, विशेष आधारपर भी भारतमे सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोका विरोधी हू। भारतमे नवयुवक यह नही जानते कि विषय-दमन क्या है ? इसमे उनका कोई दोष नही है। छोटी उम्रमे ही उनका विवाह हो जाता है, यह यहाकी प्रथा है, और विवाहित जीवनमे सयम रखनेको उनसे कोई नही कहता। माता-पिता तो अपने नाती-पोते देखनेको उत्सुक रहते है। बेचारी बाल-पत्नियोसे उसके आस-पास वाले यही आशा करते है कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती हो जाय। ऐसे वातावरणमे सन्तति-विरोधक कृत्रिम साधनोसे तो कठिनाइया और बढेगी ही। जिन बेचारी लडकियोसे यह आशा की जाती है कि वे अपने पतियोकी इच्छा-पूर्ति करेगी, उन्हे अब यह और सिखाया जायगा कि बच्चे पैदा तो न करे, पर विषय-भोग किये जायं, इसीमे उनका भला है। और इस दुहरे

उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उन्हे सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधनोका सहारा लेना होगा ।।।

मै तो विवाहित बहनोके लिए इस विद्याको बहुत घातक समझता हू । मै यह नही मानता कि पुरुषकी तरह स्त्रीकी काम-वासना भी अदम्य होती है । मेरी समझमे, पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीके लिए आत्म-सयम करना ज्यादा आसान है । हमारे देशमे जरूरत बस इसी बातकी है कि स्त्री अपने पति तकसे 'न' कह सके, ऐसी सुशिक्षा स्त्रियोको मिलनी चाहिए । स्त्रियोको हमे यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियोके हाथकी कठपुतली या औज़ार-मात्र बन जाय, यह उनके कर्तव्यका अग नही है । और कर्तव्यकी ही तरह उनके अधिकार भी है । जो लोग सीताको रामकी आज्ञानु-वर्त्तिनी दासीके रूपमे ही देखते है वे इस बातको महसूस नही करते कि उनमे स्वाधीनताकी भावना कितनी थी और राम हरेक बातमे उनका कितना ख़याल रखते थे । भारतकी स्त्रियोमे सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधन अख्तियार करनेके लिए कहना तो बिलकुल उल्टी बात है । सबसे पहले तो उन्हे मानसिक दासतासे मुक्त करना चाहिए, उन्हे अपने शरीरकी पवित्रताकी शिक्षा देकर राष्ट्र और मानवताकी सेवामे कितना गौरव है, इस बातकी शिक्षा देनी चाहिए । यह सोच लेना ठीक नही है कि भारतकी स्त्रियोका तो उद्धार ही नही हो सकता, और इसलिए सन्तानोत्पत्तिमे रुकावट डालकर अपने रहे-सहे स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए उन्हे सिर्फ सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधन ही सिखा देने चाहिए ।

जो बहने सचमुच उन स्त्रियोके दु खसे दुखी है, जिन्हे इच्छा हो या न हो फिर भी बच्चोके झमेलेमे पडना पडता है, उन्हे अधीर नही होना चाहिए । वे जो-कुछ चाहती है, वह एकदम तो कृत्रिम सन्तति-निरोधके साधनोके पक्षमे आन्दोलनसे भी नही होनेवाला है । हरेक उपायके लिए सवाल तो शिक्षाका ही है । इसलिए मेरा कहना यही है कि वह हो अच्छे ढगकी ।

हरिजन सेवक,

२ मई १९३६

: १५ :

फिर वही संयमका विषय

एक सज्जन लिखते है :

"इन दिनो आपने ब्रह्मचर्यपर जो लेख लिखे है, उनसे लोगोमे खलबली-सी मच गई है। जिनकी आपके विचारोके साथ सहानुभूति है उन्हे भी लम्बे अर्सेतक सयम रख सकना मुश्किल पड रहा है। उनकी यह दलील है कि आप अपना ही अनुभव और अभ्यास सारी मानव-जातिपर लागू कर रहे है; परन्तु आपने खुद भी तो कबूल किया है कि आप पूरे ब्रह्मचारीकी शर्ते पूरी नही कर सकते; क्योकि आप स्वय विकारसे खाली नही है और चूकि आप यह भी मानते है कि दम्पतिको सतानकी सख्या सीमित रखनेकी जरूरत है, इसलिए अधिकाश मनुष्योके लिए तो एक यही व्यावहारिक उपाय है कि वे सतति-निरोधके कृत्रिम साधन काममे लावे।"

मै अपनी मर्यादाए स्वीकार कर चुका हू। इस विवादमे तो ये ही मेरे गुण है। कारण, मेरी मर्यादाओसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मै भी अधिकाश मनुष्योकी भाति दुनयवी आदमी हू और असाधारण गुणवान् होनेका मेरा दावा भी नही है। मेरे सयमका हेतु भी बिलकुल मामूली था। मै तो देश या मनुष्य-समाजकी सेवाके खयालसे सन्तान-वृद्धि रोकना चाहता था। देश या समाजकी सेवाकी वात दूरकी है। इसकी अपेक्षा बडे कुटुम्बका पालन न कर सकना सतति-नियमनके लिए अधिक प्रबल कारण होना चाहिए। वर्तमान दृष्टिकोणसे इस पैंतीस वर्षके सयममे मुझे सफलता मिली है। फिर भी मेरा विकार नष्ट नही हुआ है और उसके विषयमे मुझे आज भी जागरूक रहनेकी ज़रूरत है। इससे भलीभाति सिद्ध है कि मै बहुत-कुछ साधारण मनुष्य हू। इसलिए मेरा कहना

है कि जो बात मेरे लिए सम्भव हुई है वही दूसरे किसी भी प्रयत्नशील मनुष्यके लिए सभव हो सकती है।

कृत्रिम उपायोके समर्थकोके साथ मेरा झगडा इस बातपर है कि वे यह मान बैठे है कि मामूली मनुष्य सयम रख ही नही सकता। कुछ लोग तो यहातक कहते हैं कि यदि वह समर्थ हो भी तो उसे सयम नही रखना चाहिए। ये लोग अपने क्षेत्रमे कितने भी बडे आदमी हो, मैं अत्यन्त विनम्रता किन्तु विश्वासके साथ कहूगा कि उन्हे इस बातका अनुभव नही है कि सयमसे क्या-क्या हो सकता है। उन्हे मानवीय आत्माके मर्यादित करनेका कोई हक नही हैं। ऐसे मामलोमे मेरे जैसे एक आदमीकी निश्चित गवाही भी, यदि वह विश्वस्त हो, तो न केवल अधिक मूल्यवान है, बल्कि निर्णायक भी है। सिर्फ इसी वजहसे कि मुझे लोग 'महात्मा' समझते है, मेरी गवाहीको निकम्मी करार दे देना गम्भीर खोजकी दृष्टिसे उचित नही है।

परन्तु एक बहनकी दलील और भी जोरदार है। उनके कहनेका मतलब यह है—"हम कृत्रिम उपायोके समर्थक लोग तो हाल हीमे सामने आये है। मैदान आप सयमके समर्थकोके हाथमे पीढियोसे, शायद हजारो वर्षोसे, रहा है, तो आप लोगोने क्या कर दिखाया? क्या दुनियाने सयमका सबक सीख लिया है? बच्चोके भारसे लदे हुए परिवारोकी दुर्दशा रोकनेके लिए आप लोगोने क्या किया है? आहत माताओकी पुकारको आप लोगोने सुना है? आइए, अब भी मैदान आप लोगोके लिए खाली है। आप सयमका समर्थन करते रहिए, हमे इसकी चिन्ता नही है, और अगर आप पतियोकी जबर्दस्तीमे स्त्रियोको बचा सके तो हम आपकी सफलता भी चाहेगे, मगर आप हमारे तरीकोकी निन्दा क्यो करते है? हम तो मनुष्यकी साधारण कमजोरियो और आदतोके लिए गुजाइश रखकर चलते है और हम जो उपाय करते है अगर उनका ठीक-ठीक प्रयोग किया जाय, तो वे करीब-करीब अचूक साबित होते है।"

इस व्यगमे स्त्री-हृदयकी पीडा भरी हुई है। जो कुटुम्ब बच्चोकी बढती हुई सख्याके मारे सदा दरिद्र रहते है, उनके लिए इस बहनका

हृदय दयासे भर गया है। यह सभी जानते है कि मानवीय दु खकी पुकार पत्थरके दिलोको भी पिघला देती है। भला यह पुकार उच्चात्मा बहनोको प्रभावित किये बिना कैसे रह सकती है ? पर अगर हम भावावेशमे बह जाय और डूबतेकी तरह किसी भी तिनकेका सहारा ढूढने लगे तो ऐसी पुकार हमे आसानीसे गुमराह भी कर सकती है।

हम ऐसे जमानेमे रह रहे है, जिसमे विचार और उनके महत्व बहुत जल्दी-जल्दी बदल रहे है। धीरे-धीरे होनेवाले परिणामोसे हमको सतोष नही होता। हमे अपने इन सजातीय, बल्कि केवल अपने ही देशकी भलाईसे तसल्ली नही होती। हमे सारे मानव-समाजका खयाल होता है, मानवताकी उद्देश्य-सिद्धिमे यह कम सफलता नही है।

परन्तु मानवीय दु खोका इलाज धीरज छोडनेसे नही होगा और सब पुरानी बातोको सिर्फ पुरानी होनेकी वजहसे छोड देनेसे होगा। हमने पूर्व जन्ममे भी वे ही स्वप्न देखे थे जो आज हमे उत्साहसे अनुप्राणित कर रहे है। शायद उन स्वप्नोमे इतनी स्पष्टता न रही हो। यह भी सभव है कि एक ही प्रकारके दु खोका जो उपाय उन्होने बताया वह हमारे मानसके आशातीत रूपमे विशाल हो जानेपर लागू हो। और मेरा दावा तो निश्चित अनुभवके आधार पर यह है कि जिस तरह सत्य और अहिसा मुट्ठी-भर लोगोके लिए ही नही है, बल्कि सारे मनुष्य-समाजके लिए रोजमर्राके कामकी चीजे है, ठीक उसी तरह सयम थोडे-से महात्माओ-के लिए नही, बल्कि सब मनुष्योके लिए है। और जिस तरह बहुत-से आदमियोके झूठे और हिसक होनेपर भी मनुष्य-समाजको अपना आदर्श नीचा नही करना चाहिए, उसी प्रकार बहुतसे या अधिकाश लोग भी सयम-का सदेश स्वीकार न कर सके तो इस विषयमे भी हमे अपना आदर्श नीचा नही करना चाहिए।

बुद्धिमान् न्यायाधीश वह है जो विकट मामला सामने होनेपर भी गलत फैसला नही करता। लोगोकी नजरोमे वह अपनेको कठोर हृदय बन जाने देगा; क्योकि वह जानता है कि कानूनको बिगाड़ देनेमे सच्ची दया नही है। हमे नाशवान शरीर या इन्द्रियोकी दुर्बलताको भीतर

विराजमान अविनाशी आत्माकी दुर्बलता नही समझ लेना चाहिए। हमे तो आत्माके नियमानुसार शरीरको साधना चाहिए। मेरी विनम्र सम्मतिमे ये नियम थोडे-से और अटल है और इन्हे सभी मनुष्य समझ और पाल सकते है। इन नियमोको पालनेमे कम-ज्यादा सफलता मिल सकती है, पर ये लागू तो सभीपर होते है। अगर हममे श्रद्धा है तो उसे सिर्फ इसीलिए नही छोड देना चाहिए कि मनुष्य-समाजको अपने ध्येयकी प्राप्तिमे या उसके निकट पहुचनेमे लाखो बरस लगेगे। 'जवाहरलाल' की भाषामे, हमारी विचार-सरणी ठीक होनी चाहिए।

परन्तु उस बहनकी चुनौतीका जवाब देना तो बाकी ही रह गया। सयमवादी हाथ-पर-हाथ धरे नही बैठे है। उनका प्रचार-कार्य जारी है। जैसे कृत्रिम साधनोसे उनके साधन भिन्न है, वैसे ही उनका प्रचारका तरीका अलग है, और होना चाहिए। सयमवादियोको चिकित्सालयोकी ज़रूरत नही है, वे अपने उपायोका विज्ञापन भी नही कर सकते, क्योकि यह कोई बेचने या दे देनेकी चीज़े तो है नही। कृत्रिम साधनोकी टीका करना और उनके उपयोगसे लोगोको सचेत करते रहना इस प्रचार-कार्यका ही अग है। उनके कार्यका रचनात्मक पक्ष तो सदा रहा ही है, किन्तु वह तो स्वभावत ही अदृश्य होता है। सयमका समर्थन कभी बन्द नही किया गया है और इसका सबसे कारगर तरीका आचरणीय है। सयमका सफल अभ्यास करनेवाले सच्चे लोग जितने ज्यादा होगे उतना ही यह प्रचार-कार्य अधिक कारगर होगा।

हरिजन सेवक,
३० मई १९३६

: १६ :

संयम द्वारा सन्तति-निग्रह

निम्नलिखित पत्र मेरे पास बहुत दिनो पडा रहा :

"आजकल सारी दुनियामे सन्तति-निग्रहका समर्थन हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे बाहर नही। आपके सयम-सम्बन्धी लेखोको मैंने पढा है। सयममे मेरा विश्वास है।

अहमदाबादमे थोडे दिन पहले एक सन्तति-निग्रह-समिति स्थापित हुई है। ये लोग दवा, टिकिया, टयूब वगैरहका समर्थन करके स्त्रियोको हमेशाके लिए सभोगवती करना चाहते है।

मुझे आश्चर्य होता है कि जीवनके अखीरी किनारे पर बैठे हुए लोग किसलिए प्रजाको निचोड डालनेकी हिमायत करते है !

इसके बजाय सन्तति-नियमन-समिति स्थापित की होती तो ? आप गुजरात पधार रहे है, इसलिए मेरी ऊपरकी प्रार्थना ध्यानमे रखकर गुजरातके नारी-तेजको प्रकाश दीजिएगा।

आजके डॉक्टर और वैद्य मानते है कि रोगियोको सयमका पाठ सिखानेसे उनकी कमाई मारी जायगी और उन्हे भूखो मरना पडेगा।

इस प्रकारके सन्तति-निग्रहसे समाज बहुत गहरे और अधेरे खड्डमे चला जायगा। उसे अगर ऊपर और प्रकाशमे रहना है तो सयमको अपनाये बिना छुटकारा नही। बगैर सयमके मनुष्य कभी ऊचा नही चढ सकेगा। इससे तो जितना व्यभिचार आज है, उससे भी अधिक बढेगा। और फिर रोगका तो पूछना ही क्या ?"

इस बीचमे मै अहमदाबाद हो आया हू। उपर्युक्त विषयपर तो मुझे वहा अपने विचार प्रकट करनेका अवसर मिला नही; पर लेखकके इस कथनको मै अवश्य मानता हू कि सन्तति-निग्रहका नियमन केवल

सयमसे ही सिद्ध किया जाय । दूसरी रीतिसे नियमन करनेमे अनेक दोप उत्पन्न होनेकी सम्भावना है । जहा इस नियमने घर कर लिया है, वहा दोष साफ दिखाई दे रहे हैं । इसमे कोई आश्चर्य नही, जो सयम-रहित नियमनके समर्थक इन दोषोको नही देख सकते, क्योकि सयम-रहित नियमनने नीतिके नामसे प्रवेश किया है ।

अहमदाबादमे जो समिति वनाई गई है उसके हेतुके विषयमे यह कहना ज्यादती है कि लेखकने जैसा लिखा है वह वैसा ही है, पर उसका हेतु चाहे जैसा हो, तो भी उसकी प्रवृत्तिका परिणाम तो अवश्य विषय-भोग बढानेमे ही आना है । पानीको उडेले तो वह नीचे ही जायगा, इसी तरह विषय-भोग वढानेवाली युक्तिया रची जायगी तो उनसे वह भोग बढेगा ही ।

इसी प्रकार डॉक्टर और वैद्य सयमका पाठ सिखाय तो उनकी कमाई मारी जायगी, इससे वे सयम नही सिखाते, ऐसा मानना भी ज्यादती है । सयमका पाठ सिखाना डॉक्टर-वैद्योने अपना क्षेत्र आजतक माना नही, मगर डॉक्टर और वैद्य इस तरफ ढलते जा रहे हैं, इस बातके चिह्न जरूर नज़र आते हैं । उनका क्षेत्र व्याधियोके कारण शोधने और रोग मिटाने-का है । अगर वे व्याधियोके कारणोमे असयम-स्वच्छदताको अग्रस्थान न देगे तो यह कहना चाहिए कि उनका दिवाला निकलनेका समय आ गया है । ज्यो-ज्यो जन-समाजकी समझ-शक्ति वढती जाती है, त्यो-त्यो उसे, अगर रोग जड-मूलसे नष्ट न हुआ तो सन्तोष होनेका नही और जवतक जन-समाज सयमकी ओर नही ढलेगा, व्याधियोको रोकनके नियमोका पालन नही करेगा, तवतक आरोग्यकी रक्षा करना अशक्य है । यह इतना स्पष्ट है कि अन्तमे इसपर सभी कोई ध्यान देगे, और प्रामाणिक डॉक्टर सयमके मार्ग पर अधिक-से-अधिक जोर देगे । सयम-रहित निग्रह भोग वढानेमे अधिक-से-अधिक हाथ बटायगा, इस विषयमे मुझे तो शका नही । इसलिए अहमदावादकी समिति अधिक गहरे उतरकर असयमके भयकर परिणामोपर विचार करके स्त्रियोको सयमकी सरलता और आवश्यकताका ज्ञान करानेमे अपने समयका उपयोग करे, तो आवश्यक परिणाम प्राप्त हो सकेगा, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है । (हरिजन सेवक, १२.९.३६)

: १७ :

भ्रष्टताकी ओर

एक युवकने लिखा है :

"ससारका काया-कल्प करनेके लिए आप चाहते है कि प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो जाय, पर मेरी समझमे ठीक-ठीक नही आ रहा है। आखिर इस सच्चरित्रतासे आपका क्या अभिप्राय है ? यह केवल स्त्री-पुरुषतक ही सीमित है या आपका मतलब मनुष्यके समस्त व्यवहारोसे है ? मुझे तो शक है कि आपका मतलब केवल स्त्री-पुरुषोके सम्बन्ध तक ही सीमित है, क्योकि आप अपने पूजीपति और जमीदार दोस्तोको तो कभी-कभी यह बतानेका कष्ट नही करते कि वे कैसे अन्याय-पूर्वक मजदूरो और किसानो-का पेट काट-काटकर अपनी जेब भरते रहते है। वहा बेचारे युवक और युवतियोकी चारित्रिक गलतियो पर उनकी निन्दा और ताडना करते हुए आप कभी थकते ही नही; और सदा उनके सामने ब्रह्मचर्य-व्रतका आदर्श उपस्थित करते रहते है। आपका यह दावा है कि आप भारतीय युवकोके हृदयको जानते है। मै किसीका प्रतिनिधि होनेका दावा नही करता; पर एक युवककी हैसियतसे ही मै कहता हू कि आपका यह दावा गलत है। मालूम होता है, आपको पता ही नही कि आजकलके मध्यम-वर्गके युवक-को किन परिस्थितियोमेसे गुजरना पडता है। बेकारीकी यह भयकर चिता, आदमीको पीस डालनेवाली ये सामाजिक रूढिया और परम्पराए, और सहशिक्षाका यह प्रलोभनकारी विघातक वातावरण, इनके बीच वह बेचारा आन्दोलित होता रहता है। नवीनता और प्राचीनताका यह सघर्ष उसकी सारी शक्तियोको चूर-चूर कर रहा है और वह हार कर लाचार हो रहा है। मै आपसे हाथ जोडकर प्रार्थना करता हू कि इन बेचारोको थोडी रहमकी नजरसे देखिए, दया कीजिए। उन्हे कृपया अपने सन्यासाश्रमके नीति-

शास्त्रकी कसौटी पर न कसिये। मेरा तो खयाल है कि अगर दोनोकी मर्जी हो और परस्पर प्रेम हो तो स्त्री-पुरुष, चाहे वे पति-पत्नी न भी हो तो भी आखिर जो चाहे कर सकते है। मेरी रायमे तो वह सदाचार ही होगा। और जबसे सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोका आविष्कार हुआ है, सयोग-व्यवस्थाकी दृष्टिसे विवाह-प्रथाका नैतिक आधार तो छिन्न-भिन्न हो गया है। अब तो केवल बच्चोके पालन-पोषण और रक्षा-भरके लिए उसका उपयोग रह गया है। ये बाते सुनकर शायद आपके दिलको चोट पहुचेगी, पर मै प्रार्थना करता हू कि आजकलके युवकोको भला-बुरा कहनेसे पहले कृपया अपनी तरुणाईको न भूलियेगा। आप खुद क्या कम कामी थे। कितना विषय-भोग करते थे? मैथुनके प्रति आपकी घृणा शायद आपकी इस अतिका ही परिणाम है। इसलिए अब आप ऐसे सन्यासी बन रहे है और इसमे आपको पाप-ही-पाप नज़र आता है। अगर तुलना ही करने लगे तो मेरा तो खयाल है कि आजकलके कई युवक इस विषयमे ज़रूर आपसे बेहतर सावित होगे।"

इस तरहके अनेक पत्र मेरे पास आते है। इस युवकसे मेरा परिचय हुए लगभग तीन महीने हुए होगे, पर इतने थोडे समयमे ही जहातक मुझे पता है, इसके अन्दर कई परिवर्तन हो चुके है। अब भी वह एक गम्भीर परिस्थितिमेसे ही गुज़र रहा है। ऊपरका उद्धरण तो उसके एक लम्बे पत्रका अश है। उसके और भी पत्र मेरे पास है, जिन्हे अगर मै चाहू तो प्रकाशित कर सकता हू, और उसे प्रसन्नता ही होगी, पर मैने ऊपर जो अश दिया है वह कितने ही युवकोके विचारो और प्रवृत्तियोको प्रगट करता है।

बेशक युवक और युवतियोसे मुझे अवश्य सहानुभूति है। अपनी जवानीके दिनोकी भी मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे तो देशके युवकोपर श्रद्धा है, इसीलिए तो उनकी समस्याओपर विचार करते हुए मै कभी थकता नही।

मेरे लिए तो नीति, सदाचार और धर्म एक ही बात है। आदमी अगर पूरी तरहसे सदाचारी हो, पर धार्मिक न हो, तो उसका जीवन बालू-

पर खडे किये गये मकानकी तरह समझिए। इसी तरह भ्रष्ट चरित्रका धर्माचरण भी दूसरोको दिखाने-भरके लिए और साम्प्रदायिक उपद्रवोका कारण होता है। नीतिमे सत्य, अहिसा और ब्रह्मचर्य भी आ जाता है। मनुष्य-जातिने आजतक सदाचारके जितने नियमोका पालन किया है वे सब इन तीन सर्व-प्रधान गुणोसे सम्बन्धित या प्राप्त हो सकते है। ओर अहिसा तथा ब्रह्मचर्य सत्यसे प्राप्त हो सकते है, जो मेरे लिए प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

सयम-हीन स्त्री या पुरुष तो गया-बीता समझिए। इन्द्रियोको निरंकुश छोड देने वालेका जीवन कर्णधार-हीन नावके समान है, जो निश्चय ही पहली चट्टानसे ही टकराकर चूर-चूर हो जायगी। इसलिए मै सदैवसे सयम और ब्रह्मचर्यपर इतना जोर दे रहा हू। पत्र-प्रेषकके इस कथनमे यहातक तो जरूर सत्य है कि इन सन्तति-निरोधक साधनोने स्त्री-पुरुषोकी सम्बन्ध-विषयक समाजकी कल्पनाओको काफी बदल दिया है, पर अगर संयोगको नीति-युक्त बनानेके लिए स्त्री-पुरुषकी—चाहे वे पति-पत्नी हो या न भी हो—केवल पारस्परिक अनुमति ही का होना काफी हो, तब तो इसी युक्तिके अनुसार समान लिंग वाले दो व्यक्तियोके बीचका सम्बन्ध भी नीतियुक्त बन जायगा और सयोग-व्यवस्था-सम्बन्धी सारी मर्यादा ही नष्ट हो जायगी। और तब तो निस्सदेह देशके युवकोके भाग्यमे सिवा पराभव और दुर्दशाके और कुछ है ही नही। हिन्दुस्तानमे ऐसे कई पुरुष और स्त्रिया है, जो विषय-वासनामे बुरी तरह फसे हुए है, पर अगर उससे मुक्त हो सके तो वे बहुत खुश हो। विषय-वासना ससारके किसी भी नशेसे अधिक मादक है। यह आशा करना बेकार है कि सन्तति-निरोधक साधनोका व्यवहार सन्तति-नियमन तक ही सीमिति रहेगा। हमारे जीवनके शुद्ध, सभ्य रहनेकी तभीतक आशा की जा सकती है, जबतक कि सयोगसे प्रजननका निश्चित सम्बन्ध है। यह मान लेनेपर अप्राकृतिक मैथुन तो बिलकुल उड जाता है, और कुछ हदतक पर-स्त्री-गमनपर भी नियन्त्रण हो जाता है। सयोगको उसके स्वाभाविक परिणामसे अलग करनेका अवश्यम्भावी परिणाम यही होगा कि समाजसे स्त्री-पुरुषकी

सयोग-सम्बन्धी सारी मर्यादा उठ जायगी और अगर सद्भाग्यसे अप्राकृतिक व्यभिचारको प्रत्यक्ष प्रोत्साहन न भी मिला तो भी समाजमे निर्गुण व्यभिचार फैले बिना नही रहेगा।

सयोग-समस्या पर विचार करते समय अपना व्यक्तिगत अनुभव कहना भी अनुचित न होगा। जिन पाठकोने मेरी 'आत्म-कथा' नही पढी है, वे मेरी विषय-लोलुपताके विषयमे कही इस पत्र-प्रेषककी तरह अपने विचार न बना ले। सबसे पहली बात तो यह है कि मै चाहे कितना ही विषयी रहा होऊ, मेरी विषय-वृत्ति अपनी पत्नीतक ही सीमिति थी। फिर मै एक बहुत बडे परिवारमे रहता था, जिससे रातके कुछ घटोको छोडकर हमे एकात कभी मिलता ही न था। दूसरे तेईस वर्षकी अवस्थामे ही मै इतना समझने लायक हो गया था कि महज़ भोगके लिए सयोग करना निरी बेवकूफी है और सन् १८८६ मे, यानी जब मै तीस सालका था, पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा लेनेका मै निश्चय कर चुका था। मुझे सन्यासी कहना गलत होगा। मेरे जीवनके नियमात्मक आदर्श तो सारी मानवताके लिए ग्रहण करने योग्य है। मैने उन्हे धीरे-धीरे, ज्यो-ज्यो मेरा जीवन-विकास होता गया, प्राप्त किया है। हरेक कदम मैने पूरी तरह सोच-समझकर गहरे मननके बाद रखा है। ब्रह्मचर्य और अहिसा दोनो मेरे व्यक्तिगत अनुभवसे मुझे प्राप्त हुए है, और अपने सार्वजनिक कर्तव्योको पूरा करनेके लिए उनका पालन नितान्त आवश्यक था। दक्षिण अफ्रीकामे एक गृहस्थ, एक बैरिस्टर, एक समाज-सुधारक अथवा एक राजनीतिज्ञकी हैसियतसे मुझे जन-समूहसे पृथक् जीवन व्यतीत करना पडा है। उस जीवनमे अपने उपर्युक्त कर्त्तव्योके पालनार्थ मेरे लिए यह जरूरी हो गया है कि मै कठोर सयमका पालन करू तथा अपने देश-भाइयो और यूरोप-निवासियोके साथ मनुष्यकी हैसियतसे व्यवहार करते हुए सत्य और अहिसा-का उतनी ही कडाईसे पालन करू।

मै एक मामूली आदमी हू। मुझमे जरा भी विवेक नही, और योग्यता तो मामूलीसे कम है। मेरे इस अहिसा और ब्रह्मचर्यके व्रतके पालनमे भी कोई बधाई देने लायक बात नही, क्योकि ये तो वर्षोके निरन्तर प्रयाससे

मेरे लिए साध्य हुआ है। हर पुरुष और स्त्री साध्य कर सकते हैं, बशर्ते कि वे भी उसी प्रयास, आशा और श्रद्धासे चलें। श्रद्धाहीन कार्य अतल खाईकी थाह लेनेका प्रयत्न करनेकी तरह है।

हरिजन सेवक,
३ अक्तूबर १९३६

: १८ :

कैसी नाशकारी चीज़ है !

डॉ० सोखे और डॉ० मगलदासके बीच हाल हीमे जो उस बारह-मासी विषय अर्थात् सन्तति-निरोधपर वाद-विवाद हुआ था, उससे मुझे परमादरणीय डॉ० अन्सारीके मतको प्रकट करनेकी हिम्मत हो रही है, जो डॉ० मगलदासके समर्थनमे है। करीबन एक सालकी बात है। मैने स्वर्गीय डॉ० साहबको लिखा था कि वैद्यककी दृष्टिसे आप इस विवाद-ग्रस्त विषयमे मेरे मतका समर्थन कर सकते है या नही ? मुझे यह जानकर आश्चर्य और खुशी हुई कि उन्होने मेरा समर्थन किया। पिछली बार जब मै दिल्ली गया था, तब इस विषयमे उनसे मेरी रू-बरू बातचीत हुई थी और मेरे अनुरोध करने पर उन्होने अपने निजी तथा अपने अन्य व्यवसाय-बन्धुओके अनुभवके आधारपर सप्रमाण अको सहित यह सिद्ध करनेके लिए कि, इन कृत्रिम साधनोका उपयोग करनेवालोको कितनी जबर्दस्त हानि पहुच रही है, एक लेख-माला लिखनेका वचन दिया था। उन्होने तो उन मनुष्योकी दयनीय अवस्थाका हू-बहू वर्णन सुनाया था जो यह जानते हुए कि उनकी पत्निया और अन्य स्त्रिया सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधनोको काममे ला रही है, उनसे कुछ दिन सम्भोगके स्वाभाविक परिणामके भयसे मुक्त होनेपर वे अमर्यादित भोग-विलासपर टूट पडे। नित्य नई-नई औरतोसे मिलनेकी उन्हे अदम्य लालसा होने लगी और आखिर पागल हो गए। आह ! डॉक्टर साहब अपनी उस लेखमाला-को शुरू करने ही वाले थे कि चल बसे !

कहा जाता है कि बर्नार्डशाने भी यही कहा है कि सन्तति-निरोधक साधनोका उपयोग करनेवाले स्त्री-पुरुषोका सम्भोग तो प्रकृति-विरुद्ध

वीर्य-नाशसे किसी प्रकार कम नही है । एक क्षण-भर सोचनेसे पता चल जायगा कि उनका कथन कितना यथार्थ है ।

इस बुरी टेवके शिकार वनकर धीरे-धीरे अपने पौरुषसे हाथ धो लेनेवाले विद्यार्थियोके करुणा-जनक पत्र तो मुझे करीव-करीव रोज मिलते है । कभी-कभी शिक्षकोके भी खत मिलते है । 'हरिजन-सेवक' मे लाहौरके सनातनधर्म कालेजके आचार्यका जो पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ था, वह भी पाठकोको पता होगा, जिसमे उन्होने उन शिक्षकोके विरुद्ध वडी बुरी तरह शिकायत की थी, जो अपने विद्यार्थियोके साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करते थे । इससे उनके शरीर और चरित्रकी जो दुर्गति हुई थी उसका भी जिक्र आचार्यजीने अपने पत्रमे किया था । इन उदाहरणोसे तो मै यही नतीजा निकालता हू कि अगर पति-पत्नीके वीचमे भी मैथुनके स्वाभाविक परिणामके भयसे मुक्त होनेकी सभावनाको लेकर सभोग होगा, तो उसका भी वही घातक परिणाम होगा, जो प्रकृति-विरुद्ध मैथुन-से निश्चित रूपसे होता है ।

निस्सन्देह कृत्रिम साधनोके वहुत-से हिमायती परोपकारकी भावनासे ही प्रेरित होकर इन चीजोका अन्धाधुन्ध प्रचार कर रहे है; पर यह परो-पकार अस्थायी है । मै इन भले आदमियोसे अनुरोध करता हू कि इसके परिणामोका तो खयाल करे । वे गरीव लोग कभी पर्याप्त मात्रामे इनका उपयोग नही कर सकेगे, जिनतक यह उपकारी पुरुष पहुचाना चाहते है । और जिन्हे इनका उपयोग नही करना चाहिए वे ज़रूर इनका उपयोग करेगे, और अपने साथियोका नाश करेगे, पर अगर यह पूरी तरहसे सिद्ध हो जाता कि शारीरिक या नैतिक आरोग्यकी दृष्टिसे यह चीज़ लाभ-दायक है, तो यह भी सह लिया जाता । इनके और भावी सुधारकोके लिए डॉ० अन्सारीकी राय—अगर उसके विपयमे मेरे शब्दोको कोई प्रामाण्य माने—एक गम्भीर चेतावनी है ।

हरिजन सेवक,
१२ अक्तूवर १९३६

: १६ :

अश्लील विज्ञापन

एक मासिक पत्रमे प्रकाशित एक अत्यन्त वीभत्स पुस्तकके विज्ञापनकी कतरन एक बहनने मुझे भेजी है और लिखा है :

' . के पृष्ठो पर नज़र डालते हुए यह विज्ञापन मेरे देखनेमे आया। मै नही जानती कि यह मासिक पत्र आपके पास जाता है या नही। आपके पास यह जाता भी हो तो भी मेरे खयालमे इसकी तरफ नज़र डालनेका आपको कभी समय नही मिलता होगा। पहले भी एक वार मैने आपसे 'अश्लील विज्ञापनो' के वारेमे वात की थी। मेरी यह बडी ही इच्छा है कि इस विषयमे आप किसी समय कुछ लिखे। जिस पुस्तकका यह विज्ञापन है उस किस्मकी पुस्तकोकी आज बाज़ारमे वाढ-सी आ रही है, यह विलकुल सच्ची वात है, पर . जैसे जवावदार पत्रोके लिए क्या यह उचित है कि वे ऐसी गन्दी पुस्तकोकी विक्रीको प्रोत्साहन दे ? इन चीज़ोसे मेरा स्त्री-हृदय इतना अधिक दुखता है कि मै सिवा आपके और किसीको लिख नही सकती। ईश्वरने स्त्रीको एक विशेष उद्देश्यके लिए जो वस्तु दी है उसका विज्ञापन लम्पटताको उत्तेजन देनेके लिए किया जाय, यह चीज़ इतनी हीन है कि इसके प्रति घृणा शब्दोसे प्रकट नही की जा सकती । मै चाहती हू कि इस सम्बन्धमे भारतके प्रमुख अखवारो और मासिक-पत्रोकी क्या जवावदारी है, इसके वारेमे आप लिखे। आपके पास आलोचनाके लिए भेज सकू, ऐसी यह कोई पहली ही कतरन नही है।"

इस विज्ञापनमे से कुछ भी अश मै यहा उद्धृत करना नही चाहता। पाठकोमे सिर्फ इतना ही कहता हू कि जिस पुस्तकका यह विज्ञापन है उसमे-के व्यजित लेखोका वर्णन करनेमे जितनी अश्लील भाषाका उपयोग किया जा सकता है उतना किया गया है। इस पुस्तकका नाम 'स्त्रीके शरीरका

सौन्दर्य' है; और विज्ञापन देनेवाली फर्म पाठकोसे कहती है कि जो यह पुस्तक खरीदेगा उसे 'नववधूके लिए नया ज्ञान' और 'सम्भोग अथवा सभोगीको कैसे रिझाया जाय ?' नामक यह दो पुस्तके और मुफ्त दी जायगी।

इस किस्मकी पुस्तकोका विज्ञापन करने वालोको मै किसी तरह रोक सकता हू या पत्र-सम्पादको और प्रकाशकोसे उनके अखबारो द्वारा मुनाफा उठानेका इरादा मै छुडवा सकता हू, ऐसी आशा अगर यह बहन रखती है तो वह व्यर्थ है। ऐसी अश्लील पुस्तको या विज्ञापनोके प्रकाशकोसे मै चाहे जितनी अपील करू उससे कोई मतलब निकलनेका नही; किंतु मै इस पत्र लिखनेवाली वहनसे और ऐसी ही दूसरी विदुषी वहनोसे इतना कहना चाहता हू कि वे वाहर मैदानमे आय और जो काम खास करके उनका है, और जिसके लिए उनमे खास योग्यता है, उस कामको वे शुरू कर दे। अक्सर देखनेमे आया कि किसी मनुष्यको खराव नाम दे दिया जाता है और कुछ समय वाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा लमानने गता है कि वह खुद खराब है। स्त्रीको 'अवला' कहना उसे बदनाम करना है। मै नही जानता कि स्त्री किस प्रकार अवला है। ऐसा कहनेका अर्थ अगर यह हो कि स्त्रीमे पुरुषकी जैसी पाशविक वृत्ति नही है या उतनी मात्रामे नही है जितनी कि पुरुषमे होती है, तो यह आरोप माना जा सकता है, पर यह चीज तो स्त्रीको पुरुषकी अपेक्षा पुनीत वनानेवाली है, और स्त्री पुरुषकी अपेक्षा पुनीत तो है ही। वह अगर आघात करनेमे निर्वल है तो कष्ट सहन करनेमे वलवान है। मैने स्त्रीको त्याग और अहिसाकी मूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्वकी रक्षाके लिए पुरुषपर निर्भर न रहना उसे सीखना है। पुरुषने स्त्रीके सतीत्वकी रक्षा की हो ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नही। वह ऐसा करना चाहे तो भी नही कर सकता। निश्चय ही रामने सीताके या पाचों पाण्डवोने द्रोपदीके शीलकी रक्षा नही की। इन दोनो सतियोने अपने सतीत्वके वलसे ही अपने शीलकी रक्षा की। कोई भी मनुष्य वगैर अपनी सम्मतिके अपनी इज्जत-आवरू नही खोता। कोई नर-पशु किसी स्त्रीको वेहोश करके उसकी लाज लूट ले तो इससे

उस स्त्रीके शील या सतीत्वका लोप नही होगा, इसी तरह कोई दुष्टा स्त्री किसी पुरुषको जड बना देनेवाली दवा खिला दे और उससे अपना मन चाहा कराये तो इससे उस पुरुषके शील या चारित्र्यका नाश नही होता।

आश्चर्य तो यह है कि पुरुषोके सौन्दर्यकी प्रशसामे पुस्तके बिलकुल नही लिखी गई। तो फिर पुरुषकी विषय-वासना उत्तेजित करनेके लिए ही साहित्य हमेशा क्यो तैयार होता रहे ? यह बात तो नही कि पुरुषने स्त्रीको जिन विशेषणोसे भूषित किया है उन विशेषणोको सार्थक करना उसे पसन्द है ? स्त्रीको क्या यह अच्छा लगता होगा कि उसके शरीरके सौन्दर्यका पुरुष अपनी भोग-लालसाके लिए दुरुपयोग करे ? पुरुषके आगे अपनी देहकी सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा ? यदि हा, तो किस-लिए ? मै चाहता हू कि ये प्रश्न सुशिक्षित बहने खुद अपने दिलसे पूछे। ऐसे विज्ञापनो और ऐसे साहित्यसे उनका दिल दुखता हो तो उन्हे इन चीजोके लिए अविराम युद्ध चलाना चाहिए, और एक क्षणमे वे इन चीज़ोको बन्द करा देगी। स्त्रीमे जिस प्रकार बुरा करनेकी, लोकका नाश करनेकी शक्ति है, उसी प्रकार भला करनेकी लोक-हित साधन करनेकी शक्ति भी उसमे सोई हुई पडी है। यह भान अगर स्त्रीको हो जाय तो कितना अच्छा हो। अगर वह यह विचार छोड दे कि वह खुद अपना तथा पुरुषका—फिर चाहे वह उसका पिता हो, पुत्र हो या पति हो—जन्म सुधार सकती है, और दोनोके ही लिए इस ससारको अधिक सुखमय बना सकती है। राष्ट्र-राष्ट्रके बीचके पागलपन भरे युद्धोसे और इससे भी ज्यादा पागलपन-भरे समाज-नीतिकी नीवके विरुद्ध लडे जाने वाले युद्धोसे अगर समाजको अपना सहार नही होने देना है, तो स्त्रीको पुरुषकी तरह नही, जैसे कि कुछ स्त्रिया करती है, बल्कि स्त्रीकी तरह अपना योग देना ही होगा। अधिकाशत बिना किसी कारणके ही मानव-प्राणियोके सहार करनेकी जो शक्ति पुरुषमे है उस शक्तिमे उसकी हमसरी करनेसे स्त्री मानव-जातिको सुधार नही सकती। पुरुषकी जिस भूलसे पुरुषके साथ-साथ स्त्रीका भी विनाश होनेवाला है उस भूलमेसे पुरुषको बचाना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्रीको समझ लेना चाहिए। यह वाहियात

विज्ञापन तो सिर्फ यही बताता है कि हवाका रुख किस तरफ है। इसमे बेशर्मीके साथ स्त्रीका अनुचित लाभ उठाया गया है। 'दुनियाकी जगली जातियोकी स्त्रियोके शरीर-सौन्दर्य' को भी इसने नही छोडा।

हरिजन सेवक,
२१ नवम्बर १९३६

: २० :

काम-शास्त्र

गुजरात विद्यापीठसे हाल ही पारगत-पदवी प्राप्त श्री मगनभाई देसाईके ७ अक्तूबरके पत्रसे नीचे लिखा अश यहा देता हू—

"इस बारके 'हरिजन' मे आपका लेख पढकर मेरे मनमे विचार आया कि मै भी एक प्रश्न चर्चाके लिए आपके सामने पेश करू। इस विषयमें आपने अबतक शायद ही कुछ कहा है। वह है बालकोको और खास करके विद्यार्थियोको काम-विज्ञान सिखाना। आप तो जानते ही है कि श्री गुजरातमे इस विषयके बडे हामी है। खुद मुझे तो इस बातमे हमेशा अन्देशा ही रहा है, बल्कि मेरा तो मत है कि वे इस विषयके अधिकारी भी नही है। परिणाम तो इस विषयकी अनिष्टता ही प्रकट होती जाती है। वे तो शायद ऐसा ही मानते दिखाई देते है कि काम-विज्ञानके न जानने-से ही शिक्षा और समाजमे यह बिगाड हुआ है। नवीन मानस-शास्त्र भी बताता है कि यही सुप्त काम-भाव मानव-प्रवृत्तिका उद्भव-स्थान है। 'काम एष क्रोध एष'—इसके आगे ये लोग जाते ही नही। हमारा एक दिन मुझसे कहता था—'तो आपको यह कहा मालूम है कि हरेकके अन्दर काम नामक राक्षस रहता है ?' और इसके फलस्वरूप उसकी नीति-भावना जाग्रत होनेके बदले उलटी जड होती हुई दिखाई दी। इस तरह गुजरातमे आजकल काम-विज्ञानके शिक्षणके नामपर बहुत-कुछ हो रहा है। इस विषयपर पुस्तके भी लिखी गई है। सस्करण-पर-सस्करण छपते है और हजारोकी सख्यामे ये बिकती है। कितने ही साप्ताहिक इस विषयके निकलते है और उनकी बिक्री भी खूब होती है। खैर यह तो जैसा समाज होता है वैसा उसे परोसनेवाले मिल ही जाते है, किन्तु इससे सुधारककी दशा और भी अटपटी हो जाती है।

"इसलिए मैं चाहता हू कि आप इसकी शिक्षाके विषयमे सार्वजनिक रूपसे चर्चा करे। शिक्षाके लिए काम-शास्त्रके शिक्षणकी आवश्यकता है ! कौन उसकी शिक्षा देनेका और कौन उसे पानेका अधिकारी है। मामूली भूगोल-गणितकी तरह क्या सबको उसकी शिक्षा दी जानी चाहिए ! उसकी क्या मर्यादा है और हमारे रगोरेशेमे पैठे हुए इस शत्रुकी मर्यादा इससे उलटी दिशामे बाधना उचित है या इस तरह उसे शुभ नामका गौरव देनेकी तरफ ! ऐसे अनेक तरहके सवाल मनमे उठते हैं। आशा है कि आप इस विषयपर अवश्य रोशनी डालेगे।"

इस पत्रको इतने दिनतक मैने इसी आशासे रख छोडा था कि किसी दिन मैं इसमे उठाये गये प्रश्नोपर कुछ लिखूगा। इस बीच मैं बारहवी गुजराती-साहित्य-परिषद्का प्रमुख बनकर वापस सेगाव आ पहुचा। विद्यापीठमे चार दिन जो रहा तो गुजराती भाई-बहनोके सम्पर्कमे आने-से पुरानी स्मृतिया ताजी हो आई। उक्त पत्रके लेखक भी मिले। उन्होने मुझसे पूछा भी, "मेरे उस पत्रका क्या हुआ ?" "मेरे साथ-साथ वह सफर कर रहा है। मैं उसके बारेमे जरूर लिखूगा।" यह जवाब देकर मैंने मगन भाईको कुछ तसल्ली दी थी।

अब उनके असली विषयपर आता हू। क्या गुजरातमे और क्या दूसरे प्रान्तोमे, सब जगह कामदेव मामूलके माफिक विजय प्राप्त कर रहे है। आजकलकी उनकी विजयमे एक विशेषता यह है कि उनके शरणागत नर-नारीगण उनको धर्म मानते दिखाई देते हैं। जब कोई गुलाम अपनी बेडीको शृगार समझकर पुलकित होता है, तब कहना चाहिए कि उसके सरदारकी पूरी विजय हो गई ! इस तरह कामदेवकी विजय देखते हुए भी मुझे इतना विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है, तुच्छ है और अन्तमे डक-कटे बिच्छूकी तरह निस्तेज हो जाने वाली है। ऐसा होनेके पहले पुरुषार्थकी तो आवश्यकता है ही। यहा मेरा यह आशय नही है कि अन्त-मे तो कामदेवकी हार होने ही वाली है, इसलिए हम सुस्त या गाफिल बनकर बैठे रहे। कामपर विजय प्राप्त करना स्त्री-पुरुषोका परम कर्त्तव्य है। उस-पर विजाय प्राप्त किये बिना स्वराज्य असम्भव है, स्वराज्य बिना स्वराज

अथवा राम-राज होगा ही कहासे ? स्वराज-विहीन स्वराज खिलौनेके आमकी तरह समझना चाहिए । देखनेमे वडा सुदर, पर जब उसे खोला तो अन्दर पोल-ही-पोल । कामपर विजय प्राप्त किये बिना कोई सेवक हरिजनकी, कौमी ऐक्यकी, खादीकी, गौ-माताकी, ग्रामवासीकी सेवा कभी नही कर सकता । इस सेवाके लिए बौद्धिक सामग्री वस होनेकी नही । आत्म-बलके बिना ऐसी महान् सेवा असम्भव है । और आत्मबल प्रभुके प्रसादके बिना अशक्य है । कामीको प्रभुका प्रसाद मिला हो—ऐसा अबतक देखा नही गया ।

तो मगन भाईने यह सवाल पूछा है कि हमारे शिक्षा-क्रममे कामशास्त्र-के लिए स्थान है या नही, यदि है तो कितना ? कामशास्त्र दो प्रकारका होता है—एक तो है कामपर विजय प्राप्त करानेवाला, उसके लिए तो शिक्षण-क्रममे स्थान होना ही चाहिए । दूसरा है, कामको उत्तेजन देने वाला शास्त्र । यह सर्वथा त्याज्य है । सब धर्मोने कामको शत्रु माना है । क्रोधका नम्बर दूसरा है । गीता तो कहती है—कामसे ही क्रोधकी उत्पत्ति होती है । यहा कामका व्यापक अर्थ लिया गया है । हमारे विषय-से सम्बन्ध रखनेवाला 'काम' शब्द प्रचलित अर्थमे इस्तैमाल किया गया है ।

ऐसा होते हुए भी यह प्रश्न बाकी रहता है कि बालक-बालिकाओको गुह्येन्द्रियोका और उनके व्यापारका ज्ञान दिया जाय या नही ? मै समझता हू कि यह ज्ञान एक हदतक आवश्यक है । आज कितने ही बालक बालिकाए शुद्ध ज्ञानके अभावमे अशुद्ध ज्ञान प्राप्त करते है और वे इन्द्रियोका बहुत दुरुपयोग करते हुए पाये जाते है । आख होते हुए भी हम नही देखते । इस तरह हम कामपर विजय नही पा सकते । बालक-बालिकाओको उन इन्द्रियोके उपयोगका ज्ञान देनेकी आवश्यकता मै मानता हू । मेरे हाथ-नीचे जो बालक-बालिकाए रही है उन्हे मैने ऐसा ज्ञान देनेका प्रयत्न भी किया है, परन्तु यह शिक्षण और ही दृष्टिसे दिया जाता है । इन इन्द्रियोका ज्ञान देते हुए सयमकी शिक्षा दी जाती है । कामपर कैसे विजय प्राप्त होती है यह सिखाया जाता है । यह शिक्षण देते हुए भी मनुष्य

और पशुके बीचका भेद बताना आवश्यक हो जाता है। मनुष्य वह है जिसे हृदय और बुद्धि है। यह उसका धात्वर्थ है। हृदयको जाग्रत करनेका अर्थ है—सारासार-विवेक सिखाना। यह सिखाते हुए कामपर विजय प्राप्त करना बताया जाता है।

तो अब इस शास्त्रकी शिक्षा कौन दे? जिस प्रकार खगोल-शास्त्र-की शिक्षा वही दे सकता है जो उसमे पारगत हो, उसी तरह कामके जीतने-का शास्त्र भी वही सिखा सकता है, जिसने कामपर विजय प्राप्त कर ली हो। उसकी भाषामे सस्कारिता होगी, बल होगा, जीवन होगा, जिस उच्चारणके पीछे अनुभव-ज्ञान नही है, वह जडवत् है, वह किसीको स्पर्श नही कर सकता। जिसको अनुभव-ज्ञान है, उसका कथन उगे बिना नही रह सकता।

आजकल हमारा बाह्याचार, हमारा वाचन, हमारा विचार-क्षेत्र सब कामकी विजय सूचित कर रहे है। हमे उसके पाशसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना है। यह काम अवश्य ही विकट है; मगर परवाह नही। अगर इने-गिने ही गुजराती हो, जिन्होने शिक्षण-शास्त्रका अनुभव प्राप्त किया हो और जो कामपर विजय प्राप्त करनेके धर्मको मानते हो, उनकी श्रद्धा यदि अचल रहेगी, वे जाग्रत रहेगे और सतत प्रयत्न करते रहेगे तो गुजरातके बालक-बालिकाए शुद्ध ज्ञान प्राप्त करेगे और कामके जालसे मुक्ति प्राप्त करेगे और जो उसमे न फसे होगे वे बच जायगे।

हरिजन सेवक,

२८ नवम्बर १९३६

: २१ :

अश्लील विज्ञापनोंको कैसे रोका जाय

अश्लील विज्ञापन-सम्वन्धी मेरा लेख देखकर एक सज्जन लिखते है—

'जो अखवार, आपने लिखा, वैसी अश्लील चीज़ोके इश्तिहार देते है उनके नाम जाहिर करके आप अश्लील विज्ञापनका प्रकाशन रोकनेके लिए वहुत-कुछ कर सकते है ।"

इन सज्जनने जिस सेसरशिपकी मुझे सलाह दी है उसका भार मै नही ले सकता, लेकिन इससे अच्छा एक उपाय मै सुझा सकता हू । जनताको अगर यह अश्लीलता अखरती हो, तो जिन अखवारो या मासिक-पत्रोमे आपत्तिजनक विज्ञापन निकले उनके ग्राहक यह कर सकते है कि उन अखवारोका ध्यान इस ओर आकर्षित करे और अगर फिर भी वे ऐसा करनेसे वाज़ न आये तो उन्हे खरीदना बन्द कर दे । पाठकोको यह जानकर खुशी होगी कि जिस वहनने मुझे अश्लील विज्ञापनोकी शिकायत भेजी थी, उसने इस दोपके भागी मासिक-पत्रके सम्पादकको भी इस वारेमे लिखा था, जिसपर उन्होने इस भूलके लिए खेद-प्रकाश करते हुए उसे आगेसे न छापनेका वादा किया है ।

यह कहते हुए भी मुझे खुशी होती है कि मैने इस वारेमे जो-कुछ लिखा, उसका कुछ अन्य पत्रोने भी समर्थन किया है । 'निस्पृह' (नागपुर) के सम्पादक लिखते है

"अश्लील विज्ञापनोके वारेमे 'हरिजन' मे आपने जो लेख लिखा है उसे मैने वहुत सावधानीके साथ पढा । यही नही, वल्कि मैने उसका अविकल अनुवाद भी 'निस्पृह' मे दिया है और एक छोटी-सी सम्पादकीय टिप्पणी भी उसपर मैने लिखी है ।

मै बतौर नमूनेके एक विज्ञापन इस पत्रके साथ भेज रहा हू, जो अश्लील न होते हुए भी एक तरहसे अनैतिक तो है ही । इस विज्ञापनमे साफ झूठ है । आमतौर पर गाव वाले ही ऐसे विज्ञापनोके चक्करमे फसते है । मै ऐसे विज्ञापन लेनेसे इन्कार करता रहा हू और इस विज्ञापनदाताको भी यही लिख रहा हू । जैसे अखबारमे निकलने वाली समस्त पाठ्य-सामग्री पर सम्पादककी निगाह रहना जरूरी है, उसी तरह विज्ञापनोपर नजर रखना भी उसका कर्त्तव्य है । और कोई सम्पादक अपने अखबारका ऐसे लोगो द्वारा उपयोग नही होने दे सकता, जो भोले-भाले देहातियोकी आखोमे धूल झोककर उन्हे ठगना चाहते है ।

हरिजन सेवक,

१९ दिसम्बर १९३६

: २२ :

ब्रह्मचर्यका अर्थ

एक सज्जन लिखते है :

"आपके विचारोको पढकर मै बहुत समयसे यह मानता आया हू कि सन्तति-निरोधके लिए ब्रह्मचर्य ही एक-मात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है, सभोग केवल सन्तानेच्छासे प्रेरित होकर होना चाहिए, बिना सन्तानेच्छाका भोग पाप है, इन वातोको सोचते है तो कई प्रश्न उपस्थित होते है। सभोग सन्तानके लिए किया जाय यह ठीक है, पर एक-दो बारके भोगसे सन्तान न हो, तो ? ऐसे समयको मर्यादापूर्वक किस सीमाके अन्दर रहना चाहिए ? एक-दो बारके सभोगसे सन्तान चाहे न हो, पर आशा कहा पिण्ड छोडती है ? इस प्रकार वीर्यका वहुत कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्तिको क्या यह कहा जाय कि ईश्वरकी इच्छा विरुद्ध होनेके कारण उसे भोगका त्याग कर देना चाहिए। ऐसे भोगके लिए तो बहुत आध्यात्मिकताकी आवश्यकता है। प्राय ऐसा भी देखनेमे आया है कि सन्तान सारी उम्र न होकर उत्तरावस्थामे हुई है, इसलिए आशाका त्याग करना कठिन है। यह कठिनाई तब और भी वढ जाती है, जब दोनो स्त्री-पुरुष रोगसे मुक्त हो।"

यह कठिनाई अवश्य है, लेकिन ऐसी वाते मुश्किल तो हुआ ही करती है। मनुष्य अपनी उन्नति वगैर कठिनाईके कैसे कर सकता है ? हिमालयपर चढनेके लिए जैसे-जैसे मनुष्य आगे वढता है, कठिनाई वढती ही जाती है, यहातक कि हिमालयके सबसे ऊचे शिखरपर आजतक कोई पहुच नही सका है। इस प्रयत्नमे कई मनुष्योने मृत्युकी भेट की है। हर साल चढाई करने-वाले नये-नये पुरुषार्थी तैयार होते है और निष्फल भी होते है, फिर भी इस प्रयासको वे छोडते नही। विषयेन्द्रियका दमन हिमालय पहाडपर चढनेसे तो कठिन है ही, लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊचा है। हिमालयपर

चढनेवाला कुछ कीर्ति पायगा, क्षणिक सुख पायगा, इन्द्रिय-जीत मनुष्य आत्मानन्द पायगा और उसका आनन्द दिन-प्रति-दिन बढता जायगा। ब्रह्मचर्य-शास्त्रमे तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष-वीर्य कभी निष्फल होता ही नही और होना ही नही चाहिए। और जैसा पुरुषके लिए, ऐसा ही स्त्रीके लिए भी, इसमे कोई आश्चर्यकी बात नही। जब मनुष्य अथवा स्त्री निर्विकार होते है, तब वीर्यहानि असम्भावित हो जाती है और भोगेच्छाका सर्वथा नाश हो जाता है। जब पति-पत्नी सन्तानकी इच्छा करते है तो, तभी एक-दूसरेका मिलन होता है। यही अर्थ गृहस्थाश्रमीके ब्रह्मचर्यका है अर्थात्—स्त्री-पुरुषका मिलन सिर्फ सन्तानोत्पत्तिके लिए ही उचित है, भोग-तृप्तिके लिए कभी नही। यह हुई कानूनी बात अथवा आदर्शकी बात। यदि हम इस आदर्शको स्वीकार करे तो हम समझ सकते है कि भोगेच्छाकी तृप्ति अनुचित है और हमे उसका यथोचित त्याग करना चाहिए। यह ठीक है कि आज कोई इस नियमका पालन नही करते। आदर्शकी बात करते हुए हम शक्तिका खयाल नही कर सकते; लेकिन आजकल भोग-तृप्तिको आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो नही सकता, यह स्वयसिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादित नही होना चाहिए। अमर्यादित भोगसे नाश नही होता, यह सभी स्वीकार करते है। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीनकालसे रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्यके नियमोको हम जानते नही है, इसलिए बडी आपत्ति पैदा हुई है, और ब्रह्मचर्य-पालनमे अनावश्यक कठिनाई महसूस करते है। अब जो आपत्ति मुझे पत्र-लेखकने बतलाई है, वह आपत्ति ही नही रहती है; क्योकि सन्ततिके ही कारण तो एक ही बार मिलन हो सकता है, अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री-पुरुषोका मिलन होना ही नही चाहिए। इस नियमको जाननेके बाद इतना ही कहा जा सकता है कि जबतक स्त्रीने गर्भ-धारण नही किया तबतक, प्रत्येक ऋतुकालके बाद, प्रतिमास एक बार स्त्री-पुरुषका मिलन क्षतव्य हो सकता है, और यह मिलन भोग-तृप्तिके लिए न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य वचनसे और कार्यसे विकार-रहित होता है, उसे

मानसिक अथवा शारीरिक व्याधिका किसी प्रकार डर नही है। इतना ही नही, बल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियोसे भी मुक्त होते है और इसमे कोई आश्चर्यकी वात नही है। जिस वीर्यसे मनुष्य-जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, उसके अविच्छिन्न सग्रहसे अमोघ शक्ति पैदा होनी ही चाहिए। यह वात शास्त्रोमे तो कही गई है, लेकिन हरेक मनुष्य इसे अपने लिए यत्नसे सिद्ध कर सकता है। और जो नियम पुरुषोके लिए है वह स्त्रियोके लिए भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मनसे विकारमय रहते हुए शरीरसे विकार-रहित होनेकी व्यर्थ आशा करता है और अन्तमे मन और शरीर दोनोको क्षीण करता हुआ गीताकी भाषामे मूढात्मा और मिथ्याचारी वनता है।

हरिजन सेवक,
१३ मार्च १९३७

: २३ :

अरण्य-रोदन

"अभी हाल हीमे सन्तति-नियमनकी प्रचारिका मिसेज़ सेगरके साथ आपकी मुलाकात पर एक समालोचना मैंने पढी है। इसका मुझपर इतना गहरा असर हुआ कि आपके दृष्टि-विन्दुपर सन्तोप और पसन्दगी जाहिर करनेके लिए मै आपको यह पत्र लिखने बैठा हू। आपकी हिम्मतके लिए ईश्वर सदा आपका कल्याण करे।

"पिछले तीस सालसे मै लडकोको पढानेका काम करता हू। मैंने हमेशा उन्हे देह-दमन और निस्वार्थ जीवन वितानेके लिए तालीम दी है। जब मिसेज़ सेगर हमारे आस-पास प्रचार-कार्य कर रही थी, तब हाईस्कूलके लडके-लड़किया उनकी दी हुई सूचनाओका उपयोग करने लग गये थे और परिणामका डर दूर हो जानेसे उनमे खूब व्यभिचार चल पडा था। अगर मिसेज सेगरकी शिक्षा कही व्यापक हो गई तो सारा समाज विषय-सेवनके पीछे पड जायगा, और शुद्ध प्रेमका दुनियासे नामो-निशानतक मिट जायगा। मै मानता हू कि जनताको उच्च आदर्शोंकी शिक्षा देनेमे सदिया लग जायगी; पर यह काम शुरू करनेके लिए अनुकूल-से-अनुकूल समय अभी है। मुझे डर है कि मिसेज सेगर विपयको ही प्रेम समझ बैठी है, पर यह भूल है, क्योकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है, विषय-सेवन-से इसकी उत्पत्ति कभी नही हो सकती।

"डॉ० ऐलेक्सिस केरल भी आपके साथ इस बातमे सहमत है कि सयम कभी हानिकारक सिद्ध नही होता, सिवाय उन लोगोके जो दूसरी तरह अपने विषयोको उत्तेजित करते हो और पहलेसे ही अपने मनपर काबू खो चुके हो। मिसेज सेगरका यह बयान कि अधिकाश डॉक्टर यह मानते है कि ब्रह्मचर्य-पालनसे हानि होती है, बिलकुल गलत है। मै तो देखता

हू कि यहा कई बडे-बडे डॉक्टर अमेरिकन सोश्यल हाइजीन (सामाजिक आरोग्य-शास्त्र) के विज्ञान-शास्त्री ब्रह्मचर्य-पालनको लाभदायक मानते है।

"आप एक बडा नेक काम कर रहे है। मै आपके जीवन-सग्रामके तमाम चढाव-उतारोका वहुत रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हू। आप जगत्मे उन इने-गिने व्यक्तियोमेसे है, जिन्होने स्त्री-पुरुष-सम्बन्धके प्रश्नपर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टि-विन्दुसे विचार किया है। मै आपको यह जताना चाहता हू कि महासमरके इस पार भी आपके आदर्शोके साथ सहानुभूति रखनेवाला आपका एक साथी यहापर है।

"इस नेक कामको जारी रखे, ताकि नवयुवक-वर्ग सच्ची बातको जान ले; क्योकि भविष्य इसी वर्गके हाथोमे है।

"अपने विद्यार्थियोके साथ अपने सवादमेसे मै छोटा-सा उद्धरण यहा देना चाहता हू—'निर्माण करो, हमेशा निर्माण करो। निर्माण-प्रवृत्ति-मेसे तुम्हे श्रेय मिलेगा, उन्नति मिलेगी, उत्साह मिलेगा, उल्लास मिलेगा, पर अगर तुम अपनी निर्माणशक्तिको आज विषय-तृप्तिका साधन वना लोगे, तो तुम अपनी रचना-शक्तिपर अत्याचार करोगे और तुम्हारे आध्यात्मिक वलका नाश हो जायगा। रचना-प्रवृत्ति—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—का नाम जीवन है, यही आनन्द है। अगर तुम प्रजोत्पत्तिके हेतुके विना या सन्ततिका निरोध करके विषय-सेवन द्वारा सिर्फ इन्द्रिय-सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करोगे तो तुम प्रकृतिके नियम-का भग और अपनी आध्यात्मिक शक्तियोका हनन करोगे। इसका परिणाम क्या होगा? अनिवार विषयाग्नि धधक उठेगी और आखिर निराशा तथा असफलतामे अन्त होगा। इससे तो हम कभी उन उच्च गुणोका विकास नही कर पायगे, जिनके वलपर हम उस नवीन मानव-समाजकी रचना कर सके जिसमे कि दिव्यात्मा स्त्री-पुरुष हो।"

"मै जानता हू कि यह सव पूर्वकालके नवियोके अरण्य-रोदन-जैसी वात है, पर मेरा पक्का विश्वास है कि वही सच्चा रास्ता है और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी वन पडे, मै कम-से-कम उगली दिखाकर तो अपना समाधान कर लू।"

संतति-नियमनके कृत्रिम साधनोंका निषेध करनेवाले जो पत्र मुझे कभी-कभी अमेरिकासे मिलते रहते हैं, उन्हींमेंसे यह भी एक है। पर सुदूर पश्चिमसे हर हफ्ते हिन्दुस्तानमें जो सामाजिक साहित्य आता रहता है, उसके तो पढ़नेसे दिलपर बिलकुल जुदा ही असर पड़ता है। वहाँ मालूम होता है, मानो अमेरिकामें तो सिवा बेवकूफोंके कोई भी उन आधुनिक साधनोंका विरोध नहीं करते हैं, जो मनुष्यको उन अधम-विकारोंसे मुक्ति प्रदान करते हैं, जो अबतक शरीरको गुलाम बनाकर समाजके सर्वश्रेष्ठ ऐहिक सुखसे मनुष्यको वंचित करके उसके शरीरको निष्प्राण बना देनेकी शिक्षा देता चला जा रहा है। यह साहित्य भी उतना ही अधिक नशा पैदा करता है, जितना कि वह धर्म, जिसकी वह शिक्षा देता है और जिसे उसके साधारण परिणामके डरसे दरगुजर करनेको प्रोत्साहन देता है। पश्चिमसे आनेवाले केवल उन पत्रोंसे मैं 'हरिजन' के पाठकोंके

प्रति झूठी और निरी भावुक सहानुभूतिके अलावा और कुछ नही होता। ओर इस मामलेमे व्यक्तिगत अनुभववाली दलीलमे तो उतनी ही बुद्धि है, जितनी कि एक शराबीके किसी कार्यमे होती है और सहानुभूतिवाली दलील एक धोखेकी टट्टी है, जिसके अन्दर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चोके तथा मातृत्वके कष्ट तो कल्याणकारी प्रकृति द्वारा नियोजित सजाए और हिदायते है। सयम और इन्द्रिय-नियमके कानूनकी जो परवा नही करेगा, वह तो एक तरहसे अपनी खुद-कुशी ही कर लेगा। यह जीवन तो एक परीक्षा है। अगर हम इन्द्रियोका नियमन नही कर सकते, तो हम असफलताको न्यौता देते है। कायरोकी तरह हम युद्धसे मुह मोडकर जीवनके एकमात्र आनन्दसे अपने-आपको वचित करते है।

हरिजन सेवक,
२७ मार्च १९३७

: २४ :

ब्रह्मचर्यपर नया प्रकाश

अब एक नई बात आप लोगोसे कहना चाहता हू। सोचा था कि विनोबा सुनाये; पर अब समय है तो स्वय मै कहता हू। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि अच्छी बात सबके साथ बाट लेता हू। बातका आरम्भ तो बहुत वर्षो पुराना है। मै जुलू-युद्धमे गया था। देखो, ईश्वरका खेल इसी तरह चलता है। मेरा निश्चय हो गया कि जिसको जगत्की सेवा करनी है, उसके लिए ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। विवाहित दम्पतिको भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। इससे मेरा मतलब यह था कि उन्हे प्रजोत्पादन-क्रियामे नही पडना चाहिए। मै यह समझता था कि जो प्रजोत्पादन करते है, वे ब्रह्मचारी नही हो सकते। इसलिए मैने ब्रह्मचर्यका आदर्श छगनलाल आदिके सामने रखा। उस वक्त तो मै बिलकुल जवान था। और जवान तो सबकुछ कर सकता है। मै आपसे कह दू कि आप सब ब्रह्मचारी बने तो क्या वह होनेवाली बात है ? वह तो एक आदर्श है, इसलिए मै तो विवाह भी करा देता हू। एक आदर्श देते हुए भी यह तो जानता ही हू कि ये लोग भोग भी करेगे। प्रजोत्पादन और ब्रह्मचर्य एक-दूसरेके विरोधी है, ऐसा मेरा खयाल रहा।

पर उस दिन विनोबा मेरे पास एक उलझन लेकर आये। एक शास्त्र-वचन है, जिसकी कीमत मै पहले नही जानता था। उस वचनने मेरे दिलपर एक नया प्रभाव डाल दिया। उसका विचार करते-करते मै बिलकुल थक गया, उसमे तन्मय हो गया। अब भी मै उसीसे भरा हू। ब्रह्मचर्यका जो अर्थ शास्त्रोमे बताया है, वह अति शुद्ध है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जिसने जन्मसे ही ब्रह्मचर्यका पालन किया हो। स्वप्नमे भी जिसका वीर्य-स्खलन न हुआ हो, लेकिन मै नही जानता था

कि प्रजोत्पत्तिके हेतु जो सम्भोग करता है उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्यों माना गया है। कल यह बुलन्द बात मेरी समझमे आगई। जो दम्पति गृहस्थाश्रममे रहते हुए केवल प्रजोत्पत्तिके हेतु ही परस्पर सयोग और एकान्त करते है, वे ठीक ब्रह्मचारी ही है। आज हम जिसे विवाह कहते है, वह विवाह नही, वह भ्रष्टाचार है। यद्यपि मै कहता था कि प्रजोत्पत्तिके लिए विवाह है, फिर भी यह मानता था कि इसका मतलब सिर्फ यही है कि दोनोको प्रजोत्पत्तिसे डर न मालूम हो, उसके परिणामको टालनेका प्रयत्न न हो और भोगमे दोनोकी सहमति हो। मै नही जानता कि उसका इससे भी अधिक कोई मतलब होगा, पर यह भी शुद्ध विवाह कब कहा जाय ? दम्पति प्रजोत्पत्ति तभी करे जब जरूरत हो, और जब उसकी जरूरत हो तभी एकान्त भी करें। अर्थात् सम्भोग प्रजोत्पादनको कर्त्तव्य समझकर तथा उसके लिए ही हो। इसके अतिरिक्त कभी एकान्त न करे। यदि एक पुरुष इस प्रकार हेतुपूर्वक सम्भोगको छोडकर स्थिर वीर्य हो तो वह नैष्ठिक ब्रह्मचारीके बराबर है। सोचिए, ऐसा एकान्तवास जीवनमे कितनी बार हो सकता है ? वीर्यवान् नीरोग स्त्री-पुरुषोके लिए तो जीवन-मे एक ही बार ऐसा अवसर हो सकता है। ऐसे व्यक्ति क्यो नैष्ठिक ब्रह्म-चारीके समान न माने जाय ? जो बात मै पहले थोडी-थोडी समझता था वह आज सूर्यकी तरह स्पष्ट हो गई है। जो विवाहित है, इसे ध्यानमें रखे। पहले भी मैने यह बात बताई थी, पर उस समय मेरी इतनी श्रद्धा नही थी। उसे मै अव्यावहारिक समझता था। आज व्यावहारिक समझता हू। पशु-जीवनमे दूसरी बात हो सकती है, लेकिन मनुष्यके विवाहित जीवनका यह नियम होना चाहिए कि कोई भी पति-पत्नी बिना आवश्यक-ताके प्रजोत्पत्ति न करे और बिना प्रजोत्पादनके सम्भोग न करे।

हरिजन सेवक,

३ अप्रेल १९३७

: २५ :

आश्चर्यजनक, अगर सच है !

खासाहब अब्दुलगफ्फारखा और मै सवेरे और शाम जब घूमने जाते है तो हमारी बात-चीत अक्सर ऐसे विषयो पर हुआ करती है, जो सभीके हितके होते है । खासाहब सरहदी इलाकोमे, यहातक कि काबुल और उसके भी आगे काफी घूमे है, और सरहदी कबीलोके बारेमे उनको बडी अच्छी जानकारी है । इसलिए वह अवसर वहाके सीधे-सादे लोगोकी आदतो और रस्म-रिवाजोके बारेमे मुझे बतलाया करते है । वह मुझे बताते है कि इन लोगोकी मुख्य खुराक, जो इस सभ्यताकी हवासे अबतक अछूते ही है, मक्का और जौ की रोटी और मसूर है । वक्तन-फवक्तन वे छाछ भी ले लिया करते है । वे गोश्त खाते है, पर बहुत कम । मैने समझा कि उनकी मशहूर दिलेरीका एक-मात्र कारण उनका खुली हवामे रहना और वहाका अच्छा शक्तिवर्द्धक जलवायु ही है । 'नही, सिर्फ यही बात नही है' खासाहबने उसी वक्त कहा, 'उनमे जो ताकत व दिलेरी है उसका भेद तो हमे उनके सयमी जीवनमे मिलता है । शादी वे, मर्द व औरते दोनो ही, पूरी जवानीकी उम्रमे जाकर करते है । बेवफाई, व्यभिचार या अविवाहित प्रेमको तो वे जानते ही नही । शादीसे पहले सहवास करनेकी सजा वहा मौत है । इस तरहका गुनाह करनेवालेकी जान लेनेका उन्हे हक है ।'

अगर यह सयम या इन्द्रिय-निग्रह वहा इतना व्यापक है, जैसा कि खासाहब बतलाते है, तो इससे हमे हिन्दुस्तानमे एक ऐसा सबक मिलता है, जो हमे हृदयगम कर लेना चाहिए । मैने खासाहबके आगे यह विचार रखा कि उन लोगोके कदावर और दिलेर होनेका एक बहुत बडा सबब अगर उनका सयमी जीवन है, तो मन और शरीरके बीच पूरा सहयोग होना

ही चाहिए, क्योकि अगर मन विषय-तृप्तिके पीछे पडा रहा और शरीर-ने निग्रह किया, तो इससे प्राण-शक्तिका इतना भयकर नाश होगा कि शरीरमे कुछ भी नही बच रहेगा। खासाहव मान गये कि यह अनुमान ठीक है। उन्होने कहा कि जहातक मै इसकी जाच कर सका हू, मुझे लगता है कि वे लोग सयमके इतने ज्यादा आदी हो गये है कि नौजवान मर्दो और औरतोका शादीसे पहले विषय-तृप्ति करनेका कभी मन ही नही होता। खासाहवने मुझसे यह भी कहा कि उन इलाकोकी औरते कभी पर्दा नही करती, वहा झूठी लज्जा नही है, औरते निडर है, चाहे जहा आजादीसे घूमती है और अपनी सम्भाल खुद कर सकती है, अपनी इज्जत-आवरू वचा सकती है, किसी मर्दसे वे अपनी रक्षा नही कराना चाहती, उन्हे जरूरत भी नही। तो भी खासाहव यह मानते है कि उनका यह सयम बुद्धि या जीती-जागती श्रद्धापर आधार नही रखता, इसलिए जब ये पहाडोके रहनेवाले लोग सभ्य या नजाकतकी जिन्दगीके सम्पर्कमे आते है, तो उनका वह सयम टूट जाता है। सभ्यताके सम्पर्कमे आकर जब वे अपनी पुरानी वात छोड देते है, तो उन्हे इसके लिए कोई सजा नही मिलती और उनकी वेवफाई और व्यवहारको पब्लिक कम या ज्यादा उपेक्षाकी नजरसे देखती है। इससे ऐसे विचार सामने आ जाते है, जिनकी मुझे फिलहाल चर्चा नही करनी चाहिए। यह लिखनेका तो अभी मेरा यह मतलब है कि खासाहवकी तरह जो लोग इन फिरकोके आदमियोके वारेमे जानकारी रखते हो, और उनके कथनका समर्थन करते हो, उनसे इसपर और भी रोशनी डलवाई जाय, और मैदानोमे रहनेवाले नौजवानो और युवतियोको वतलाया जाय कि सयमका पालन, अगर वह इन पहाडी फिरकोके लिए सचमुच स्वाभाविक चीज है, जैसा कि खासाहवका खयाल है, तो हम लोगोके लिए भी उसे उतना ही स्वाभाविक होना चाहिए— अगर अच्छे-अच्छे विचारोको हम अपने विचार-जगत्मे वसा ले, और यो ही घुस आनेवाले वाधक विचारो या विषय-विकारोको जगह न दे। दर असल, अगर सद्विचार काफी वडी सख्यामे हमारे मनमे वस जाय, तो वाधक विचार वहा ठहर ही नही सकते। अवश्य इसमे साहसकी जरूरत

है । आत्म-सयम कायर आदमीको कभी हासिल नही होता । आत्म-सयम तो प्रार्थना और उपवास-रूपी जागरूकता और निरन्तर प्रयत्नका सुन्दर फल है । अर्थ-हीन स्तोत्रपाठ प्रार्थना नही है, न शरीरको भूखो मारना उपवास है, प्रार्थना तो उसी हृदयसे निकलती है जिसे कि ईश्वरका श्रद्धा-पूर्वक ज्ञान है; और उपवासका अर्थ है बुरे या हानिकारक विचार, कर्म या आहारसे परहेज रखना । मन विविध प्रकारके व्यजनोकी ओर दौड रहा है और शरीरको भूखो मारा जा रहा है, तो ऐसा उपवास तो निरर्थक व्रत-उपवाससे भी बुरा है ।

हरिजन सेवक,
१० अप्रेल १९३७

: २६ :

सन्तति-निरोध

प्रश्न—दरिद्र औरतोकी सन्तान-वृद्धि रोकनेके लिए क्या उपाय करना चाहिए ?

उत्तर—हमारा तो कर्त्तव्य यही है कि उन्हे सयमका धर्म ही समझाये। कृत्रिम उपाय तो मर जाने जैसी वात है। और मै नही समझता कि देहाती स्त्रिया उन्हे अपनायगी। उनके बच्चोके लिए दूध प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न—सन्तति-निरोधके लिए स्त्रिया तो सयम करना चाहे, पर पुरुप बलात्कार करे, तब क्या किया जाय ?

उत्तर—यह तो सच्चे स्त्री-धर्मका सवाल है। सतियोको मै पूजता हू, पर उन्हे कुएमे नही गिराना चाहता। स्त्रीका सच्चा धर्म तो द्रोपदीने वताया है। पति अगर गिरता है तो स्त्री न गिरे। स्त्रीके सयममे बाधा डालना शुद्ध व्यभिचार है। यदि वह बलात्कार करने आवे तो उसे थप्पड मारकर भी सीधा करना उसका धर्म है। व्यभिचारी पतिके लिए वह दरवाजा वन्द कर दे। अधर्मी पतिकी पत्नी बननेसे उसे इन्कार करना चाहिए। हमे स्त्रियोके अन्दर यह हिम्मत पैदा कर देनी चाहिए।

प्रश्न—मध्यम-वर्गकी स्त्रियोका सतति-निरोधके विपयमे क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर—मध्यम-वर्गकी हो या वादशाही-वर्गकी हो, भोग भोगना हमारे हाथमे है; लेकिन परिणामके वादशाह हम नही वन सकते। सिद्धि होगी या नही, यह शका करना हमारा काम नही है। हमारा काम तो सिर्फ यही होगा कि सत्य-धर्म सिखाए। मध्यम-श्रेणीकी स्त्रिया नये-नये

उपाय काममे लाए तो हमे मना करना चाहिए। सयम ही एक-मात्र उपाय हो सकता है।

प्रश्न—पतिको उपदश जैसा कठिन रोग हो तब स्त्री क्या करे ?

उत्तर—उस हालतमे सन्तति-निरोधके उपायोसे भी स्त्रीका बचाव नही हो सकता। ऐसे पतिको क्लीव ही समझकर उसे दूसरी शादी कर लेनी चाहिए, इसके लिए स्त्रिया इतनी विद्या सीख ले, जिससे वे स्वावलम्बी बन जाय।

गाधी-सेवा-सघ, द्वितीय अधिवेशन
१० अप्रेल १९३७

: २७ :

विवाहकी मर्यादा

श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखते है .

'हरिजन सेवक' के इसी अकमे 'धर्म-सकट' नामक आपका लेख पढा। उसमे आपने लिखा है कि उक्त प्रकारके (अर्थात् मामा-भाजीके सम्बन्ध जैसे) सम्बन्धका प्रतिवन्ध सर्वमान्य नही है। ऐसे प्रतिबध रूढियोसे वने है। यह देखनेमे नही आता कि ये प्रतिवन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे वने है।"

मेरा अनुमान यह है कि ये प्रतिवन्ध शायद सन्तानोत्पत्तिकी दृष्टिसे लगाये गये है। इस शास्त्रके ज्ञाता ऐसा मानते है कि विजातीय तत्त्वोके मिश्रणसे सन्तति अच्छी होती है। इसलिए सगोत्र और सपिण्ड कन्याओका पाणिग्रहण नही किया जाता।

यदि यह माना जाय कि यह केवल रूढि है तो फिर सगी और चचेरी वहनोके सम्वन्धपर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है ? यदि विवाहका हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पादनके ही लिए दम्पतिका सयोग करना योग्य है तो फिर वर-कन्याके चुनावके औचित्यकी कसौटी सु-प्रजननकी क्षमता ही होनी चाहिए। क्या और कसौटिया गौण समझी जाय ? यदि हा, तो किस क्रमसे, यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी रायमे वह इस प्रकार होना चाहिए—

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम।

(२) सुप्रजननकी क्षमता।

(३) कौटुम्विक और व्यावहारिक सुविधा।

(४) समाज और देशकी सेवा।

(५) आध्यात्मिक उन्नति।
आपका इस सम्बन्धमे क्या मत है ?

हिन्दू-शास्त्रोमे पुत्रोत्पत्तिपर जोर दिया गया है। सधवाओको आशीर्वाद दिया जाता है, "अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव।" आप जो यह प्रतिपादन करते है कि दम्पति सतानके लिए सयोग करे तो इसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ एक ही सतान उत्पन्न करे, फिर वह लडका हो या लडकी ? वश-वर्धनकी इच्छाके साथ ही 'पुत्रसे नाम चलता है' यह इच्छा-भी जुडी हुई मालूम होती है। केवल लडकीसे इस इच्छाका कैसे समाधान हो सकता है ? वल्कि अभीतक समाजमे 'लडकीके जन्म' का उतना स्वागत नही होता, जितना कि लडकेके जन्मका होता है। इसलिए यदि इन इच्छाओको सामाजिक माना जाय तो फिर एक लड़का और एक लड़की—इस तरह दो सतति पैदा करनेकी छूट देना क्या अनुचित होगा ?

केवल सतानोत्पादनके लिए सयोग करनेवाले दम्पति ब्रह्मचारीवत् ही समझे जाने चाहिए—यह ठीक है—यह भी सही है कि सयत जीवनमे एक ही वार सयोगसे गर्भ रह जाता है। पहली वातकी पुष्टिमे एक कथा प्रचलित है—

वशिष्ठकी कुटियाके सामने एक नदी वहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वशिष्ठ गृहस्थ थे। जव भोजन पक जाता, तो पहले अरुन्धती थाल परोसकर विश्वामित्रको खिलाने जाती, वादको वशिष्ठके घरपर सव लोग भोजन करते। यह नित्य-क्रम था। एक रोज वारिश हुई और नदीमे वाढ आ गई। अरुन्धती उस पार न जा सकी। उसने वशिष्ठसे इसका उपाय पूछा। उन्होने कहा—'जाओ, नदीसे कहना, मै सदा निराहारी विश्वामित्रको भोजन देने जा रही हू, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धतीने इसी प्रकार नदीसे कहा—और उसने रास्ता दे दिया। तव अरुन्धतीके मनमें वड़ा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज तो खाना खाते हैं, फिर निराहारी कैसे हुए ? जव विश्वामित्र खाना खा चुके, तव अरुन्धतीने उनसे पूछा—'मै वापस कैसे जाऊं, नदीमे तो वाढ है ?' विश्वामित्रने उलटकर

पूछा—'तो आई कैसे ?' उत्तरमे अरुन्धतीने वशिष्ठका पूर्वोक्त नुसखा बतलाया। तब विश्वामित्रने कहा—'अच्छा तुम नदीसे कहना, सदा ब्रह्मचारी वशिष्ठके यहा लौट रही हू। नदी, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धतीने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरजका ठिकाना न रहा। वशिष्ठके सौ पुत्रोकी तो वह स्वय ही माता थी। उसने वशिष्ठसे इसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्रको सदा निराहारी और आपको सदा ब्रह्मचारी कैसे मानू ? वशिष्ठने बताया—"जो केवल शरीर-रक्षणके लिए ही ईश्वरार्पण-बुद्धिसे भोजन करता है, वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी ही है, और जो केवल स्व-धर्म पालनके लिए अनासक्तिपूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह सयोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।'

परन्तु इसमे और मेरी समझमे तो शायद हिन्दू-शास्त्रमे भी केवल एक सन्तति—फिर वह कन्या हो या पुत्र—का विधान नही है। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्रीका नियम मान्य हो,तो मै समझता हू, बहुतेरे दम्पतियोको समाधान हो जाना चाहिए। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि विना विवाह किये एक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो सकता है; परन्तु विवाह करनेपर केवल सन्तानोत्पादनके लिए, और फिर भी प्रथम सततिके ही लिए सयोग करके फिर आजन्म सयमसे रहना उससे कही कठिन है। मेरा तो ऐसा मत बनता जा रहा है कि 'काम' मनुष्यमे स्वाभाविक प्रेरणा है। उसमे सयम सु-सस्कारका सूचक है। 'सततिके लिए सयोग' का नियम बना देनेसे सु-सस्कार या धर्मकी तरफ मनुष्यकी गति होती है, इसलिए यह वाछनीय है। सतानोत्पत्तिके ही लिए सयोग करनेवाले सयमीका आदर करूगा, कामेच्छाकी तृप्ति करनेवालेको भोगी कहूगा, पर उसे पतित नही मानना चाहता, न ऐसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझकर लोग उसका तिरस्कार करे। इस विचारमे मेरी कही गलती हो, तो बतावे।"

विवाहमे जो मर्यादा बाधी गई है, उसका शास्त्रीय कारण मै नही जानता। रूढिको ही, जो मर्यादाकी वृद्धिके लिए बनाई जाती है, नैतिक कारण माननेमे कोई आपत्ति नही है। सतान-हितकी दृष्टिसे ही अगर

भाई-बहनके सम्बन्धका प्रतिबन्ध योग्य है, तो चचेरी बहन इत्यादिपर भी प्रतिबन्ध होना चाहिए, लेकिन भाई-बहनके सम्बन्ध या ऐसे सम्बन्धके अतिरिक्त कोई प्रतिबन्ध धर्ममे नही माना जाता। इसलिए रूढिका जो प्रतिबन्ध जिस समाजमे हो, उसका अनुसरण उचित मालूम देता है। नैतिक विवाहके लिए जो पाच मर्यादाए हरिभाऊजीने रखी है, उनका क्रम बदलना चाहिए। पारस्परिक प्रेम और आकर्षणको अन्तिम स्थान देना चाहिए। अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय, तो दूसरी सब शर्ते उसके आश्रयमे जानेसे निरर्थक बन सकती है। इसलिए उक्त क्रममे आध्यात्मिक उन्नतिको प्रथम स्थान देना चाहिए। समाज और देश-सेवाको दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधाको तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेमको चौथा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्तोका अभाव हो, वहा पारस्परिक प्रेमको स्थान नही मिल सकता। अगर प्रेमको प्रथम स्थान दिया जाय तो वह सर्वोपरि बनकर दूसरोकी अवगणना कर सकता है, और करता है, ऐसा आजकलके व्यहावरमे देखनेमे आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवल कथाओमे भी यह पाया जाता है। इसलिए यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्तोका पालन होते हुए भी जहा पारस्परिक आकर्षण नही है वहा विवाह त्याज्य है। सुप्रजननकी क्षमताको शर्त न माना जाय, क्योकि यही एक वस्तु विवाहकी शर्त नही।

हिन्दू-शास्त्रमे पुत्रोत्पत्तिपर अवश्य जोर दिया गया है। वह उस कालके लिए ठीक था, जब समाजमे शस्त्र-युद्धको अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुष-वर्गकी बडी आवश्यकता थी। इसी कारणसे एकसे अधिक पत्नियोकी भी इजाजत थी और अधिक पुत्रोसे अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टिसे देखे तो एक ही सतति 'धर्मज' या 'धर्मजा' है। मै पुत्र और पुत्रीमे कोई भेद नही करता हू, दोनो एक समान स्वागत-के योग्य है।

[illegible], [illegible] सुप्रजनन शास्त्रमे अच्छा है। उसे [illegible] मगर उसका [illegible] माननेकी आवश्यकता नही। उसमे इतना ही सार [illegible]

विरोधी नही है। कामाग्निकी तृप्तिके कारण किया हुआ सयोग त्याज्य है। उसे निन्द्य माननेकी आवश्यकता नही। असख्य स्त्री-पुरुषोका मिलन भोगके ही कारण होता है, और होता रहेगा। उससे जो दुष्परिणाम होते रहते है, उन्हे भोगना पडेगा। जो मनुष्य अपने जीवनको धार्मिक बनाना चाहता है, जो जीव-मात्रकी सेवाको आदर्श समभकर ससार-यात्रा समाप्त करना चाहता है, उसके लिए ही ब्रह्मचर्यकी मर्यादाका विचार किया जा सकता है। और ऐसी मर्यादा आवश्यक भी है।

हरिजन सेवक,
१५ अप्रेल १९३७

: २८ :

एक युवककी कठिनाई

नवयुवकोके लिए मैने 'हरिजन' मे जो लेख लिखा था, उसपर एक नवयुवक, जिसने अपना नाम गुप्त ही रखा है, अपने मनमे उठे एक प्रश्नका उत्तर चाहता है। यो गुमनाम पत्रोपर कोई ध्यान न देना ही सबसे अच्छा नियम है; लेकिन जब कोई सारयुक्त बात पूछी जाय, जैसी कि इसमे पूछी गई है, तो कभी-कभी मै इस नियमको तोड़ भी देता हू।

पत्र हिन्दीमे है और कुछ लम्बा है। उसका सारांश यह है—

"आपके लेखोको पढकर मुझे सन्देह होता है कि आप युवकोके स्वभावको कहातक समझते है। जो बात आपके लिए सम्भव हो गई है वह सब युवकोके लिए सम्भव नही है। मेरा विवाह हो चुका है। इतनेपर भी मै स्वय तो सयम कर सकता हू; लेकिन मेरी पत्नी ऐसा नही कर सकती। बच्चे पैदा हो, यह तो वह नही चाहती; लेकिन विषयोपभोग करना चाहती है। ऐसी हालतमे, मै क्या करू? क्या यह मेरा फर्ज नही है कि मै उसकी भोगेच्छाको तृप्त करूं? दूसरे ज़रियेसे वह अपनी इच्छा पूरी करे, इतनी उदारता तो मुझमे नही है। फिर अखबारोमे जो पढता रहा हूं, उससे मालूम पडता है कि विवाह-सम्बन्ध कराने और नव-दम्पतियोको आशीर्वाद देनेमे भी आपको कोई आपत्ति नही है। यह तो आप अवश्य जानते होगे, या आपको जानना चाहिए कि वे सब उस ऊचे उद्देश्यसे ही नही होते जिसका कि आपने उल्लेख किया है।"

पत्र-लेखकका कहना ठीक है। विवाहके लिए उम्र, आर्थिक स्थिति आदिकी एक कसौटी मैने बना रखी है। उसको पूरा करके जो विवाह होते है, मै उनकी मगल-कामना करता हूं। इतने विवाहोमे मै शुभ-कामना करता हूं, इससे सम्भवत. यही प्रकट होता है कि देशके युवकोको इस हद

तक मै जानता हू कि यदि वे मेरा पथ-प्रदर्शन चाहे तो मै वैसा कर सकता हू ।

इस भाईका मामला मानो इस तरहका एक नमूना है जिसके कारण यह सहानुभूतिका पात्र है, लेकिन सयोगका एक-मात्र उद्देश्य प्रजनन ही है, यह मेरे लिए एक प्रकारसे नई खोज है । इस नियमको जानता तो मै पहलेसे था, लेकिन जितना चाहिए उतना महत्व इसे मैंने पहले कभी नही दिया था । अभीतक मै इसे पवित्र इच्छा-मात्र समझता था । लेकिन अव तो मै इसे विवाहित जीवनका ऐसा मौलिक विधान मानता हू कि यदि इसके महत्वको पूरी तरह मान लिया गया तो इसका पालन कठिन नही है । जब समाजमे इस नियमको उपयुक्त स्थान मिल जायगा तभी मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा, क्योकि मेरे लिए तो यह जाज्वल्यमान विधान है । जव हम इसको भग करते है, तो उसके दण्डस्वरूप वहुत-कुछ भुगतना पडता है । पत्र-प्रेषक युवक यदि इसके उस महत्त्वको समझ जाय, जिसका कि अनुमान नही लगाया जा सकता है और यदि उसे अपनेमे विश्वास एव अपनी पत्नीके लिए प्रेम हो, तो वह अपनी पत्नीको भी अपने विचारोका वना लेगा। उसका यह कहना कि मै स्वय सयम कर सकता हू क्या सच है ? क्या उसने अपनी पाशविक वासनाओको जन-सेवा जैसी किसी ऊची भावनामे परिणत कर लिया है ? क्या स्वभावत वह ऐसी कोई वात नही करता, जिससे उसकी पत्नीकी विषय-भावनाको प्रोत्साहन मिले ? उसे जानना चाहिए कि हिन्दू-शास्त्रानुसार आठ तरहके सहवास माने गए है, जिनमे सकेतो द्वारा विषय-प्रवृत्तिको प्रेरित करना भी शामिल है । क्या वह इससे मुक्त है ? यदि वह ऐसा हो और सच्चे दिलसे यह चाहता हो कि उसकी पत्नीमे भी विषय-वासना न रहे तो वह उसे शुद्धतम प्रेमसे सरावोर करे, उसे यह नियम समझावे, सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके वगैर सहवास करनेसे शारीरिक हानि होती है वह उसे समझावे और वीर्य-रक्षा-का महत्व वतलावे । अलावा इसके उसे चाहिए कि अपनी पत्नीको अच्छे कामोकी ओर प्रवृत्त करके उनमे उसे लगाये रखे और उसकी विषय-वृत्तिको शात करनेके लिए उसके भोजन, व्यायाम आदिको नियमित करनेका यत्न

करे। और इस सबसे बढ़कर यदि वह धर्म-प्रवृत्तिका व्यक्ति है, तो अपने उस जीवित विश्वासको वह अपनी सहचरी पत्नीमें भी पैदा करनेकी कोशिश करे, क्योंकि मुझे यह बात कहनी होगी कि ब्रह्मचर्य-व्रतका तबतक पालन नहीं हो सकता जबतक कि ईश्वरमें, जो कि जीता-जागता सत्य है, अटूट विश्वास न हो। आजकल तो यह एक फैशन-सा बन गया है कि जीवनमें ईश्वरका कोई स्थान नहीं समझा जाता और सच्चे ईश्वरमें अडिग आस्था रखनेकी आवश्यकताके बिना ही सर्वोच्च जीवनतक पहुंचनेपर जोर दिया जाता है। मैं अपनी यह असमर्थता कबूल करता हूं कि जो अपनेसे ऊंची किसी दैवी-शक्तिमें विश्वास नहीं रखते, या उसकी जरूरत नहीं समझते, उन्हें मैं यह बात समझा नहीं सकता। पर मेरा अपना अनुभव तो मुझे इसी ज्ञानपर ले जाता है कि जिसके नियमानुसार सारे विश्वका सञ्चालन होता है, उस शाश्वत नियममें अचल विश्वास रखे बिना पूर्णतम जीवन सम्भव नहीं है। इस विश्वाससे विहीन व्यक्ति तो समुद्रसे अलग आ पड़नेवाली उस बूंदके समान है, जो नष्ट होकर ही रहती है, परन्तु जो बूंद समुद्रमें ही रहती है वह उसकी गौरव-वृद्धिमें योग देती है और हमें प्राण-प्रद वायु पहुंचानेका सम्मान उसे प्राप्त होता है।

हरिजन सेवक
२४ अप्रैल १९३७

: २६ :

विद्यार्थियोंके लिए

" 'हरिजन' के पिछले एक अकमे आपने 'एक युवककी कठिनाई' शीर्षक एक लेख लिखा है, जिसके सम्बन्धमे नम्रता-पूर्वक आपको यह लिख रहा हू । मुझे ऐसा लगता है कि आपने उस विद्यार्थीके साथ न्याय नही किया । यह प्रश्न आसानीसे हल होनेवाला नही । उसके सवालका आपने जो जवाब दिया है, वह सदिग्ध और सामान्य रायका है । आपने विद्यार्थियोसे यह कहा है कि वे झूठी प्रतिष्ठाका खयाल छोडकर साधारण मज़दूरोकी तरह बन जाय । यह सब सिद्धातकी बाते आदमीको कुछ रास्ता नही सुझाती और न आप-जैसे बहुत ही व्यावहारिक आदमीको शोभा देती है । इस प्रश्नपर आप अधिक विस्तारके साथ विचार करनेकी कृपा करे और नीचे मै जो उदाहरण दे रहा हू, उसमे क्या रास्ता निकाला जाय, इसका तफसील-वार व्यावहारिक और व्यापक उत्तर दे ।

मै लखनऊ-यूनिवर्सिटीमे एम० ए० का विद्यार्थी हू । प्राचीन भारतीय इतिहास मेरा विषय है । मेरी उम्र करीबन २१ सालकी है । मै विद्याका प्रेमी हू और मेरी यह इच्छा है कि जीवनमे जितनी भी विद्या प्राप्त कर सकू, करू । आपका बताया हुआ जीवनका आदर्श भी मुझे प्रिय है । एकाध महीनेमे मै एम० ए० फाइनलकी परीक्षा दे दूगा और मेरी पढाई पूरी हो जायगी । इसके बाद मुझे 'जीवनमे प्रवेश' करना पडेगा ।

मुझे अपनी पत्नीके अलावा ४ भाइयो, (मुझसे सब छोटे है, और एककी शादी भी हो चुकी है) २ बहनो और माता-पिताका पोषण करना है । हमारे पास कोई पूजीका साधन नही है । ज़मीन है, पर बहुत ही थोडी ।

अपने भाई-बहनोकी शिक्षाके लिए क्या करू ? फिर बहनोकी शादी

भी तो जल्दी करनी है। इस सबके अलावा घर-भरके लिए अन्न और वस्त्र कहासे लाकर जुटाऊगा ?

मुझे मौज व टीमटामसे रहनेका मोह नही है। मै और मेरे आश्रित-जन अच्छा निरोगी जीवन बिता सकें, और वक्त-जरूरतका काम अच्छी तरह चलता जाय, तो इतनेसे मुझे सतोष है। दोनो समय स्वास्थ्यकर आहार और ठीक-ठीक कपडे मिलते जाय, बस इतना ही मेरे सामने सवाल है।

पैसेके बारेमे मै ईमानदारीके साथ रहना चाहता हू। भारी सूद लेकर या शरीर बेचकर मुझे रोजी नही कमानी है। देश-सेवा करनेकी भी मुझे इच्छा है। अपने इस लेखमे आपने जो शर्तें रखी है, इन्हे पूरा करनेके लिए मै तैयार हू।

पर मुझे यह नही सूझ रहा है कि मै क्या करू ? शुरुआत कहा और कैसे की जाय ? शिक्षा मुझे केवल किताबी और अव्यावहारिक मिली है। कभी-कभी मै सूत कातनेका विचार करता हू; पर कातना सीखे कैसे, और उस सूतका क्या होगा, इसका भी मुझे पता नहीं।

जिन परिस्थितियोमे मै पड़ा हू, उनमे आप मुझे क्या सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधन काममे लानेकी सलाह देगे ? सयम और ब्रह्मचर्यमे मेरा विश्वास है, पर ब्रह्मचारी बननेमे मुझे अभी कुछ समय लगेगा। मुझे भय है कि पूर्ण संयमकी सिद्धि प्राप्त होनेके पूर्व यदि मै कृत्रिम साधनोका उपयोग नही करूगा, तो मेरी स्त्रीके कई बच्चे पैदा हो जायगे और इस तरह बैठे ठाले मै आर्थिक बरबादी मोल ले लूगा। और फिर मुझे ऐसा लगता है कि अपनी स्त्रीसे, उनके स्वाभाविक भावना-विकासमे, कडे सयमका पालन कराना बिलकुल ही उचित नही। आखिरकार साधारण स्त्री-पुरुषोके जीवनमे विषय-भोगके लिए तो स्थान है ही। मै उसमे अपवाद-रूप नही हू। और मेरी स्त्रीको, आपके 'ब्रह्मचर्य', 'विषय-सेवनके खतरे' आदि विषयोके महत्त्वपूर्ण लेख पढने व समझनेका मौका नही मिला, इसलिए वह इससे भी कम तैयार है।

मुझे अफसोस है कि पत्र ज्यादा लम्बा हो गया है; पर मै संक्षेपमें

लिखकर इतनी स्पष्टताके साथ अपने विचार जाहिर नही कर सकता था।

इस पत्रका आपको जो उपयोग करना हो वह आप खुशीसे कर सकते है।"

यह पत्र मुझे फरवरीके अन्तमे मिला था, पर जवाब इसका मै अब लिख सका हू। इसमे ऐसे महत्वके प्रश्न उठाये गये है कि हर एक-की चर्चाके लिए इस अखबारके दो-दो कालम चाहिए, पर मै सक्षेपमे ही जवाव दूगा।

इस विद्यार्थीने जो कठिनाइया बताई है, वे देखनेमे गम्भीर मालूम होती है; पर वे उसकी खुदकी पैदा की हुई है। इन कठिनाइयोके नाम निर्देश भरसे ही जान लेना चाहिए कि इस विद्यार्थीकी और अपने देशकी शिक्षा-पद्धतिकी स्थिति कितनी खोटी है। यह पद्धति शिक्षाको केवल वाजारू, वेचकर पैसा पैदा करनेकी चीज बना देती है। मेरी दृष्टिसे शिक्षाका उद्देश्य बहुत ऊचा ओर पवित्र है। यह विद्यार्थी अगर अपनेको करोडो आदमियोमे-से एक माने, तो वह देखेगा कि वह अपनी डिगरीमे जो आशा रखता है, वह करोडो युवक और युवतियोसे पूरी नही हो सकती। अपने पत्रमे उसने जिन सम्बन्धियोका जिक्र किया है उनकी परवरिशके लिए वह क्यो जवाबदार वने? वडी उम्रके आदमी अच्छे मजबूत शरीरके हो, तो वे अपनी आजीविकाके लिए मेहनत-मजूरी क्यो न करे? एक उद्योगी मधुमक्खीके पीछे---भले ही वह नर हो---बहुत-सी आलसी मधु-मक्खियोका रखना गलत तरीका है।

इस विद्यार्थीकी उलझनका इलाज, उसने जो बहुत-सी चीजे सीखी है, उनके भूल जानेमे है। उसे शिक्षा-सम्बन्धी अपने विचार बदल देने चाहिए। अपनी बहनोको वह ऐसी शिक्षा क्यो दे, जिसपर इतना ज्यादा पैसा खर्च करना पडे? वे कोई उद्योग-धन्धा वैज्ञानिक रीतिसे सीखकर अपनी बुद्धिका विकास कर सकती है। जिस क्षण वे शरीरके विकासके साथ-साथ मनका विकास कर लेगी, अगर वे ऐसा करेगी, उसी क्षण वे अपनेको समाजका शोषण करने वाली नही, किन्तु सेविकाये समझना

सीखेगी, तो उनके हृदयका अर्थात् आत्माका भी विकास होगा। और वे अपने भाईके साथ आजीविकाके लिए काम करनेमे समान हिस्सा लेगी।

पत्र लिखनेवाले विद्यार्थीने अपनी बहनोके ब्याहका उल्लेख किया है। उसकी भी यहा चर्चा कर लू। शादी 'जल्दी' होगी ऐसा लिखनेका क्या अर्थ है, यह मै नही जानता। २० सालकी उम्र न हो जाय, तबतक उनकी शादी करनेकी जरूरत ही नही और अगर वह अपने जीवनका सारा क्रम बदल लेगा तो वह अपनी बहनोको अपना-अपना वर खुद ढूढ लेने देगा; और विवाह-सस्कारमे ५) रुपयेसे अधिक खर्च होना ही नही चाहिए। मै ऐसे कितने ही विवाहोमे उपस्थित रहा हू, और उनमे उन लड़कियोके पति या उनके बडे-बूढे खासी अच्छी स्थितिके ग्रेजुएट थे।

कातना कहा और कैसे सीखा जा सकता है, उसे इसका भी पता नही। उसकी यह लाचारी देखकर करुणा आती है। लखनऊमे वह प्रयत्न-पूर्वक तलाश करे, तो कातना सिखाने-वाले उसे वहा कई युवक मिल सकते है; पर उसे अकेला कातना सीख कर बैठे रहनेकी जरूरत नही, हालाकि सूत कातना भी पूरे समयका धन्धा होता जा रहा है, और वह ग्राम-वृत्ति वाले स्त्री-पुरुषोको पर्याप्त आजीविका दे सकनेवाला उद्योग बनता जा रहा है। मुझे आशा है कि मैने जो कहा है, उसके बाद बाकीका सब यह विद्यार्थी खुद समझ लेगा।

अब सन्तति-नियमनके कृत्रिम साधनोके सम्बन्धमे यहा भी उसकी कठिनाई काल्पनिक ही है। यह विद्यार्थी अपनी स्त्रीकी बुद्धिको जिस तरह आक रहा है, वह ठीक नही। मुझे तो जरा भी शका नही कि अगर वह साधारण स्त्रियोकी तरह है, तो पतिके सयमके अनुकूल वह सहल हो जायगी। विद्यार्थी खुद अपने मनसे पूछकर देखे कि उसके मनमे पर्याप्त सयम है या नही? मेरे पास जितने प्रमाण है, वे तो सब यही बताते है कि सयम-शक्तिका अभाव स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमे ही अधिक होता है; पर इस विद्यार्थीको अपनी सयम रखनेकी शक्ति कम समझकर उसे हिसाब-मेसे निकाल देनेकी जरूरत नही। उसे बड़े कुटुम्बकी सम्भावनाका मर्दानगीके साथ सामना करना चाहिए, और उस परिवारके पालन-पोषण

करनेका अच्छे-से-अच्छा ज़रिया ढूढ लेना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि करोडो आदमियोको इन कृत्रिम साधनोका पता ही नही, इन साधनोको काममे लानेवालोकी सख्या तो बहुत-बहुत होगी तो कुछेक हजार ही होगी। उन करोडोको इस बातका भय नही होता कि बच्चोका पालन किस तरह करेगे, यद्यपि बच्चे वे सब मा-बापकी इच्छासे नही होते। मै चाहता हू कि मनुष्य अपने कर्मके परिणामका सामना करनेसे इन्कार न करे। ऐसा करना कायरता है। जो लोग कृत्रिम साधनोको काममे लाते है, वे सयमका गुण नही सीख सकते। उन्हे इसकी ज़रूरत नही पडेगी। कृत्रिम साधनोके साथ भोगा हुआ भोग बच्चोका आना तो रोकेगा, पर पुरुष और स्त्री दोनोकी—स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषकी अधिक—जीवन-शक्तिको वह चूस लेगा। आसुरी वृत्तिके खिलाफ युद्ध करनेसे इन्कार करना नामर्दी है। पत्र-लेखक अगर अनचाहे बच्चोको रोकना चाहता है, तो उसके सामने एक-मात्र अचूक और सम्मानित मार्ग यही है कि उसे सयम-पालन करनेका निश्चय कर लेना चाहिए। सौ बार भी उसके प्रयत्न निष्फल जाय तो भी क्या सच्चा आनन्द तो युद्ध करनेमे है, उसका परिणाम तो ईश्वरकी कृपासे ही आता है।

हरिजन सेवक,
२४ अप्रेल १९३७

: ३० :

विवाह-संस्कार

[गाधी-सेवा-सघके हुदलीमे हुए तृतीय अधिवेशनमे गाधीजीकी पोती तथा श्री महादेव देसाईकी वहनका विवाह हुआ था ।

अपने स्वभावके विपरीत, गाधीजी ने उस दिन सवकी उपस्थितिमे वर-वधुओसे जो कहना था वह नही कहा; वल्कि खानगी तौरपर उन्हे उपदेश दिया । किन्तु गाधीजीके वे विचार सभी दम्पतियोके लिए हितकर है, अत मै उन विचारोको नीचे सारांश रूपमे देनेका, जहातक मुझसे हो सकेगा, प्रयत्न करता हू । —म० दे०]

"तुम्हे यह जानना ही चाहिए कि मै इन सस्कारोमे उसी हदतक विश्वास करता हू, जहातक कि ये हमारे अन्दर कर्त्तव्य-पालनकी भावना-को जगाते है । जवसे मैने अपने सम्वन्धमे विचार करना शुरू किया, तभी-से मेरी यह मनोवृत्ति है । तुमने जिन मत्रोका उच्चारण किया, तभीसे मेरी यह मनोवृत्ति है । तुमने जिन मत्रोका उच्चारण किया है और जिन प्रतिज्ञाओको लिया है, वे सव-की-सव सस्कृतमे थी; पर तुम्हारे लिए उन सवका अनुवाद कर दिया गया था । सस्कृतका हमने इसलिए आश्रय लिया, क्योकि मै जानता हू कि सस्कृत शव्दोमे शक्ति है, जिसके प्रभावके नीचे आना मनुष्य पसन्द ही करेगा ।

"विवाह-सस्कारके समय पतिने जो इच्छाए प्रकट की थी, उनमे एक यह भी है कि वधू अच्छे निरोगी पुत्रकी जननी वने । इस कामनासे मुझे आघात नही पहुंचा । इसके माने यह नही है कि सन्तान पैदा करना लाजिमी है; पर इसका अर्थ यह है कि यदि संतानकी आवश्यकता है, तो शुद्ध धर्म-भावनासे विवाह करना जरूरी है । जिसे सन्तानकी जरूरत नही, उसे

'विवाह करनेकी कोई आवश्यकता ही नही। विषय-भोगकी तृप्तिके लिए किया हुआ विवाह विवाह नही वह तो व्यभिचार है। इसलिए आजके विवाह-सस्कारोका अर्थ यह है कि जब स्त्री-पुरुष दोनोकी ही सन्ततिके लिए स्पष्ट इच्छा हो, केवल तभी उन्हे सम्भोगकी अनुमति मिलती है। यह सारी ही कल्पना पवित्र है। इसलिए इस कामको प्रार्थनापूर्वक ही करना होगा। कामोत्तेजना और विषय-सुखकी प्राप्तिके लिए साधारणतया स्त्री-पुरुषमे जो प्रेमासक्ति देखनेमे आती है, उसका इस पवित्र कल्पनामे नाम भी नही। अगर दूसरी सन्तान नही चाहिए, तो स्त्री-पुरुषका ऐसा सम्भोग जीवनमे केवल एक ही बार होगा। जो दम्पति चारित्र्य और शरीरसे स्वस्थ नही है, उन्हे सम्भोग करनेकी कोई आवश्यकता नही, और अगर वे ऐसा करते है तो वह 'व्यभिचार' है। अगर तुमने यह सीखा हो कि विवाह विषय-तृप्तिके लिए है तो तुम्हे यह चीज भूल जानी चाहिए। यह तो एक वहम है। तुम्हारा सारा ही सस्कार पवित्र अग्निकी साक्षीमे हुआ है। तुम्हारे अन्दर जो भी काम-वासना हो उसे वह पवित्र अग्नि भस्म कर दे।

"एक और वहमसे तुम्हे अलग रखनेके लिए मै तुमसे कहूगा। यह वहम दुनियामे आजकल जोरोसे फैलता जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि इन्द्रिय-निग्रह और सयम गलत तरीके है, और विषय-वासनाकी अबाध तृप्ति और स्वच्छन्द प्रेम सबसे अधिक प्राकृतिक वस्तु है। इससे अधिक विनाशकारी वहम कभी सुननेमे नही आया। हो सकता है कि तुम आदर्शतक न पहुच सको, तुम्हारा शरीर अशक्त हो; पर इससे आदर्शको नीचा न कर देना, अधर्मको धर्म न बना लेना। अपनी आत्म-निर्बलताके क्षणोमे मेरा यह कहना याद रखना। इस पवित्र अवसरकी स्मृति तुम्हे डावाडोल न होने दे, और तुम्हे इन्द्रिय-निग्रहकी ओर ले जाय। विवाह-का अर्थ ही इन्द्रिय-निग्रह और काम-वासनाका दमन है। अगर विवाह-का कोई दूसरा अर्थ है तो वह स्वार्पण नही, किन्तु सन्तति-प्राप्तिको छोडकर किसी दूसरे प्रयोजनसे किया हुआ विवाह विवाह नही है। विवाहने तुम्हे मैत्री और समानताके स्वर्ण-सूत्रसे बाध दिया है। पतिको अगर स्वामी कहा गया है तो पत्नीको 'स्वामिनी'। एक-दूसरेके दोनो सहायक है, जीवनके

समस्त कार्य और कर्तव्य पूरे करनेमे वे एक-दूसरेका सहयोग करने वाले है। लड़को! तुमसे मैं यह कहूगा कि अगर ईश्वरने तुम्हे अच्छी बुद्धि और उज्ज्वल भावनाए बख्शी है तो तुम अपनी पत्नियोमें भी इन सद्‌गुणोका प्रवेश करो। उनके तुम सच्चे शिक्षक और मार्ग-दर्शक बनना, उन्हे मदद देना और उन्हे मार्ग दिखाना; पर कभी उनके बाधक न बनना, न उन्हे गलत रास्ते पर ले जाना। तुम्हारे बीचमे विचार, वचन और कर्मका पूर्ण सामंजस्य हो, तुम अपने हृदयकी बात एक-दूसरेसे न छिपाओ, तुम एकात्म बन जाओ।

"मिथ्याचारी या दम्भी न बनना। जिस कामका करना तुम्हारे लिए असम्भव हो, उसे पूरा करनेके निष्फल प्रयत्नोमे अपना स्वास्थ्य न गिरा बैठना। इन्द्रिय-निग्रहसे कभी किसीका स्वास्थ्य नष्ट नही होता। जिससे मनुष्यका स्वास्थ्य नष्ट होता है, वह निग्रह नही किन्तु बाह्य अवरोध है। सच्चे आत्म-निग्रही व्यक्तिकी शक्ति तो दिन-दिन बढती है और शान्तिके वह अधिकाधिक समीप पहुचता जाता है। आत्म-निग्रहकी सबसे पहली सीढी विचारोका निग्रह है। अपनी मर्यादाको समझ लो, और जितना हो सके उतना ही करो। मैंने तो तुम्हारे सामने आदर्श रख दिया है—एक समकोण खीच दिया है। अपनी शक्तिके अनुसार जितना तुमसे हो सके उतना प्रयत्न इस आदर्शतक पहुचनेका करना। पर अगर तुम असफल हो जाओ तो दुःख या शर्मका कोई कारण नही। मैंने तो तुम्हे सिर्फ यह बतलाया है कि यज्ञोपवीत-सस्कारकी तरह विवाह भी एक स्वार्पण-सस्कार है, एक नया जन्म धारण करना है। मैंने तुमसे जो कहा है, उससे भयभीत न होना, और न कोई दुर्बलता महसूस करना। हमेशा विचार, वचन और कर्मकी पूर्ण एकताको अपना लक्ष्य बनाये रहना। विचारमे जितनी सामर्थ्य है, उतनी और किसी वस्तुमे नही। कर्म वचनका अनुसरण करता है और वचन विचारका। ससार एक महान् प्रबल विचारका ही परिणाम है, और जहा विचार प्रबल और पवित्र है वहा परिणाम भी हमेशा प्रबल और पवित्र होगा। मैं चाहता हू कि तुम एक उच्चादर्शका अभेद्य कवच धारण करके जाओ, और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हू कि तुम्हे

कोई भी प्रलोभन हानि नही पहुचा सकेगा, कोई भी अपवित्रता तुम्हारा स्पर्श नही कर सकेगी।

"जिन विधियोको तुम्हे समझाया गया है, उन्हे याद रखना। 'मधु-पर्क' की सीधी-सादी दीखनेवाली विधिको ही ले लो। इसका अभिप्राय यह है कि सारा सस्कार मधुसे परिपूर्ण है, ज़रूरत सिर्फ यह है कि जब बाकी सब लोग उसमे से अपना हिस्सा ले ले, तब तुम उसे ग्रहण करो। अर्थात् त्यागसे ही आनन्द मिलता है।"

"लेकिन," एक वरने पूछा, "अगर सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा न हो, तो क्या विवाह ही नही करना चाहिए ?"

"निश्चय ही नही", गाधीजीने कहा, "आध्यात्मिक विवाहोमे मेरा विश्वास नही है। कई ऐसे उदाहरण ज़रूर मिलते है कि जिनमे पुरुषोने शारीरिक सम्भोगका कोई ख़याल न कर सिर्फ स्त्रियोकी रक्षा करनेके विचारसे ही विवाह किये, लेकिन यह निश्चय है कि ऐसे उदाहरण बहुत कम बिरले ही है। पवित्र वैवाहिक जीवनके बारेमे मैने जो-कुछ लिखा है, वह सब तुम्हे जरूर पढ लेना चाहिए। मुझपर तो, मैने महाभारतमे जो कुछ पढा है, दिन-पर-दिन उसका ज्यादह-से-ज्यादह असर पडता जा रहा है। उसमे व्यासके नियोग करनेका वर्णन है। उसमे व्यासको सुन्दर नही बताया है, बल्कि वह तो इससे विपरीत थे। उनकी शक्ल-सूरतका उसमे जो वर्णन आया है, उससे मालूम पडता है कि देखनेमे वह बडे कुरूप थे, प्रेम-प्रदर्शनके लिए कोई हाव-भाव भी उन्होने नही बताये ? बल्कि सम्भोगसे पहले अपने सारे शरीर पर उन्होने घी चुपड लिया था। उन्होने सम्भोग किया वह विषय-वासनाकी पूर्तिके लिए नही, बल्कि सन्तानोत्पत्तिके लिए किया था। सन्तानकी इच्छा बिलकुल स्वाभाविक है, और जब एक बार यह इच्छा पूर्ण हो जाय, तो फिर सम्भोग नही करना चाहिए।

मनुने पहली सन्ततिको धर्मज अर्थात् धर्म-भावनासे उत्पन्न बताया है और उसके बाद पैदा होनेवालेको कामज अर्थात् कामवृत्तिके फल-स्वरूप पैदा होनेवाला कहा है। सार-रूपमे वैषयिक सम्बन्धोका यही विधान है। और 'विधान ही ईश्वर है और विधान या नियमका पालन ही ईश्वर-

की आज्ञाको मानना है ।' यह याद रखो कि तीन बार तुमसे यह वचन लिया गया है कि 'किसी भी रूपमे मैं इस विधानका भग नही करूगा ।' अगर मुट्ठी-भर स्त्री-पुरुष ही हमे ऐसे मिल जायं, जो इस विधानसे बन्धनेको तैयार हो तो बलवान और सच्चे स्त्री-पुरुषोकी एक जाति-की-जाति पैदा हो जायगी ।"

हरिजन सेवक,
२४ अप्रैल १९३७

: ३१ :

धर्म-संकट

एक सज्जन लिखते है

"करीब ढाई साल हुए, हमारे शहरमे एक घटना हो गई थी जो इस प्रकार है—

एक वैश्य गृहस्थकी १६ वरसकी एक कुमारी कन्या थी। लडकीका मामा, जिसकी उम्र लगभग २१ वर्षकी थी, स्थानीय कालेजमे पढता था। यह तो मालूम नही कि कबसे इन दोनो मामा और भाजीमे प्रेम था, पर जब बात खुल गई तो उन दोनोने आत्म-हत्या कर ली। लडकी तो फौरन ही जहर खानेके बाद मर गई, पर लडका दो रोज बाद अस्पतालमे मरा। लडकीको गर्भ भी था। इस बातकी शुरू-शुरूमे तो खूब चर्चा चली। यहातक कि अभागे मा-बापको शहरमे रहना भारी हो गया, पर वक्तके साथ-साथ यह बात भी दब गई और लोग भूलने लगे। कभी-कभी जब ऐसी मिलती-जुलती बात सुननेको मिलती है, तब पुरानी बातोकी भी चर्चा होती है और यह वाकया भी दोहरा दिया जाता है, पर उस जमानेमे, जब करीब-करीब सभी लडकीको और लडकेको भी बुरा-भला कह रहे थे, मैने यह राय अर्ज़ की थी कि ऐसी हालतमे समाजको विवाह कर लेनेकी इजाजत दे देनी चाहिए। इस बातसे समाजमे खूब बवण्डर उठा। आपकी इसपर क्या राय है ?"

मैने स्थानका और लेखकका नाम नही दिया है, क्योकि लेखक नही चाहते कि उनका अथवा उनके शहरका नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी इस प्रश्नपर ज़ाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि ऐसे सम्बन्ध जिस समाजमे त्याज्य माने जाते है, वहा विवाहका रूप यकायक नही ले सकते, लेकिन किसीकी स्वतन्त्रतापर समाज या सम्बन्धी

आक्रमण क्यो करे ? ये मामा और भाजी सयानी उम्रके थे, अपना हित-अनहित समझ सकते थे। उन्हे पति-पत्नीके सम्बन्धसे रोकनेका किसीको हक नही था। समाज भले ही इस सम्बन्धको अस्वीकार करता; पर उन्हे आत्म-हत्या करनेतक जाने देना तो बहुत बडा अत्याचार था।

उक्त प्रकारके सम्बन्धका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नही है। ईसाई, मुसलमान, पारसी इत्यादि कौमोमे ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नही माने जाते है—हिन्दुओमे भी प्रत्येक वर्णमे त्याज्य नही है। उसी वर्णमे भिन्न प्रान्तमे भिन्न प्रथा है। दक्षिणमे उच्च माने जाने वाले ब्राह्मणोमे ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नही, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते है। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबन्ध रूढियोसे बने है। यह देखनेमे नही आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने है।

लेकिन समाजके सब प्रतिबन्धोको नवयुवक-वर्ग छिन्न-भिन्न करके फैक दे, यह भी नही होना चाहिए। इसलिए मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाजमे रूढिका त्याग करवानेके लिए लोक-मत तैयार करानेकी आवश्यकता है। इस बीचमे व्यक्तियोको धैर्य रखना चाहिए। धैर्य न रख सके तो बहिष्कारादिको सहन करना चाहिए।

दूसरी ओर समाजका यह कर्त्तव्य है कि जो लोग समाज-बन्धन तोडे, उनके साथ निर्दयताका वर्ताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिसक होने चाहिए।

उक्त आत्म-हत्याओका दोष, जिस समाजमे वे हुई, उसपर अवश्य है, ऐसा ऊपरके पत्रसे सिद्ध होता है।

हरिजन सेवक,

१ मई १९३७

: ३२ :

अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ साल पहले बिहार-सरकारने अपने शिक्षा-विभागमे पाठशाला-ओमे होने वाले अप्राकृतिक व्यभिचारके सम्बन्धमे जाच करवाई थी। जाच-समितिने इस बुराईको शिक्षको तकमे पाया था, जो अपनी अस्वाभाविक वासनाकी तृप्तिके कारण विद्यार्थियोके प्रति अपने पदका दुरुपयोग करते है। शिक्षा-विभागके डाइरेक्टरने एक सरकुलर द्वारा शिक्षकोमे पाई जानेवाली ऐसी बुराईका प्रतिकार करनेका हुक्म निकाला था। सरकुलरका जो परिणाम हुआ होगा——अगर कोई हुआ हो——वह अवश्य ही जानने लायक होगा।

मेरे पास इस सम्बन्धमे भिन्न-भिन्न प्रान्तोसे साहित्य भी आया है, जिसमे इस और ऐसी बुराइयोकी तरफ मेरा ध्यान खीचा गया है और कहा गया है कि यह प्राय भारत-भरके तमाम सार्वजनिक और प्राइवेट मदरसोमे फैल गया है और बराबर बढ रहा है।

यह बुराई यद्यपि अस्वभाविक है तथापि इसकी विरासत हम अनन्त कालसे भोगते आ रहे है। तमाम छुपी बुराइयोका इलाज ढूढ निकालना एक कठिनतम काम है। यह और भी कठिन बन जाता है, जब इसका असर बालकोके सरक्षकपर भी पडता है——और शिक्षक बालकोके सरक्षक है ही। प्रश्न होता है कि 'अगर प्राण-दाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे बचे ?' मेरी रायमे जो बुराइया प्रगट हो चुकती है, उनके सम्बन्धमे विभागकी ओरसे बाज़ाब्ता कार्रवाई करना ही इस बुराईके प्रतिकारके लिए काफी न होगा। सर्वसाधारणके मतको इस सम्बन्धमे सुगठित और सुसस्कृत बनाना इसका एक-मात्र उपाय है, लेकिन इस देशके कई मामलोमे प्रभावशाली लोकमत जैसी कोई बात है ही नही।

राजनैतिक जीवनमे असहायता या बेबसीकी जिस भावनाका एकच्छत्र राज्य है उसने देशके जीवनके सब क्षेत्रोपर अपना असर डाल रखा है। अतएव जो बुराइया हमारी आखोके सामने होती रहती है, उन्हे भी हम टाल जाते है।

जो शिक्षा-प्रणाली साहित्यिक योग्यतापर ही एकान्त जोर देती है, वह इस बुराईको रोकनेके लिए अनुपयोगी ही नही है; बल्कि उससे उलटे बुराईको उत्तेजना ही मिलती है। जो बालक सार्वजनिक शालाओमे दाखिल होनेसे पहले निर्दोष थे, शालाके पाठ्य-क्रमके समाप्त होते-होते वे ही दूषित, स्त्रैण और नामर्द बनते देखे गये है। बिहार-समितिने 'बालको-के मनपर धार्मिक प्रतिष्ठाके सस्कार जमाने' की सिफारिश की है, लेकिन बिल्लीके गलेमे घटी कौन बाधे ? अकेले शिक्षक ही धर्मके प्रति आदर-भावना पैदा कर सकते है; लेकिन वे स्वय इससे शून्य है। अतएव प्रश्न शिक्षकोके योग्य चुनावका प्रतीत होता है; मगर शिक्षकोके योग्य चुनावका अर्थ होता है, या तो अबसे कही अधिक वेतन या फिर शिक्षणके ध्येयका काया-पलट—याने शिक्षाको पवित्र कर्त्तव्य मानकर शिक्षकोका उसके प्रति जीवन अर्पण कर देना। रोमन कैथालिकोमे यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला उपाय तो हमारे-जैसे गरीब देश के लिए स्पष्ट ही असम्भव है। मेरे विचारमे हमारे लिए दूसरा मार्ग ही सुगम है; लेकिन वह भी उसकी शासन-प्रणालीके आधीन रहकर सम्भव नही, जिसमे हर एक चीज़की कीमत आकी जाती है, और जो दुनिया-भरमे ज्यादा-से-ज्यादा होती है।

अपने बालकोकी नैतिक सुधारणाके प्रति माता-पिताओकी लापर्वाहीके कारण इस बुराईको रोकना और कठिन हो जाता है। वे तो बच्चोको स्कूल भेजकर अपने कर्तव्यकी इति-श्री मान लेते है। इस तरह हमारे सामनेका काम बहुत ही विषाद-पूर्ण है; लेकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम बुराइयोका एक रामबाण उपाय है और वह है—आत्म-शुद्धि। बुराईकी प्रचण्डतासे घबरा जानेके बदले हममेसे हर एकको पूरे-पूरे प्रयत्न-पूर्वक अपने आस-पासके वातावरणका सूक्ष्म निरीक्षण करते

रहना चाहिए और अपने-आपको ऐसे निरीक्षणका प्रथम और मुख्य केन्द्र मानना चाहिए। हमे यह कहकर सन्तोष नही कर लेना चाहिए कि हममे दूसरोकी-सी बुराई नही है। अस्वाभाविक दुराचार कोई स्वतन्त्र अस्तित्वकी चीज नही है। वह तो एक ही रोगका भयकर लक्षण है। अगर हममे अपवित्रता भरी है, अगर हम विषयकी दृष्टिसे पतित है, तो हमे आत्मसुधार करना चाहिए और फिर पडोसियोके सुधारकी आशा रखनी चाहिए। आजकल तो हम दूसरोके दोषोके निरीक्षणमे बहुत पटु हो गए है और अपने-आपको अत्यन्त निर्दोष समझते है। परिणाम दुराचारका प्रसार होता है। जो इस बातके सत्यको महसूस करते है वे इससे छूटे और उन्हे पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और उन्नति कभी आसान नही होते तथापि वे बहुत कुछ सम्भवनीय है।

हरिजन सेवक,
२७ मई १९३७

: ३३ :

सम्भोगकी मर्यादा

बंगलौरसे एक सज्जन लिखते हैं

"आप कहते हैं कि विवाहित दम्पतिको एकमात्र तभी सम्भोग करना चाहिए जब दोनो बच्चा पैदा करना चाहे, पर मेहरबानी करके यह तो बतलाइये कि बच्चा पैदा करनेकी इच्छा किसीको क्यो हो ? बहुत-से लोग मा-बाप बननेकी जिम्मेदारीको पूरी तरह महसूस किये बगैर ही सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा करते हैं और दूसरे, बहुत-से अच्छी तरह यह जानते हुए भी कि वे मा-बाप होनेकी जिम्मेदारियोको निबाहनेमे असमर्थ हैं, बच्चोकी हविस रखते हैं। बहुत-से ऐसे लोग भी बच्चे पैदा करना चाहते हैं जो शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे सन्तानोत्पत्तिके अयोग्य है। क्या आप यह नही सोचते कि इन लोगोके लिए प्रजनन करना गलती है ?

बच्चा पैदा करनेकी इच्छाका उद्देश्य क्या है, यह मैं जानना चाहता हू। बहुत-से लोग इसलिए बच्चोकी इच्छा करते हैं कि वे उनकी सम्पत्तिके वारिस बने और उनके जीवनकी नीरसताको मिटाकर सरस बनाये। कुछ लोग इसलिए भी पुत्रकी इच्छा करते हैं कि ऐसा न हुआ तो मरनेपर वे स्वर्गमे न जा सकेगे। क्या इन सबका बच्चेकी इच्छा करना गलती नही है ?"

किसी बातके कारणोकी खोज करना तो ठीक है; लेकिन हमेशा ही उन्हे पा लेना सम्भव नही है। सन्तानकी इच्छा विश्व-व्यापी है; लेकिन अपने वशजोके द्वारा अपनेको कायम रखनेकी इच्छा अगर काफी और सन्तोषजनक कारण नही है तो इसका कोई दूसरा सन्तोषजनक कारण मै नही जानता। मगर सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाका जो कारण मैंने बतलाया है वह अगर काफी सन्तोषजनक न मालूम हो तो भी जिस बातका मैं प्रतिपादन

कर रहा हू, उसमे कोई दोष नही आता, क्योकि यह इच्छा तो है ही। मुझे तो यह स्वाभाविक ही मालूम पडती है। मै पैदा हुआ, इसका मुझे कोई अफसोस नही है। मेरे लिए यह कोई गैर-कानूनी वात नही है कि मुझमे जो भी सर्वोत्तम गुण हो उन्हे मै दूसरेमे मूर्त्तरूपमे उतरे हुए देखू। कुछ भी हो, जवतक खुद प्रजननमे ही मुझे कोई बुराई न मालूम दे और जवतक मै यह न देख लू कि खाली आनन्दके लिए सम्भोग करना भी ठीक ही है, तवतक मुझे इस वातपर कायम रहना चाहिए कि सम्भोग तभी ठीक है जव कि वह सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे किया जाय। मै समझता हू कि स्मृतिकार इस बारेमे इतने स्पष्ट थे कि मनुने पहले पैदा हुए बच्चोको ही धर्म्य (धर्मसे पैदा हुए) बतलाया है और बादमे पैदा हुए बच्चोको काम्य (काम-वासनासे पैदा हुए) बतलाया है। इस विषयमे यथासम्भव अनासक्त भावसे मै जितना अधिक सोचता हू उतना ही अधिक मुझे इस वातका पक्का विश्वास होता जाता है कि इस बारेमे मेरी जो स्थिति है और जिसपर मै कायम हू वही सही है। मुझे यह स्पष्टतर होता जा रहा है कि इस विषयके साथ जुडी हुई अनावश्यक गोपनीयताके कारण इस विषयमे हमारा अज्ञान ही सारी कठिनाईकी जड है। हमारे विचार स्पष्ट नही है। परिणामोका सामना करनेसे हम डरते है। अधूरे उपायोको हम सम्पूर्ण या अन्तिम मानकर अपनाते है और इस प्रकार उन्हे आचरणके लिए बहुत कठिन बना लेते है। मगर हमारे विचार स्पष्ट हो, हम क्या चाहते है इस बातका हमे निश्चय हो तो हमारी वाणी और हमारे आचरण दृढ होगे।

इस प्रकार, अगर मुझे इस वातका निश्चय हो कि भोजनका हरेक ग्रास शरीरको बनाने और कायम रखनेके ही लिए है तो स्वादकी खातिर मै कभी खाना न चाहूगा। यही नही, बल्कि मै यह भी महसूस करूगा कि अगर भूख या शरीरको कायम रखनेकी दृष्टिके अलावा कोई चीज सुस्वाद होनेके ही कारण खाना चाहू तो वह रोगकी निशानी होगी, इसलिए मुझे उसको वाजिव और स्वास्थ्यप्रद इच्छा समझकर उसकी पूर्ति करनेके बजाय अपनी इस बीमारीको दूर करनेकी ही फिक्र करनी पडेगी। इसी तरह अगर मुझे इस वातका निश्चय हो कि प्रजननकी निर्विवाद इच्छाके बगैर

सम्भोग करना गैर-कानूनी और शरीर, मन तथा आत्माके लिए विनाशक है, तो इस इच्छाका दमन करना निश्चय ही आसान हो जायगा—उससे कहीं आसान, जबकि मेरे मनमें यह निश्चय न हो कि खाली इच्छाकी पूर्ति करना कानून-सम्मत और हितकर है या नहीं। अगर मुझे ऐसी इच्छाके गैर-कानूनीपन या अनौचित्यका स्पष्ट रूपसे भान हो तो मैं उसे एक तरहकी बीमारी समझूंगा और अपनी पूरी शक्तिके साथ उसके आक्रमणोंका मुकाबला करूंगा। ऐसे मुकाबलेके लिए तब मैं अपनेको अधिक शक्तिशाली महसूस करूंगा। जो लोग यह दावा करते हैं कि हमें यह बात पसन्द तो नहीं है, लेकिन हम असहाय हैं, वे गलती पर ही नहीं हैं, बल्कि झूठे भी हैं और इसलिए प्रतिरोधमें वे कमजोर रहते और हार जाते हैं। अगर ऐसे सब लोग आत्म-निरीक्षण करें तो उन्हें मालूम होगा कि उनके विचार उन्हें धोखा देते हैं। उनके विचारोंमें वासनाकी इच्छा होती है, और उनकी वाणी उनके विचारोंको गलत रूपमें व्यक्त करती है। दूसरी ओर यदि उनकी वाणी उनके विचारोंकी सच्ची द्योतक हो तो कमजोरी-जैसी कोई बात नहीं हो सकती। हार तो हो सकती है, पर कमजोरी हरगिज नहीं।

इन सज्जनने अस्वस्थ माता-पिताओं द्वारा किये जानेवाले प्रजननपर जो आपत्ति की है वह बिलकुल ठीक है। उन्हें प्रजननकी कोई इच्छा नहीं होनी चाहिए। अगर वे यह कहें कि सम्भोग हम प्रजननके लिए ही करते हैं तो वे अपनेको और संसारको धोखा देते हैं। किसी भी विषयपर विचार करनेमें सचाईका हमेशा सहारा लेना पड़ता है। सम्भोगके आनन्दको छिपानेके लिए प्रजननकी इच्छाका बहाना हरगिज न लेना चाहिए।

हरिजन सेवक,

२४ जुलाई १९३७

: ३४ :

अहिंसा और ब्रह्मचर्य

एक काग्रेस-नेताने वातचीतके सिलसिलेमे उस दिन मुझसे कहा—"यह क्या बात है कि कॉग्रेस अब नैतिकताकी दृष्टिसे वैसी नही रही जैसी कि वह १९२० से १९२५ तक थी ? तवसे तो इसकी बहुत नैतिक अवनति हो गई है । अव तो इसके नव्वे फीसदी सदस्य काग्रेसके अनुशासनका पालन नही करते । क्या आप इस हालतको सुधारनेके लिए कुछ नही कर सकते ?"

यह प्रश्न उपयुक्त और सामयिक है । मै यह कहकर अपनी ज़िम्मेदारीसे हट नही सकता कि अब मै काग्रेसमे नही हू । मै तो और अच्छी तरह इसकी सेवा करनेके लिए ही इससे बाहर हुआ हू । काग्रेसकी नीतिपर अब भी मै अपना प्रभाव डाल रहा हू, यह मै जानता हू । और १९२० मे काग्रेसका जो विधान बना था, उसे बनानेवालेकी हैसियतसे उस गिरावटके लिए मुझे अपनेको ज़िम्मेदार मानना ही चाहिए, जिससे कि बचा जा सकता है ।

काग्रेसने आरम्भिक कठिनाइयोके बीच सन् १९२० मे काम शुरू किया था । सत्य और अहिसापर बतौर ध्येयके बहुत कम लोग विश्वास करते थे । अधिकाश सदस्योने इन्हे नीतिके तौरपर ही स्वीकार किया । वह अनिवार्य था । मैने आशा की थी कि नई नीतिसे काग्रेसको काम करते हुए देखकर उनमेसे अनेक इन्हे अपने ध्येयके रूपमे स्वीकार कर लेगे; लेकिन ऐसा कुछ ही लोगोने किया, वहुतोने नही । शुरूआतमे तो सबसे वडे नेताओमे भारी परिवर्त्तन देखनेमे आया । स्वर्गीय पडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धुदासके जो पत्र 'यग इडिया' मे उद्धृत किये गए थे, उन्हे पाठक भूले नही होगे । सयम, सादगी और अपने आपको कुर्बान

कर देनेके जीवनमें उन्हें एक नये आनन्द और एक नई आशाका अनुभव हुआ था। अलीबन्धु तो करीब-करीब फकीर ही बन गये थे। जगह-जगह दौरा करते हुए, इन भाइयोंमें होनेवाली तब्दीलीको मैं आनन्दके साथ देखता था। और जो बात इन चार नेताओंके विषयमें सच है, वही और भी ऐसे बहुतोंके बारेमें कही जा सकती है, जिनके कि मैं नाम गिना सकता हूं। इन नेताओंके उत्साहका लोगोंपर भी असर पड़ा।

लेकिन यह प्रत्यक्ष परिवर्त्तन 'एक सालमें स्वराज्य' के आकर्षणकी वजहसे था। इसकी पूर्तिके लिए मैंने जो शर्तें लगाई थीं, उनपर किसीने ध्यान नहीं दिया। ख्वाजा अब्दुलमजीद साहबने तो यहांतक कह डाला कि सत्याग्रह-सेनाके, जैसी कि कांग्रेस उस समय बन गई थी और अभी भी है, (यदि कांग्रेसवादी सत्याग्रहके अर्थको महसूस करें) सेनापतिकी हैसियतसे मुझे इस बातका निश्चय कर लेना चाहिए था कि मैं जो शर्तें लगा रहा हूं, वे ऐसी हैं जो पूरी हो जायगी। शायद उनका कहना ठीक ही था। सिर्फ यह ज्ञान-चक्षु मेरे पास नहीं था। सामूहिक रूपमें और राजनीतिक उद्देश्यसे अहिंसाका उपयोग खुद मेरे लिए भी एक प्रयोग ही था। इसलिए मैं गर्व-पूर्वक

लेकिन अहिंसाकी योजनामे जवर्दस्तीका कोई काम नही है। उसमे तो इसी वातपर निर्भर रहना पडता है कि लोगोकी वुद्धि और हृदयतक—उसमे भी बुद्धिकी अपेक्षा हृदयपर ही ज्यादा—पहुचनेकी क्षमता प्राप्त की जाय।

इसका अभिप्राय हुआ कि सत्याग्रह-सेनापतिके शब्दमे ताकत होनी चाहिए—वह ताकत नही जो असीमित अस्त्र-शस्त्रोसे प्राप्त होती है, बल्कि वह जो जीवनकी शुद्धता, दृढ जागरूकता और सतत आचरणसे प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्यका पालन किये वगैर असम्भव है। इसका इतना सम्पूर्ण होना आवश्यक है, जितना कि मनुष्यके लिए सम्भव है। ब्रह्मचर्यका अर्थ यहा खाली दैहिक आतमसयम या निग्रह ही नही है। इसका तो इससे कही अधिक अर्थ है। इसका मतलब है सभी इन्द्रियो पर पूर्ण नियमन। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्यका भग है और यही हाल क्रोधका है। सारी शक्ति उस वीर्य-शक्तिकी रक्षा और ऊर्ध्वगतिसे प्राप्त होती है, जिससे कि जीवनका निर्माण होता है। अगर इस वीर्य-शक्तिको नष्ट होने देनेके वजाय, सचय किया जाय, तो यह सर्वोत्तम सृजन-शक्तिके रूपमे परिणत हो जाती है। बुरे या अस्त-व्यस्त, अव्य-वस्थित, अवाछनीय विचारोसे भी इस शक्तिका वरावर और अज्ञात रूपसे क्षय होता रहता है और चूकि विचार ही सारी वाणी और क्रियाओका मूल होता है इसलिए वे भी इसीका अनुसरण करती है। इसीलिए पूर्णत नियन्त्रित विचार खुद ही सर्वोच्च प्रकारकी शक्ति है। और स्वत क्रिया-शील वन सकता है। मूकरूपमे की जानेवाली हार्दिक प्रार्थनाका मुझे तो यही अर्थ मालूम पडता है। अगर मनुष्य ईश्वरकी मूर्तिका उपासक है, तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्रके अन्दर किसी वातकी इच्छा भर करनेकी देर है। जैसा वह चाहता है वैसा ही वह वन जाता है। जिस तरह चूने वाले नलमे भाप रखनेसे कोई शक्ति पैदा नही होती, उसी प्रकार जो अपनी शक्तिका किसी भी रूपमे क्षय होने देता है, उसमे इस शक्तिका होना अस-भव है। प्रजोत्पत्तिके निश्चित उद्देश्यसे न किया जाने वाला काम-सम्वन्ध इस शक्ति-क्षयका एक वहुत वडा नमूना है, इसलिए उसकी खास

तौरसे निन्दा की गई है, वह ठीक ही है, लेकिन जिसे अहिंसात्मक कार्यके लिए मनुष्य-जातिके विशाल समूहोको सगठित करना है, उसे तो, इन्द्रियो-के जिस पूर्ण निग्रहका मैने ऊपर वर्णन किया है, उसको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना ही चाहिए।

ईश्वरकी असीम कृपाके बगैर यह सम्पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह सम्भव नही है। गीताके दूसरे अध्यायमे एक श्लोक है—

"विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः,
रसवर्ज रसोप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते।"

अर्थात्—जबतक उपवास किये जाते है, तबतक इन्द्रिया विषयोकी ओर नही दौडती, पर अकेले उपवाससे रस सूख नही जाते। उपवास छोडते ही वे और बढ भी सकते है। इसको वशमे करनेके लिए तो ईश्वर-का प्रसाद आवश्यक है। यह नियमन यान्त्रिक या अस्थायी नही है। एक बार प्राप्त हो जानेके बाद यह कभी नष्ट नही होता। उस हालतमे वीर्य-शक्ति इस तरह सुरक्षित रहती है कि अगणित रास्तोमेसे किसीमे होकर उसके निकलनेकी सम्भावना ही नही रहती।

कहा गया है कि ऐसा ब्रह्मचर्य यदि किसी तरह प्राप्त किया जा सकता हो तो कन्दराओमे रहनेवाले ही कर सकते होगे। ब्रह्मचारीको तो, कहते है, स्त्रियोका स्पर्श तो क्या, उसका दर्शन भी कभी नही करना चाहिए। निस्सन्देह किसी ब्रह्मचारीको काम-वासनासे किसी स्त्रीको न तो छूना चाहिए, न देखना चाहिए और न उसके विषयमे कुछ कहना या सोचना चाहिए, लेकिन ब्रह्मचर्य-विषयक पुस्तकोमे हमे यह जो वर्णन मिलता है उसमे इसके महत्वपूर्ण अव्यय 'कामवासना-पूर्वक' का उल्लेख नही मिलता। इस छूटकी वजह यह मालूम पडती है कि ऐसे मामलोमे मनुष्य निष्पक्षरूपसे निर्णय नही कर सकता और इसलिए यह नही कहा जा सकता कि कब तो उसपर ऐसे सम्पर्कका असर पडा और कब नही। काम-विकार अक्सर अनजाने ही उत्पन्न हो जाते है। इसलिए दुनियामे आजादीसे सबके साथ हिलने-मिलनेपर ब्रह्मचर्यका पालन यद्यपि कठिन है, लेकिन

अगर ससारसे नाता तोड लेनेपर ही यह प्राप्त हो सकता हो तो उसका कोई विशेष मूल्य ही नही है ।

जैसे भी हो मैने तो तीस वर्षसे भी अधिक समयसे प्रवृत्तियोके बीच रहते हुए ब्रह्मचर्यका खासी सफलताके साथ पालन किया है । ब्रह्मचर्यका जीवन बितानेका निश्चय कर लेनेके बाद, अपनी पत्नीके साथ व्यवहारको छोडकर मेरे बाह्य आचरणमे कोई अन्तर नही पडा । दक्षिण अफ्रिकामे भारतीयोके बीच मुझे जो काम करना पडा, उसमे मै स्त्रियोके साथ आज़ादी-के साथ हिलता-मिलता था । ट्रासवाल और नेटालमे शायद ही कोई ऐसी भारतीय स्त्री हो जिसे मै न जानता होऊ । मेरे लिए तो इतनी सारी स्त्रिया बहने और बेटिया ही थी । मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकीय नही है । मैने तो अपने तथा उन लोगोके लिए जो कि मेरे कहनेपर इस प्रयोगमे शामिल हुए है, अपने ही नियम बनाये है और अगर मैने इसके लिए निर्दिष्ट निषेधोका अनुसरण नही किया है, तो धार्मिक साहित्यमे स्त्रियोको जो सारी बुराई और प्रलोभनका द्वार बताया गया है, उसे मै इतना भी नही मानता । मै तो ऐसा मानता हू कि मुझमे जो भी अच्छाई हो वह सब मेरी माकी बदौलत है । इसलिए स्त्रियोको मैने कभी इस तरह नही देखा कि काम-वासनाकी तृप्तिके लिए ही वे बनाई गई है, बल्कि हमेशा उसी श्रद्धाके साथ देखा है जो कि मै अपनी माताके प्रति रखता हू । पुरुष ही प्रलोभन देनेवाला और आक्रमण करने वाला है । स्त्रीके स्पर्शसे वह अपवित्र नही होता; बल्कि अक्सर वह खुद ही उसका स्पर्श करने लायक पवित्र नही होता । लेकिन हालमे मेरे मनमे सन्देह जरूर उठा है कि स्त्री या पुरुष-के सम्पर्कमे आनेके लिए ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणीको किस तरहकी मर्या-दाओका पालन करना चाहिए । मैने जो मर्यादाए रखी है वे मुझे पर्याप्त नही मालूम पडती, लेकिन वे क्या होनी चाहिए, यह मै नही जानता । मै तो प्रयोग कर रहा हू । इस बातका मैने कभी दावा नही किया कि मै अपनी परिभाषाके अनुसार पूरा ब्रह्मचारी बन गया हू । अब भी मै अपने विचारोपर उतना नियत्रण नही रख सकता हू जितने नियत्रणकी अपनी अहिसाकी शोधोके लिए मुझे आवश्यकता है, लेकिन अगर मेरी अहिसा

ऐसी हो जिसका दूसरोपर असर पडे और वह उनमे फैले, तो मुझे अपने विचारोपर और अधिक नियत्रण करना ही चाहिए। इस लेखके आरम्भिक वाक्यमे नेतृत्वकी जिस प्रत्यक्ष असफलताका उल्लेख किया गया है, उसका कारण शायद कही-न-कही किसी कमीका रह जाना ही है।

अहिसामे मेरा विश्वास हमेशाकी तरह दृढ है। मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि इससे न केवल हमारे देशकी सारी आवश्यकताओकी पूर्ति होनी चाहिए, बल्कि अगर ठीक तरहसे इसका पालन किया जाय तो यह उस खून-खराबीको भी रोक सकती है, जो हिन्दुस्तानके बाहर हो रही है और सारे पश्चिमी ससारमे जिसके व्याप्त हो जानेका अन्देशा है।

मेरी आकाक्षा तो मर्यादित है। परमेश्वरने मुझे इतनी शक्ति नही दी है, जो अहिसाके पथपर सारी दुनियाकी रहनुमाई करू; लेकिन मैने यह कल्पना ज़रूर की है कि हिन्दुस्तानकी अनेक खराबियोके निवारणार्थ अहिसाका प्रयोग करनेके लिए उसने मुझे अपना औजार बनाया है। इस दिशामे अभीतक जो प्रगति हो चुकी है, वह महान् है; लेकिन अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। इतनेपर भी मुझे ऐसा लगता है कि इसके लिए आम तौरपर काग्रेसवादियोकी जो सहानुभूति आवश्यक है उसे उकसानेकी शक्ति मुझमे नही रही है। जो अपने औजारोको ही बुरा बतलाता रहता है वह कोई अच्छा बढई नही है। यह तो 'नाच न आवे, आगन टेढा' की मसल होगी। इसी तरह बिगडे हुए कामोके लिए अपने आदमियोको दोष देनेवाला सेनापति भी अच्छा नही कहा ज़ा सकता; पर मै यह जानता हू कि मै बुरा सेनापति नही हू। अपनी मर्यादाओको जाननेकी जितनी बुद्धि मुझमे मौजूद है अगर कभी उसका मेरे अन्दरसे दिवाला निकल जाय तो ईश्वर मुझे इतनी शक्ति देगा कि मै उसकी स्पष्ट घोषणा कर दूगा।

उसकी कृपासे मै कोई आधी सदीसे जो काम कर रहा हूं अगर उसके लिए मेरी और जरूरत न रही, तो शायद वह मुझे उठा लेगा, लेकिन मेरा खयाल है कि मेरे करनेको अभी काफी काम है। जो अन्धकार मेरे ऊपर

छा गया मालूम पडता है वह नष्ट हो जायगा, और स्पष्टतया अहिसात्मक साधनोसे भारत अपने लक्ष्यतक पहुच जायगा—फिर इसके लिए चाहे डाडी-कूचसे भी ज्यादा उग्र लडाई लडनी पडे या उसके वगैर ही ऐसा हो जाय। मै ईश्वरसे उस प्रकाशकी याचना कर रहा हू जो अन्धकारका नाश कर देगा। अहिसामे जिनकी जीवित श्रद्धा हो उन्हे इसमे मेरा साथ देना चाहिए।

हरिजन सेवक,
२३ जुलाई १९३८

: ३५ :

विद्यार्थियोंके लिए लज्जाजनक

पजावके एक कालेजकी लडकीका एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र करीबन दो महीनेसे मेरी फायलमे पडा हुआ है। इस लडकीके प्रश्नका जवाब जो अभीतक नही दिया इसमे समयके अभावका तो केवल एक बहाना था। किसी-न-किसी तरह इस कामसे अपनेको मै बचा रहा था, हालाकि मै यह जानता था कि इस प्रश्नका क्या जवाब देना चाहिए। इस बीचमे मुझे एक और पत्र मिला। यह पत्र एक ऐसी बहनका लिखा हुआ है, जो बहुत अनुभव रखती है। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेजकी इस लडकीकी जो यह बहुत वास्तविक कठिनाई है, उसका मुकाबला करना मेरा कर्त्तव्य है, और इसकी अब मै और अधिक दिनोतक उपेक्षा नही कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानीमे लिखा है, जिसका एक भाग मै नीचे उद्धृत कर रहा हू .

"लडकियो और वयस्क स्त्रियोके सामने, उनकी इच्छाके विरुद्ध ऐसे अवसर आ जाया करते है, जब कि उन्हे अकेली जानेकी हिम्मत करनी पडती है—या तो उन्हे एक ही शहरमे एक जगहसे दूसरी जगह जाना होता है या एक शहरसे दूसरे शहरको। और जब वे इस तरह अकेली होती है, तब गन्दी मनोवृत्ति वाले लोग उन्हे तग किया करते है। वे उस वक्त अनुचित और अश्लील भाषातकका प्रयोग करते है। और अगर भय उन्हे रोकता नही है, तो इससे भी आगे वढनेमे उन्हे कोई हिचकिचाहट नही होती। मै यह जानना चाहती हू कि ऐसे मौकोपर अहिसा क्या काम दे सकती है ? हिसाका उपयोग तो है ही। अगर किसी लडकी या स्त्रीमे काफी हिम्मत हो तो उसके पास जो भी साधन होगे वह उन्हे काममे लायगी और एक वार वदमाशोको सवक सिखा देगी। वे कम-

से-कम हगामा तो मचा सकती है जिससे कि लोगोका ध्यान आर्कषित हो जाय और गुण्डे वहासे भाग जाय। लेकिन मै यह जानती हू कि इसके परिणाम-स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नही है। अशिष्ट व्यवहार करने वाले लोगोका अगर आपको पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हे अगर समझाया जाय, तो वे आपकी प्रेम और नम्रताकी वाते सुनेगे। पर उस आदमीके लिए आप क्या कहेगे, जो साइकिलपर चढा हुआ किसी लडकी या स्त्रीको देखकर, जिसके साथ कि कोई मर्द साथी नही है, गदी भाषाका प्रयोग करता है ? उसे दलील देकर समझानेका आपको मौका नही है। आपके उससे फिर मिलनेकी कोई सम्भावना नही। हो सकता है, आप उसे पहचाने भी नही। आप उसका पता भी नही जानते। ऐसी परिस्थितिमे वह बेचारी लडकी या स्त्री क्या करे ? मै अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हू। २६ अक्तूबरकी रात-की वात है। मै अपनी एक सहेली के साथ ७–३० वजे के करीब एक खास कामसे जा रही थी। उस वक्त किसी मर्द साथीको साथ ले जाना नामुम-किन था, और काम इतना ज़रूरी था कि टाला नही जा सकता था। रास्तेमे एक सिख युवक साइकिलपर जा रहा था। वह कुछ गुनगुनाता जाता था। जबतक कि हम सुन सके उसने गुनगुनाना जारी रखा। हमे यह मालूम था कि वह हमे लक्ष करके ही गुनगुना रहा है। हमे उसकी यह हरकत बहुत नागवार मालूम हुई। सडकपर कोई चहल-पहल नही थी। हमारे चद कदम जानेसे पहले वह लौट पडा। हम उसे फौरन पहचान गये, हालाकि वह अव भी हमसे खासे फासलेपर था। उसने हमारी तरफ साइकिल घुमाई। ईश्वर जाने, उसका इरादा उतरनेका था, या यू ही हमारे पाससे सिर्फ गुज़रनेका। हमे ऐसा लगा कि हम खतरेमे है। हमे अपनी शारीरिक वहादुरीमे विश्वास नही था। मै एक औसत लडकीके मुकावले शरीरसे कमजोर हू, लेकिन मेरे हाथमे एक वडी-सी किताव थी। यकायक किसी तरह मेरे अन्दर हिम्मत आगई। साइकिलकी तरफ मैने उस किताबको जोरसे मारा और चिल्लाकर कहा, "चुहलवाज़ी करनेकी तू फिर हिम्मत करेगा ?" वह मुश्किलसे अपनेको सभाल सका,

और साइकिलकी रफ्तार बढाकर वहासे रफू-चक्कर हो गया। अब अगर मैंने उसकी साइकिलकी तरफ किताब जोरसे न मारी होती तो वह अन्त-तक इसी तरह अपनी गन्दी भाषासे हमे तग करता जाता। यह तो मामूली; बल्कि नगण्य-सी घटना है; पर मै चाहती हू कि आप लाहौर आते और हम हत-भागिनी लडकियोकी मुसीबतोकी दास्तान खुद अपने कानो सुनते। आप निश्चय ही इस समस्याका ठीक-ठीक हल ढूढ सकते है। सबसे पहले आप मुझे यह बताये कि ऊपर जिन परिस्थितियोका मैने वर्णन किया है उनमे लडकिया अहिंसाके सिद्धान्तका प्रयोग किस तरह कर सकती है, और कैसे अपने आपको बचा सकती है? दूसरे स्त्रियोको अपमानित करनेकी जिन युवकोको यह बहुत बुरी आदत पड़ गई है, उसको सुधारनेका क्या उपाय है? आप यह उपाय न सुझाइयेगा कि हमे उस नई पीढीके आनेतक इन्तजार करना चाहिए और तब-तक हम इस अपमानको चुपचाप बर्दाश्त करती रहे, जिस पीढीने कि बचपनसे ही स्त्रियोके साथ भद्रोचित व्यवहार करनेकी शिक्षा पाई होगी। सरकारकी या तो इस सामाजिक बुराईका मुकाबला करनेकी इच्छा नही या ऐसा करनेमे वह असमर्थ है। और हमारे बडे-बडे नेताओके पास ऐसे प्रश्नोके लिए वक्त नही। कुछ जब यह सुनते है कि किसी लडकीने अशिष्टतासे पेश आनेवाले नवयुवकोकी अच्छी तरहसे मरम्मत कर दी है, तो कहते है, "शाबाश, ऐसा ही सब लडकियोको करना चाहिए।" कभी-कभी किसी नेताको हम विद्यार्थियोके ऐसे दुर्व्यवहारके खिलाफ छटादार भाषण करते हुए पाते है, मगर ऐसा कोई नजर नही आता, जो इस गम्भीर समस्याका हल निकालनेमे निरन्तर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और ऐसे ही दूसरे त्योहारो पर अखबारोमे इस किस्मकी चेतावनीकी नोटिसे निकला करती है कि रोशनी देखनेतक-के लिए औरतोको घरोसे बाहर नही निकलना चाहिए। इसी तरह एक बातसे आप जान सकते है कि दुनियाके इस हिस्सेमे हम किस कदर मुसीबतोमे

एक दूसरी पजाबी लडकीको मैंने यह पत्र पढनेके लिए दिया था। उसने भी अपने कालेज-जीवनके निजी अनुभवके आधारपर इस घटनाका समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि मेरे सवाददाताने जो-कुछ लिखा है, वहुत-सी लडकियोका अनुभव वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिलाने लखनऊकी अपनी विद्यार्थिनी मित्रोके अनुभव लिखे है। सिनेमा-थियेटरोमे उनकी पिछली लाइनमे वैठे हुए लडके उन्हे दिक करते है, उनके लिए ऐसी भाषाका प्रयोग करते है, जिसे मै अश्लीलके सिवा और कोई नाम नही दे सकता। उन लडकियोके साथ किये जानेवाले भद्दे मजाक भी पत्र-लेखिकाने मुझे लिखे है, लेकिन मै उन्हे यहा उद्धृत नही कर सकता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षाका सवाल हो तो इसमे सन्देह नही कि उस लडकीने, जो अपनेको शारीरिक दृष्टिसे कमजोर वताती है, जो इलाज—साइकिलके सवारपर जोरसे किताव मारकर—किया, वह विलकुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है। मै 'हरिजन' मे पहले भी लिख चुका हू कि यदि कोई व्यक्ति जवर्दस्ती करने पर उतारू होना चाहता है तो उसके रास्तेमे शारीरिक कमज़ोरी भी रुकावट नही डालती, भले ही उसके मुकाबलेमे शारीरिक दृष्टिसे कोई बहुत वलवान विरोधी हो। और हम यह भली-भाति जानते है कि आजकल तो जिस्मानी ताकत इस्तैमाल करनेके इतने ज्यादा तरीके ईजाद हो चुके है कि एक छोटी, लेकिन काफी समझदार लडकी किसीकी हत्या और विनाशतक कर सकती है। जिस परिस्थितिका जिक्र पत्र-लेखिकाने किया है, वैसी परिस्थितियोमे लडकियोको आत्म-रक्षाके तरीके सिखानेका रिवाज आजकल वढ रहा है, लेकिन वह लडकी यह भी खूव समझती है कि भले ही वह उस क्षण आत्म-रक्षाके हथियारके तौरपर अपने हाथकी किताव मारकर वच गई हो, लेकिन इस वढती हुई बुराईका यह कोई असली इलाज नही है। भद्दे अश्लील मजाकके कारण वहुत घवराने या डर जानेकी जरूरत नही, लेकिन इनकी ओरसे आख मूद लेना भी ठीक नही। ऐसे सव मामले भी अखवारोमे छप जाने चाहिए। इस वुराईका भडाफोड करनेमे किसीका

झूठा लिहाज नही करना चाहिए। इस सार्वजनिक बुराईके लिए प्रबल लोक-मत जैसा कोई अच्छा इलाज नही है। इसमे कोई शक नही कि इन बातोको जनता उदासीनतासे देखती है; लेकिन सिर्फ जनताको ही क्यो दोष दिया जाय ? उनके सामने ऐसी गुस्ताखीके मामले भी तो आने चाहिए। चोरीके मामलो तकके लिए उन्हे पता लगाकर छापा जाता है, तब कही जाकर चोरी कम होती है। इस तरह जबतक ऐसे मामले भी दबाये जाते रहेगे, इस बुराईका इलाज नही हो सकता। पाप और बुराई भी अपने शिकारके लिए अन्धकार चाहते है। जब उनपर रोशनी पडती है, वे खुद-ब-खुद खतम हो जाते है।

लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकलकी लड़कीको भी तो अनेकोकी दृष्टिमे आकर्षक बनना प्रिय है। वह अति साहसको पसन्द करती है। आजकलकी लडकी वर्षा या धूपसे बचनेके उद्देश्यसे नही, बल्कि लोगोका ध्यान अपनी ओर खीचनेके लिए तरह-तरहके भडकीले कपडे पहनती है। वह अपनेको रगकर कुदरतको भी मात करना और असाधारण सुन्दर दिखाना चाहती है। ऐसी लडकियोके लिए कोई अहिसात्मक मार्ग नही है। मै इन पृष्ठोमे बहुत बार लिख चुका हू कि हमारे हृदयमे अहिसाकी भावनाके विकासके लिए भी कुछ निश्चित नियम होते है। अहिंसाकी भावना बहुत महान् प्रयत्न है। विचार और जीवनके तरीकेमे यह क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र-लेखिका और उस तरहके-से विचार रखने वाली लडकिया ऊपर बताये गये तरीकेसे अपने जीवनको बिलकुल ही बदल डाले तो उन्हे जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्कमे आनेवाले नौजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थितिमे भद्रोचित व्यवहार करना सीखने लगे है; लेकिन यदि उन्हे मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्मपर हमला होनेका खतरा है, तो उनमे उस पशु मनुष्यके आगे आत्म-समर्पण करनेके बजाय मर जानेतकका साहस होना चाहिए। कहा जाता है कि कभी-कभी लड़कीको इस तरह बाधकर या मुहमे कपडा ठूसकर विवश कर दिया जाता है कि वह आसानीसे मर भी नही सकती, जैसे कि मैने सलाह दी है; लेकिन मै फिर भी जोरोके साथ

कहता हू कि जिस लडकीमे मुकाबलेका दृढ सकल्प है, वह उसे असहाय बनानेके लिए बाधे गये सब सम्बन्धोको तोड सकती है। दृढ सकल्प उसे मरनेकी शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और यह दिलेरी उन्हीके लिए सम्भव है, जिन्होने इसका अभ्यास कर लिया है। जिसका अहिसापर दृढ विश्वास नही है, उन्हे रक्षाके साधारण तरीके सीखकर कायर युवकोके अश्लील व्यवहारसे अपना बचाव करना चाहिए।

पर बडा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार भी क्यो छोड दे, जिससे भली लडकियोको हमेशा उनसे सताये जानेका डर लगता रहे ? मुझे यह जानकर दु ख होता है कि ज्यादातर नौजवानोमे बहादुरीका ज़रा भी माद्दा नही रहा, लेकिन उनमे एक वर्गके नाते नामवर होनेकी डाह पैदा होनी चाहिए। उन्हे अपने साथियोमे होनेवाली प्रत्येक ऐसी वारदात-की जाच करनी चाहिए। उन्हे हर एक स्त्रीका अपनी मा और बहनकी तरह आदर करना सीखना चाहिए। यदि वे शिष्टाचार नही सीखते, तो उनकी बाकी सारी लिखाई-पढाई फिजूल है।

और क्या यह प्रोफेसरो और स्कूल-मास्टरोका फर्ज नही है कि लोगोके सामने जैसे अपने विद्यार्थियोकी पढाईके लिए जिम्मेवार होते है उसी तरह उनके शिष्टाचार और सदाचाके लिए भी उनको पूरी तसल्ली दे ?

हरिजन सेवक,
३१ दिसम्बर १९३८

: ३६ :

आजकलकी लड़कियां

ग्यारह लडकियोकी ओरसे लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला है, जिनके नाम और पते भी मुझे भेजे गए है। उनमे ऐसे हेर-फेर करके जिससे उसके मतलवमे तो कोई तवदीली न हो; पर वह पढनेमे अधिक अच्छा हो जाय, मै उसे यहा देता हू—

"एक लडकीकी 'आत्म-रक्षा कैसे करे ?' शीर्षक शिकायतपर जो ३१ दिसम्वर १९३८ के 'हरिजन' मे प्रकाशित हुई, आपने जो टीका-टिप्पणी की वह विशेष ध्यान देने लायक है। आधुनिक यानी आजकलकी लडकीने आपको इस हदतक उत्तेजित कर दिया मालूम पडता है कि अन्तमे आपने उसे अनेकोकी दृष्टिमे आकर्षक वननेकी शौकीन वतला डाला है। इससे स्त्रियो के प्रति आपके जिस विचारका पता लगता है वह वहुत स्फूर्तिदायक नही है।

इन दिनो जव कि पुरुषोकी मदद करने और जीवनके भारमे वरावरीका हिस्सा लेनेके लिए स्त्रिया वन्द दरवाज़ोसे वाहर आ रही हैं, यह नि.सन्देह आश्चर्यकी ही वात है कि पुरुषो द्वारा उनके साथ दुर्व्यवहार किये जानेपर अभी भी उन्हे ही दोष दिया जाता है। इस वातसे इन्कार नही किया जा सकता कि ऐसे उदाहरण दिये जा सकते है जिनमे दोनोका कसूर वरावर हो। कुछ लडकिया ऐसी भी हो सकती है जिन्हे अनेकोकी दृष्टिमे आकर्षक वनना प्रिय हो; लेकिन उस हालतमे यह भी मानना ही पडेगा कि ऐसे पुरुष भी है जो ऐसी लडकियोकी टोहमे गली-सडकोमे फिरते रहते है। और यह तो हर्गिज नही माना जा सकता या मानना चाहिए कि आजकल की सभी लडकिया इस तरह अनेकोकी दृष्टिमे आकर्षक वननेकी शौकीन है या आजकलके नवयुवक सव उनकी टोहमे फिरनेवाले ही है। आप खुद

आजकलकी काफी लडकियोके सम्पर्कमे आये है और उनके निश्चय, वलिदान एव स्त्रियोचित अन्य गुणोका आपपर जरूर असर पडा होगा।

आपको पत्र लिखने वालीने जैसे बदचलन आदमियोका जिक्र किया है उनके खिलाफ लोक-मत तैयार करनेका जहातक सवाल है, यह करना लडकियोका काम नही है। यह काम हम झूठी शर्मके लिहाज़से नही, वल्कि उसके असरके लिहाजसे कहती है।

लेकिन ससार-भरमे जिसकी इज्ज़त है ऐसे आदमीके द्वारा ऐसी वात कही जानेसे एक बार फिर उसी पुरानी और लज्जाजनक लोकोक्तिकी पैरवी की जाती मालूम पडती है कि 'स्त्री नरकका द्वार है।'

इस कथनसे यह न समझिये कि आजकलकी लडकिया आपकी इज्जत नही करती। नवयुवकोकी तरह वे भी आपका सम्मान करती है। उन्हे तो सवसे बडी यही शिकायत है कि उन्हे नफरत या दयाकी दृष्टिसे क्यो देखा जाय। उनके तौर-तरीके अगर सचमुच दोषपूर्ण हो तो वे उन्हे सुधारनेके लिए तैयार है, लेकिन उनकी मलामत करनेसे पहले उनके दोषको अच्छी तरह सिद्ध कर देना चाहिए। इस सम्बन्धमे वे न तो स्त्रियोके प्रति शिष्टता-की झूठी भावनाकी छायाका ही सहारा लेना चाहती है, न वे न्यायाधीश द्वारा मनमाने तौरपर अपनी निन्दाकी जानेको चुपचाप वर्दाश्त करनेके लिए ही तैयार है। सचाईका सामना तो करना ही चाहिए, आजकल-की लडकीमे, जिसे कि आपके कथनानुसार अनेकोकी दृष्टिमे आकर्षक वनना प्रिय है, उसका मुकावला करने जितना साहस पर्याप्त रूपमे विद्यमान है।'

मुझे पत्र भेजनेवालियोको शायद यह पता नही है कि चालीस वरससे ज्यादा हुए तव दक्षिण अफ्रीकामे मैने भारतीय स्त्रियोकी सेवाका कार्य करना शुरू किया था, जवकि इनमेसे किसीका शायद जन्म न हुआ होगा। मै तो ऐसा कुछ लिख ही नही सकता जो नारीत्वके लिए अपमानजनक हो। स्त्रियोके लिए इज्जतकी सम्भावना मेरे अन्दर इतनी ज्यादा है कि मै उनकी वुराईका विचार ही नही कर सकता। स्त्रिया तो, जैसा कि अग्रेजीमे उन्हे कहा गया है, हमारा सुन्दरार्द्ध है। फिर मैने जो लेख

लिखा वह विद्यार्थियोकी निर्लज्जता पर प्रकाश डालनेके लिए था, लडकियोकी कमजोरीका ढोल पीटनेके लिए नही। अलबत्ता रोगका निदान बतलानेके लिए, अगर मुझे उसका ठीक इलाज बतलाना हो तो, मुझे उन सब बातोका उल्लेख करना लाजिमी था, जो रोगकी तहमे हो।

आधुनिक या आजकलकी लडकीका एक खास अर्थ है। इसलिए अपनी बात कुछ ही तक सीमित रखनेका सवाल नही था। यह याद रहे कि अग्रेजी शिक्षा पाने वाली सभी लडकिया आधुनिक नही है। मै ऐसी लडकियोको जानता हू, जिन्हे 'आधुनिक लडकी' की भावनाने स्पर्शतक नही किया, लेकिन कुछ ऐसी जरूर है जो आधुनिक लडकिया बन गई है। मैने जो कुछ लिखा वह भारतकी विद्यार्थिनियोको यह चेतावनी देनेके ही लिए था कि वे आधुनिक लडकियोकी नकल करके उस समस्याको और जटिल न बनाए जो पहले ही भारी खतरा हो रही है, क्योकि जिस समय मुझे यह पत्र मिला, उसी समय मुझे आन्ध्रसे भी एक विद्यार्थिनीका पत्र मिला था, जिसमे आन्ध्रके विद्यार्थियोके व्यवहारकी कडी शिकायत की गई थी और उसका जो वर्णन उसने किया था वह लाहौरकी लडकी द्वारा वर्णित व्यवहारसे भी बुरा था। आन्ध्रकी वह लडकी कहती है कि उसकी साथिन लडकिया सादा पोशाक पहननेपर भी नही बच पाती, लेकिन उनमे इतना साहस नही है कि वे उन लड़कोके जगलीपनका भडाफोड कर दे जो कि जिस सस्थामे पढते है उसके लिए कलक-रूप है। आन्ध्र-यूनिवर्सिटीके अधिकारियोका ध्यान मै इस शिकायतकी ओर आकर्षित करता हू।

पत्र भेजनेवाली इन ग्यारह लडकियोको मै इस बातके लिए निमन्त्रित करता हू कि वे विद्यार्थियोके जगली व्यवहारके खिलाफ जहाद बोल दे। ईश्वर उनकी मदद करता है जो अपनी मदद अपने-आप करते है। लडकियोको पुरुषके जगली व्यवहारसे अपनी रक्षा करनेकी कला तो सीख ही लेनी चाहिए।

हरिजन सेवक,
१८ फरवरी १९३९

परिशिष्ट

: १ :

सन्तति-निरोधकी हिमायतिन

दरिद्रनारायणकी सेवामे अपना सब-कुछ समर्पण कर देनेवाले बूढे किसानसे सर्वथा विपरीत, इग्लैण्डकी एक श्रीमती हाउ-मार्टिन है, जो कृत्रिम सन्तति-निरोधकी ज़बर्दस्त प्रचारिका है और भारतके गरीबोकी मददके लिए अपना सन्देश लेकर भारत पधारी है। गाधीजीके पास वह इस इरादेसे आई है कि या तो उन्हे अपने विचारोका बना ले या खुद उनके विचारोपर आ जाय। निस्सन्देह, वह हिन्दुस्तानमे पहली ही बार आई है और यहा के गरीबोकी हालत अभी उन्होने मुश्किलसे ही देखी होगी, इसलिए ब्रिटेनकी गन्दी बस्तियोके अपने अनुभवकी ही उन्होने चर्चा की और उन 'अबलाओ' का बडा पक्ष लिया, जिन्हे कि सशक्त पुरुषके आगे झुकना पडता है।

लेकिन इस पहली ही दलीलपर गाधीजीने उन्हे आडे हाथो लिया। 'कोई स्त्री अबला नही है।' गाधीजी ने कहा, "कमजोर-से-कमज़ोर स्त्री भी पुरुषसे ज्यादा बल रखती है और अगर आप भारतके गावोमे चले तो मै यह बात आपको दिखला देनेके लिए पूरी तरह तैयार हू। वहा प्रत्येक स्त्री आपसे यही कहेगी कि उसकी इच्छा न हो तो माईका जाया कोई ऐसा लाल नही जो उसपर बलात्कार कर सके। यह बात अपनी पत्नीके साथके खुद अपने अनुभवसे मै कह सकता हू, और यह याद रखिए कि मेरा उदाहरण कोई बिरला ही नही है। सच तो यह है कि झुकनेके बजाय मर जानेकी भावना मौजूद हो तो कोई राक्षस भी स्त्रीको अपनी दुष्ट चेष्टा-

के लिए मजबूर नही कर सकता। यह तो परस्परकी रजामन्दीकी बात है। स्त्री-पुरुष दोनोमे ही पशुत्व और देवत्वका सम्मिश्रण है, और अगर हम उनमेसे पशुत्वको दूर कर सके तो यह श्रेष्ठ और हितकर ही होगा।"

"लेकिन", श्रीमती हाउ-मार्टिनने पूछा, "अगर पुरुष अधिक बच्चोसे बचनेके लिए अपनी पत्नीको छोडकर पर-स्त्रीके पास जाय तो बेचारी पत्नी क्या करे?"

"यह तो आप अपनी बाते बदल रही है, लेकिन यह याद रखिए कि अगर आप अपनी दलीलको निर्भ्रान्त न रखेगी तो आप जरूर गलत परिणाम-पर पहुचेगी। व्यर्थकी कल्पनाए करके पुरुषको पुरुषसे कुछ और तथा स्त्रीको स्त्रीसे अन्यथा बनानेकी कोशिश न कीजिए। आपके सन्देशका आधार क्या है, यह तो मुझे समझ लेने दीजिए। जब मैने यह कहा कि सन्तति-निरोधका आपका प्रचार काफी फैल चुका है, तब इस विनोदके पीछे कुछ गम्भीरता थी, क्योकि मुझे यह मालूम है कि ऐसे भी कुछ स्त्री-पुरुष है जो समझते है कि सन्तति-निरोधमे ही हमारी मुक्ति है। इसलिए मै आपसे इसका आधार समझ लेना चाहता हू।"

"मै इसमे ससारकी मुक्ति नही देखती", श्रीमती हाउ-मार्टिनने कहा, "मै तो सिर्फ यही कहती हू कि सन्तति-निरोधका कोई रूप अख्तियार किये बगैर प्रजाकी मुक्ति नही है। आप ऐसा एक तरीकेसे करेगे, मै दूसरे तरीकेसे करूगी। आपके तरीकेका भी मै प्रतिपादन करती हू, लेकिन सभी हालतोमे नही। आप तो, मालूम होता है, एक सुन्दर वस्तुको ऐसा समझते है मानो वह कोई आपत्तिजनक चीज हो, पर यह याद रखिए कि दो व्यक्ति जब नये जीवनका निर्माण करने जाते है तो वे पशुत्वसे ऊपर उठकर देवत्वके अत्यन्त निकट होते है। इस क्रियामे कोई बात ऐसी है जो बडी सुन्दर है।"

"यहा भी आप भ्रममे है", गाधीजीने कहा, "नये जीवनका निर्माण देवत्वके अत्यन्त निकट है, इस बातको मै मानता हू। मै जो-कुछ चाहता हू वह तो यही है कि यह दैवी रूपमे ही किया जाय, मतलब यह कि पुरुष-स्त्री नये जीवनका निर्माण करने यानी सन्तानोत्पत्तिके सिवा और किसी

इच्छासे सम्भोग न करे ? लेकिन अगर वे खाली काम-वासना शान्त करने-के लिए ही सम्भोग करे तव तो वे शैतानियतके ही वहुत नज़दीक होते है। दुर्भाग्यवश, मनुष्य इस बातको भूल जाता है कि वह देवत्वके निकटतम है, वह अपने अन्दर विद्यमान पशु-वासनाके पीछे भटकने लगता है और पशुसे भी वदतर वन जाता है।"

"लेकिन पशुत्वकी आपको क्यो निन्दा करनी चाहिए ?"

"मै निन्दा नही करता। पशु तो, उसके लिए कुदरतने जो नियम वनाये है, उनका पालन करता है। सिह अपने क्षेत्रमे एक श्रेष्ठ प्राणी है ओर मुझको खा जानेका उसे पूरा अधिकार है, लेकिन मेरी यह विशेषता नही है कि मै पजे बढाकर आपके ऊपर झपटू। मै ऐसा करू तो अपनेको हीन बनाकर पशुसे भी वदतर बन जाऊगा।"

"मुझे अफसोस है," श्रीमती हाड-मार्टिनने कहा, "मैने अपने भाव ठीक तरह व्यक्त नही किये। इस वातको मै स्वीकार करती हू कि अधिकाश मामलोमे इससे उनकी मुक्ति नही होगी, लेकिन यह ऐसी वात जरूर है जिससे जीवन ऊचा बनेगा। मेरी बात आप समझ गये होगे, हालाकि मुझे शक है कि मै अपनी बात बिलकुल स्पष्ट नही कर पाई हू।"

"नही-नही, मै आपकी अव्यवस्थितताका कोई वेजा फायदा नही उठाना चाहता। हा, यह ज़रूर चाहता हू कि मेरा दृष्टिकोण आप समझ ले। ग़लतफहमियोपर न चलिए। उपरि-मार्ग और अधो-मार्गमेसे कोई एक आदमीको ज़रूर चुनना होगा, लेकिन उसमे पशुत्वका अश होनेके कारण वह उपरि-मार्गके वदले अधो-मार्ग उसके सामने सुन्दर आवरणसे परि-वेष्टित हो। सद्‌गणके परदेमे पाप सामने आने पर मनुष्य आसानीसे उसका शिकार हो जाता है, और मेरी स्टोप्स तथा दूसरे (कृत्रिम सन्तति-निरोधके हिमायती) यही कर रहे है। मै अगर विलासताका प्रचार करना चाहू तो, मै जानता हू, मनुष्य आसानीसे उसे ग्रहण कर लेगे। मै जानता हू कि आप जैसे लोग अगर निस्स्वार्थ भावसे उत्साहके साथ अपने सिद्धान्तके प्रचारमे लगे रहे तो ज़ाहिरा तौर पर शायद आपको विजय भी मिल जाय, लेकिन मै यह भी जानता हू कि ऐसा करके आप निश्चित रूपसे मृत्युके

मार्गपर पहुचेगे—इसमे शक नही कि ऐसा आप करेगे इस बातको बिलकुल न जानते हुए कि आप कितनी शरारत कर रहे है। अधो-मार्गकी प्रवृत्ति ही ऐसी है कि उसके लिए किसी समर्थन या दलीलकी ज़रूरत नही होती। यह तो हमारे अन्दर मौजूद ही है, और अगर हम इस पर रोक लगाकर इसे नियन्त्रित न रखे तो रोग और महामारीका खतरा है।"

श्रीमती हाड-मार्टिनने जो अबतक देवत्व और शैतानियतके बीच भेदको स्वीकार करती मालूम पडती थी, कहा कि ऐसा कोई भेद नही है और लोग समझते है उससे कही ज्यादा वे परस्पर-सम्बद्ध है। सन्तति-निरोधकी सारी फिलासफीके पीछे दरअसल यही बात है, और सन्तति-निरोधके हिमायती यह भूल जाते है कि यही उनका रामबाण इलाज है।

"तो आप ऐसा समझती है कि देव और पशु एक ही चीज है ? क्या आप सूर्यमे विश्वास करती है ? अगर करती है तो क्या आप यह नही सोचती कि छायामे भी आपको विश्वास करना ही चाहिए ?" गाधीजीने पूछा।

"आप छायाको शैतान क्यो कहते है ?"

"आप चाहे तो उसे ईश्वरेतर कह सकती है।"

"मै यह नही समझती कि छायामे 'ईश्वरेतर' नही है। जीवन तो सर्वत्र है।"

"जीवनका प्रभाव जैसी भी कोई चीज़ है। क्या आप जानती है कि हिन्दू लोग अपने-अपने प्रियतमो तकके शरीरको उनकी जीवन-ज्योतिके बुझते ही जल्द-से-जल्द जलाकर भस्म कर देते है ? यह ठीक है कि समस्त जीवनमे मूलभूत एकता है; लेकिन विभिन्नता भी है। हमारा काम है कि उस विभिन्नतामे प्रवेश करके उसके अन्दर समाविष्ट एकताका पता लगाये; लेकिन बुद्धिके द्वारा नही, जैसा कि आप प्रयत्न करनेकी कोशिश कर रही है। जहाँ सत्य है, वहा असत्य भी जरूर होना चाहिए; इसी तरह जहा प्रकाश है, वहा छाया भी ज़रूर होगी। जबतक आप तर्क और बुद्धि ही नही, बल्कि शरीरका भी सर्वथा उत्सर्ग न कर दे तबतक आप इस व्यापक ज्ञानकी अनुभूति नही कर सकती।"

श्रीमती हाड-मार्टिन भौचक्की रह गई । उनकी मुलाकातका समय बीता जा रहा था, लेकिन गाधीजीने कहा, "नही, मै आपको और समय देनेके लिए भी तैयार हू, लेकिन इसके लिए आपको वर्धा आकर मेरे पास ठहरना होगा । मै भी आपसे कम उत्साही नही हू, इसलिए जबतक आप मुझे अपने विचारोका न बना ले या खुद मेरे विचारो पर न आ जाय तबतक आपको हिन्दुस्तानसे नही जाना चाहिए ।"

यह आनन्दप्रद वार्ता सुनते हुए, जो दूसरे कार्य-क्रमोके कारण यही रोकनी पडी, मुझे असीसीके सन्त फ्रासिसके इन महान शब्दोका स्मरण हो आया—"प्रकाशने देखा और अन्धकार लुप्त हो गया । प्रकाशने कहा, "मै वहा जाऊगा ?" शान्तिने दृष्टि फेकी और युद्ध भाग गया, शान्तिने कहा, "मै वहा जाऊगी ।" प्रेम उदित हुआ और घृणा उड गई । प्रेमने कहा, "मै वहा जाऊगा ।" और यह बात सूर्य-प्रकाशकी भाति सर्वत्र फैलकर हमारे अतरमे प्रवेश कर गई ।

—महादेव देसाई

: २ :

पाप और सन्तति-निग्रह

गाधीजीके ध्यानमे सारे दिन ग्राम और ग्रामवासी ही रहते है और स्वप्न भी उन्हे इसी विपयके आते है। स्वामी योगानन्द नामके एक संन्यासी सोलह वरस अमेरिकामे रहकर अभी-अभी स्वदेश वापस आये है। गत सप्ताह राची जाते हुए गाधीजीसे मिलनेके लिए वे यहा उतर पडे और दो दिन ठहरे। उनके साथ गाधीजीका जो खासा लम्वा सम्वाद हुआ। उसमे भी उनके इस ग्राम-चिन्तनकी काफी स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। स्वामी योगानन्द केवल धर्मप्रचारके लिए अमेरिका गये थे और उनके कहे अनुसार उन्होने आचरण और उपदेशके द्वारा भारतवर्षका आध्यात्मिक सन्देश संसारको देनेका ही सव जगह प्रयत्न किया। उनका यह दृढ विश्वास है कि "भारतवर्षके वलिदानसे ही जगत्का उद्धार होगा।"

गाधीजीके साथ उन्हे पाप, सन्तति-निग्रह इन दो विषयो पर चर्चा करनी थी। अमेरिकाके जीवनकी काली वाजू उन्होने अच्छी तरह देखी थी और अमेरिकाके युवको और युवतियोके विलासितामय जीवनकी एक-एक वात पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकके लेखक जज लिंडसेके साथ उनका वहा काफी निकटका परिचय था।

गाधीजीने कहा, "दुनियामे पाप क्यो है" इस प्रश्नका उत्तर देना कठिन है। मै तो एक ग्रामवासी जो जवाव देगा वही दे सकता हू। जगत्मे प्रकाश है तो अन्धकार भी है। इसी तरह जहा पुण्य है वहा पाप होगा ही। किन्तु पाप और पुण्य तो हमारी मानवी दृष्टिसे है। ईश्वरके आगे तो पाप और पुण्य जैसी कोई चीज ही नही। ईश्वर तो पाप और पुण्य दोनोसे ही परे है। हम गरीव ग्रामवासी उसकी लीलाका मनुष्यकी वाणी-मे वर्णन करते है; पर हमारी भाषा ईश्वरकी भाषा नही है।

"वेदान्त कहता है कि यह जगत् माया रूप है। यह निरूपण भी मनुष्यकी तोतली वाणीका है । इसलिए मैं कहता हू कि मैं इन बातोमे पडता ही नही। ईश्वरके घरके गूढ-से-गूढ भेद जाननेका भी मुझे अवसर मिले तो भी मैं उन्हे जाननेकी हामी न भरू। कारण यह है कि मुझे यह पता नही कि मैं वह सब जानकर क्या करूगा ! हमारे आत्म-विकासके लिए इतना ही जानना काफी है कि मनुष्य जो कुछ अच्छा काम करता है ईश्वर निरन्तर उसके साथ रहता है। यह भी ग्रामवासीका निरूपण है।"

"ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है ही, तो वह हमे पापसे मुक्त क्यो नही कर देता ?" स्वामीजी ने पूछा।

"मैं इस प्रश्नकी भी उधेड-बुनमे नही पडना चाहता। ईश्वर और हम बराबर नही हैं। बराबरीवाले ही एक-दूसरेसे ऐसे प्रश्न पूछ सकते हैं, छोटे-बडे नही। गाववाले यह नही पूछते कि शहरवाले अमुक काम क्यो करते हैं, क्योकि वे जानते हैं कि अगर हमने वैसा किया तो हमारा सर्वनाश तो निश्चित ही है।"

"आपके कहनेका आशय मैं अच्छी तरह समझता हू। आपने यह बडी जोरदार दलील दी है। पर ईश्वरको किसने बनाया ?" स्वामीजीने पूछा।

"ईश्वर यदि सर्वशक्तिमान् है तो अपना सिरजनहार उसे स्वय ही होना चाहिए।"

"ईश्वर स्वतत्र सत्तावान् है या लोक-तत्रमे विश्वास करनेवाला ? आपका क्या विचार है ?"

"मैं इन बातोपर बिलकुल विचार नही करता। मुझे ईश्वरकी सत्तामे तो हिस्सा लेना नही, इसलिए ये प्रश्न मेरे लिए विचारणीय नही हैं। मैं तो, मेरे आगे जो कर्त्तव्य है, उसे करके ही सतोष मानता हू। जगत्‌की उत्पत्ति कैसे हुई, और क्यो हुई, इन सब प्रश्नोकी चिन्तामे मैं क्यो पडू ?"

"ईश्वरने हमे बुद्धि तो दी है ?"

"बुद्धि तो ज़रूर दी है, पर वह बुद्धि हमे यह समझनेमे सहायता

देती है कि जिन बातोका हम ओर-छोर नही निकाल सकते उनमे हमे माथापच्ची नही करनी चाहिए। मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि सच्चे ग्रामवासीमे अद्भुत व्यावहारिक बुद्धि होती है और इससे वह कभी इन पहेलियोकी उलझनमे नही पडता।"

"अब मै एक दूसरा ही प्रश्न पूछता हू। क्या आप यह मानते है कि पुण्यात्मा होनेकी अपेक्षा पापी होना सहल है, अथवा ऊपर चढनेकी अपेक्षा नीचे गिरना आसान है।"

"ऊपरसे तो ऐसा मालूम होता है, पर असल बात यह है कि पापी होनेकी अपेक्षा पुण्यात्मा होना सहल है। कवियोने कहा है सही कि नरकका मार्ग आसान है, पर मै ऐसा नही मानता। मै यह भी नही मानता कि ससारमे अच्छे आदमियोकी अपेक्षा पापी लोग अधिक है। अगर ऐसा है तो ईश्वर स्वय पापकी मूर्त्ति बन जायगा, पर वह तो अहिसा और प्रेमका साकार रूप है।"

"क्या मै आपकी अहिसाकी परिभाषा जान सकता हू?"

"ससारमे किसी भी प्राणीको मन, वचन और कर्मसे हानि न पहुचाना अहिसा है।"

गाधीजीकी इस व्याख्यासे अहिसाके सम्बन्धमे काफी लम्बी चर्चा हुई, पर उस चर्चाको मै छोड देता हू। 'हरिजन' और 'यगइडिया' मे न जाने कितनी बार इस विषय पर चर्चा हो चुकी है।

"अब मै दूसरे विषय पर आता हू," स्वामीजीने कहा, "क्या आप सन्तति-निग्रहके मुकाबलेमे सयमको अधिक पसद करते है?"

"मेरा यह विश्वास है कि किसी कृत्रिम रीतिसे या पश्चिममे प्रचलित मौजूदा रीतियोसे सन्तति-निग्रह करना आत्म-घात है। मैने यहा जो 'आत्म-घात' शब्दका प्रयोग किया है उसका अर्थ यह नही है कि प्रजाका समूल नाश हो जायगा। 'आत्म-घात' शब्दको मै इससे ऊचे अर्थमे लेता हू। मेरा आशय यह है कि सन्तति-निग्रहकी ये रीतिया मनुष्योको पशु-से बदतर बना देती है। यह अनीतिका मार्ग है।'

"पर हम यह कहा तक बर्दाश्त करे कि मनुष्य अविवेकके साथ सन्तान

पैदा करता ही चला जाय ? मै एक ऐसे आदमीको जानता हू, जो नित्य एक सेर दूध लेता था और उसमे पानी मिला देता था, ताकि उसे अपने तमाम बच्चोको बाट सके। बच्चोकी सख्या हर साल बढती ही जाती थी। क्या इसमे आप पाप नही मानते ?"

"इतने बच्चे पैदा करना कि उनका पालन-पोषण न हो सके यह पाप तो है ही, पर मै यह मानता हू कि अपने कर्मके फलसे छुटकारा पानेकी कोशिश करना तो उससे भी बडा पाप है। इससे तो मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है।"

"तब लोगोको यह सत्य बतानेका सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग क्या है।"

"सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग यह है कि हम सयमका जीवन बितावे। उपदेशसे आचरण ऊचा है।"

"मगर पश्चिमके लोग हमसे पूछते है कि तुम लोग अपनेको पश्चिमके लोगोसे अधिक आध्यात्मिक मानते हो, फिर भी हम लोगोके मुकाबलेमे तुम्हारे यहा बालकोकी मृत्यु अधिक सख्यामे क्यो होती है ? महात्माजी, आप मानते है कि मनुष्य अधिक सख्यामे सतान पैदा करे ?"

"मै तो यह माननेवाला हू कि सन्तान बिलकुल पैदा न की जाय।"

"तब तो सारी प्रजाका नाश हो जायगा।"

"नाश नही होगा, प्रजाका और भी सुन्दर रूपान्तर हो जायगा। पर यह कभी होनेका नही, क्योकि हमे अपने पूर्वजोसे यह विषय-वृत्तिका उत्तराधिकार युगानयुगसे मिला हुआ है। युगोकी इस पुरानी आदतको काबूमे लानेके लिए बहुत बडे प्रयत्नकी ज़रूरत है, तो भी वह प्रयत्न सीधा-सादा है। पूर्ण त्याग, पूर्ण ब्रह्मचर्य ही आदर्श स्थिति है। जिससे यह न हो सके वह खुशीसे विवाह कर ले, पर विवाहित जीवनमे भी वह सयमसे रहे।"

"जन-साधारणको सयममय जीवनकी बात सिखानेकी क्या आपके पास कोई व्यावहारिक रीति है ?"

"जैसा कि एक क्षण पहले मै कह चुका हू, हमे पूर्ण सयमकी साधना

करनी चाहिए और जन-साधारणके बीच जाकर सयममय जीवन बिताना चाहिए। भोग-विलास छोडकर ब्रह्मचर्यके साथ अगर कोई मनुष्य रहे तो उसके आचरणका प्रभाव अवश्य ही जनता पर पडेगा। ब्रह्मचर्य और अस्वाद व्रतके बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है, वह अपने प्रत्येक कार्यमे सयमसे काम लेगा और सदा नम्र बनकर रहेगा।"

स्वामीजीने कहा, "मै समझ गया। जन-साधारणको सयमके आनन्दका पता नही और हमे यह चीज उसे सिखानी है, पर मैंने पश्चिम-के लोगोकी जिस दलीलके बारेमे आपसे कहा है, उस पर आपका क्या मत है ?"

"मै यह नही मानता कि हम लोगोमे पश्चिमके लोगोकी अपेक्षा आध्यात्मिकता अधिक है। अगर ऐसा होता तो आज हमारा इतना अध - पतन न हो गया होता। किंतु इस बातसे कि पश्चिमके लोगोकी उम्र औसतन हम लोगोकी उम्रसे ज्यादा लम्बी होती है, यह साबित नही होता कि पश्चिममे आध्यात्मिकता है। जिसमे अध्यात्म-वृत्ति होती है, उसकी आयु अधिक लम्बी होनी चाहिए, यह बात नही है, बल्कि उसका जीवन अधिक अच्छा, अधिक शुद्ध होना चाहिए।"

—महादेव देसाई

: ३ :

श्रीमती सेंगर और सन्तति-निरोध

श्रीमती मार्गरेट सेगर अभी थोडे ही समय पहले गाधीजीसे वर्धामे मिली थी।* गाधीजीने उन्हे अच्छी तरह समय दिया था। भारतवर्ष छोडनेके पहले उन्होने 'इलस्ट्रेटेड वीकली'मे एक लेख लिखा है, जिसमे यह दिखाया गया है कि गाधीजीके साथ उनकी जो बात-चीत हुई उससे उन्हे कितना थोडा लाभ प्राप्त हुआ है। गाधीजीसे वह मार्गदर्शन प्राप्त करनेके लिए आई थी। "अगणित लोग आपको पूजते है, आपकी आज्ञा पर चलते है, फिर उनसे आप इस सम्बन्धमे क्यो नही कहते? उनके लिए आप कोई ऐसा मन्त्र क्यो नही देते कि जिससे वे सन्मार्ग पर चलना सीखे?"—यह वे चाहती थी। "देशके लाखो स्त्री-पुरुषोका हित आपने किया है तो फिर इस विषयमे भी आप कुछ कीजिए।" यह उनकी माग थी। पहले दिन अच्छी तरह बात करनेके बाद जब वे तृप्त नही हुई तो दूसरे दिन भी उन्होने उतनी देर तक बाते की। अब वे अपने लेखमे यह लिखती है कि गाधीजीको तो भारतकी महिलाओका कुछ पता नही, क्योकि उन्होने तो सारी बात-चीतमे दो ऐसी बेहूदी बाते की कि जिनसे उनका अज्ञान प्रकट हो गया। गाधीजीने इस बात-चीतमे अपनी आत्मा निचोड दी थी, अपनी आत्म-कथाके कितने ही प्रकरण हृदयगम भाषामे बताये थे, किन्तु उन सबका निष्कर्ष इस महिलाने यह निकाला कि गाधीजीको स्त्रियोकी मनोवृत्तिका कुछ ज्ञान ही नही।

गाधीजीसे श्रीमती सेगर स्त्रियोके लिए एक उद्धारक मत्र लेना चाहती थी, और वह मत्र उन्हे मिला, पर वह तो असलमे यह चाहती थी कि उनके अपने मत्र पर गाधीजी मोहर लगा दे। इसलिए वह सुवर्ण मत्र उन्हे दो कौडीका मालूम हुआ। उन्हे भले ही वह दो कौडीका मालूम हुआ हो,

पर भारतकी स्त्रियोको वह मत्र देना जरूरी है, उन्हे वह कौडी मोलका मालूम नही पड़ेगा। गाधीजीने तो उनसे बार-बार विनय करके यह भी कहा था कि मुझसे आपको एक ही बात मिल सकती है। मेरे और आपके तत्त्व-ज्ञानमे जमीन-आसमानका अन्तर है। इन सब बातोको उस समय तो उन्होने अच्छा महत्त्व दिया, पर खुद उन्होने जो लेख प्रकाशित कराया है, उसमे उन्हे जरा भी महत्त्व नही दिया।

गाधीजीने तो पीडित स्त्रियोके लिए यह सुवर्ण मत्र दिया था कि—"मैंने तो अपनी स्त्रीके गजसे ही तमाम स्त्रियोका माप निकाला है। दक्षिण अफ्रिकामे अनेक बहनोसे मै मिला—यूरोपीय और भारतीय दोनोसे ही। भारतीय स्त्रियोसे तो मै सभीसे मिल चुका था, ऐसा कहा जा सकता है, क्योकि उनसे मैने काम लिया था। सभीसे मै तो डोडी पीट-पीट कर कहता था कि तुम अपने शरीरकी—आत्माकी तरह शरीरकी भी—स्वामिनी हो, तुम्हे किसीके वशमे होकर नही बरतना है, तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारा पति तुमसे कुछ नही करा सकता, लेकिन बहुत-सी बहने अपने पतिसे 'ना' नही कह सकती। इसमे उनका दोष नही। पुरुषोने उन्हे गिराया है, पुरुषोंने उनके पतनके लिए अनेक तरहके जाल रचे है, और उन्हे बाधनेकी जजीरको भी उन्होने सोनेकी जजीरका नाम दे रखा है। इसलिए वे बेचारी पुरुषकी ओर आकर्षित हो गई है। मगर मेरे पास तो एक ही सुवर्ण-मार्ग है, वह यह कि वे पुरुषोका प्रतिरोध करे। यह वे उन्हे साफ-साफ बतला दे कि उनकी इच्छाके विरुद्ध पुरुष उनके ऊपर सन्ततिका भार नही डाल सकते। इस प्रकारका प्रतिरोध करानेमे अपने जीवनके शेष वर्ष यदि मै खर्च कर सकू तो फिर सन्तति-निग्रह-जैसी बातका कोई प्रश्न नही रहता। पुरुष यदि पशु-वृत्ति लेकर उनके पास जावे तो वे स्पष्ट रूपसे 'ना' कह दे। यह शक्ति अगर उनमे आ जाय तो फिर कुछ भी करनेकी जरूरत नही। यहा हिन्दुस्तानमे तो सन्तति-निग्रहका प्रश्न ही नही रहेगा। सभी पुरुष तो पशु है नही। मैने ही तो अपने निजी सम्पर्कमे आई हुई अनेक स्त्रियोको यह प्रतिरोधकी कला सिखाई है। असल प्रश्न तो यह है कि अनेक स्त्रिया यह प्रतिरोध करना

ही नही चाहती।....मेरा तो यह विश्वास है कि ९९ प्रतिशत स्त्रिया विना किसी कटुताके अपने प्रेमसे ही पतियोसे यह प्रार्थना कर सकती हैं कि हमारे ऊपर आप बलात्कार न करे। यह चीज़ असलमे उन्हे सिखाई नही गई, न माता-पिताने ही सिखाई, न समाज-सुधारकोने ही। तो भी कुछ पिता ऐसे देखे है कि जिन्होने अपने दामादसे यह बात की है, और कुछ अच्छे पति भी देखनेमे आये है कि जिन्होने अपनी स्त्रीकी रक्षा की है। मेरी तो सौ बातकी एक बात है कि स्त्रियोको प्रतिरोधका जो जन्म-सिद्ध अधिकार है, उसका उन्हे निर्बाध रीतिसे उपयोग करना चाहिए।"

मगर यह बात श्रीमती सेगरको बेहूदी-सी मालूम हुई। गाधीजीके आगे तो उन्होने नही कहा, पर अपने लेखमे वे कहती है कि इस सारी बातसे गाधीजीका अज्ञान ही प्रकट होता है, क्योकि स्त्रियोमे इस तरहका प्रतिरोध करनेकी शक्ति नही। आज स्त्रिया यह प्रतिरोध नही करती, यह तो गाधी जी भी खुद मानते हैं, पर उनका कहना यह है कि प्रत्येक शुद्ध सुधारकका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह स्त्रियोको इस तरहका प्रतिरोध करनेकी शिक्षा दे। क्रोध, द्वेष और हिसाकी दावाग्नि महात्मा ईसाके जमानेमे भी सुलग रही थी, किन्तु उन्होने उपदेश दिया प्रेमका, अहिसाका। उस उपदेशका पालन आज भी कम ही होता है, पर इससे यह कोई नही कहता कि महात्मा ईसाको मानव-समाजका ज्ञान न था।

श्रीमती सेगर बम्बईकी चालियोमे कुछ स्त्रियोसे मिलकर आई थी, और कहती थी कि उन स्त्रियोके साथ बात करने पर उन्हे ऐसा लगा कि उन स्त्रियोको यदि सन्तति-निग्रहके साधन प्राप्त हो जाय तो उन्हे बडी खुशी हो। ईश्वर जाने, वे वहा किस चालीमे गई थी, और उनका दुभाषिया कौन था! मगर गाधीजीने तो उनसे यह कहा कि "हिन्दुस्तानके गावोमे आप जाय तो आपके सन्तति-निग्रहके इन उपायोकी वे लोग बात भी सहन नही करेगी। आज इनीगिनी पढी-लिखी स्त्रियोको आप भले ही बहका सके, पर इससे आप यह न मान ले कि हिन्दुस्तानकी स्त्रियोकी ऐसी ही मनोवृत्ति है।"

लेकिन श्रीमती सेगरको ऐसा मालूम हुआ कि इस प्रतिरोधसे तो

गार्हस्थ्य जीवनमे कलह बढेगा, स्त्रिया अप्रिय हो जायगी, पति-पत्नीके विवाहित जीवनकी सुगन्ध और सुन्दरता नष्ट हो जायगी। बात तो यह थी कि इस प्रतिरोधसे यह सब होगा, यह बात नही, पर बिना शरीर-सम्बन्धका विवाहित जीवन ही शुष्क हो जाता है, ऐसा वे मानती है। इसलिए शरीर-सम्बन्धके विरुद्ध यह विद्रोहकी सलाह ही उनके गले नही उतरती। अमेरिकाके कुछ उदाहरण उन्होने गाधीजीके आगे रक्खे और बतलाया कि "देखिए, इन पति-पत्नियोका जीवन अलग-अलग रहनेसे कण्टकमय हो गया था; पर उन्होने सन्तति-निग्रह करना सीखा और इससे वे लोग विवाहित जीवनका आनन्द भी उठा सके और उनका जीवन भी सुखी हुआ।" गाधीजीने कहा, "मै आपको पचासो उदाहरण दूसरे प्रकारके दे सकता हू। शुद्ध सयमी जीवनसे कभी दु खकी उत्पत्ति नही हुई; किन्तु आत्म-सयम तो एक खरी वस्तु है। आत्म-सयम रखने वाला व्यक्ति अपने जीवनमात्रको जबतक सयत नही करता तबतक उसमे वह सफल हो ही नही सकता। मेरा तो यह अटल विश्वास है कि आपने जो उदाहरण दिये है वे तो सयम-हीन, बाह्य त्याग करके अन्तरसे विषयका सेवन करने वालोके उदाहरण है। उन्हे यदि मै सन्तति-निग्रहके उपायोकी सिफारिश करूं तो उनका जीवन तो और भी गन्दा हो जाय।

कुवारे स्त्री-पुरुषोके लिए तो यह साधन नरकका द्वार खोल देगे। इस विषयमे गाधीजीको शंका ही नही थी। उन्होने अपने अनुभव भी सुनाये, मगर श्रीमती सेंगरकी वर्धाकी बातचीतसे यह जान पडा कि वे कुवारे पुरुषोके लिए इन उपायोकी सिफारिश नही कर रही है। उन्होने तो इतना पूछा कि "विवाहितोके लिए भी क्या आप इन साधनोकी अनुमति नही देते ?" गांधीजीने कहा, "नही, विवाहितोका भी यह साधन सत्यानाश करेगे।" श्रीमती सेंगरने अपने लेखमे जो दलील इसके विरुद्ध रखी है, वह दलील उन्होने बातचीतमे नही दी थी। वे लिखती है— "यदि सन्तति-निग्रहके साधनसे ही मनुष्य अत्यन्त विषयी अथवा व्यभिचारी बनते हो, तब तो गर्भाधानके बादके नौ मासमे भी अतिशय विषय और व्यभिचारके लिए क्या गुजाइश नही रहती ?" दलीलकी खातिर तो यह

दलील की जा सकती है, पर मालूम होता है कि श्रीमती सेगरने इस बातका विचार नही किया कि स्त्री-जातिके लिए ही यह दलील कितनी अपमानजनक है। बहुत ही दबाई हुई अथवा एकाध अत्यन्त विषयान्ध स्त्रीको छोडकर क्या कोई गर्भवती स्त्री अपने पतिके भी विषय-वासनाके वश होती है ?"

मगर बात असलमे यह थी कि श्रीमती सेगर और गाधीजीकी मनोवृत्तियोमे पृथ्वी-आकाशका अन्तर था। बातचीतमे विषयेच्छा और प्रेमकी चर्चा चली। गाधीजीने कहा कि विषयेच्छा और प्रेम ये दोनो अलग-अलग चीजे है। श्रीमती सेगरने भी यही बात कही। गाधीजीने अपने अनुभवका प्रकाश डालकर कहा कि "मनुष्य अपने मनको चाहे जितना धोखा दे, पर विषय विषय है, और प्रेम प्रेम है। काम-रहित प्रेम मनुष्यको ऊचा उठाता है, और काम-वासना वाला सम्बन्ध मनुष्यको नीचे गिराता है।" गाधीजीने सन्तानोत्पत्तिके लिए किये हुए धर्म्य सम्बन्धका अपवाद कर दिया। उन्होने दृष्टान्त देकर समझाया कि "शरीर-निर्वाहके लिए हम जो कुछ खाते है, वह आहार नही, अस्वाद नही, किन्तु स्वाद है और विहार है। हलवा या पकवान या शराब मनुष्य भूख या प्यास बुझानेके लिए नही खाता-पीता, किन्तु केवल अपनी विषय-लोलुपताके वश होकर ही इन चीजोको खाता-पीता है। इसी तरह शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए पति-पत्नी जब इकट्ठे होते है तब उस सम्बन्धको प्रेम-सम्बन्ध कहते है, सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाके बिना जब वह इकट्ठे होते है तो वह प्रेम नही, भोग है।"

श्रीमती सेगरने कहा, "यह उपमा ही मुझे स्वीकार्य नही।"

गाधीजी—"आपको यह क्यो स्वीकार्य हो ? आप तो सन्तानेच्छारहित सम्बन्धको आत्माकी भूख मानती है, इसलिए मेरी बात क्यो आपके गले उतरे ?"

श्रीमती सेगर—"हा, मै उसे आत्माकी भूख मानती हू। मुख्य बात यह है कि वह भूख किस तरह तृप्त की जाय ? तृप्तिके परिणाम-स्वरूप सन्तान हो या न हो, यह गौण बात है। अनेक बच्चे बिना इच्छाके ही उत्पन्न होते है और शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए तो कौन दम्पति इकट्ठे होते

होगे ? यदि शुद्ध सन्तानोत्पत्तिके लिए ही इकट्ठे हो तो पति-पत्नीको जीवनमे तीन-चार वार ही विषयेच्छाको तृप्त करके सन्तोष मानना पडे। और यह तो ठीक वात नही कि सन्तानेच्छासे जो सम्वन्ध किया जाय, वह शुद्ध प्रेम है और सन्तानेच्छा-रहित सम्वन्ध विषय-सम्वन्ध है।"

गाधीजी—"मै यह अनुभवकी वात कहता हू कि मैने अमुक सन्ताने होनेके वाद अपने विवाहित जीवनमे शरीर-सम्वन्ध वन्द कर दिया। सन्तानेच्छारहित सभी सम्वन्ध विषय-सम्वन्ध है, ऐसा आप कहना चाहे तो मै यह कवूल कर सकता हू। मेरा तो एक अनुभव आईना-सा स्पष्ट है कि मै जव-जव शरीर-सम्वन्ध करता था, तव-तव हमारे जीवनमे सुख एव शान्ति और विशुद्ध आनन्द नही होता था। एक आकर्षण था सही, किन्तु ज्यो-ज्यो हमारे जीवनमे—मेरेमे—सयम वढता गया, त्यो-त्यो हमारा जीवन अधिक उन्नत होता गया। जवतक विषयेच्छा थी, तवतक सेवा-शक्ति शून्यवत् थी। विषयेच्छा पर चोट की कि तुरन्त सेवा-शक्ति उत्पन्न हुई। काम नष्ट हुआ और प्रेमका साम्राज्य जमा।" गाधीजीने अपने जीवनके एक अन्य आकर्षणकी भी वात की। उस आकर्षणसे ईश्वरने उन्हे किस तरह वचाया, यह भी उन्होने वतलाया, पर ये तमाम अनुभवकी वाते श्रीमती सेगरको अप्रस्तुत मालूम हुई। शायद न मानने योग्य मालूम हुई हो तो कोई अचरज नही, क्योकि अपने लेखमे वे कहती है कि "काग्रेसके मुट्ठी-भर आदर्शवादी कार्यकर्त्ता अपनी विषयेच्छाको दवाकर सेवाशक्तिमे भले ही परिणत कर सके हो, पर उन इने-गिने व्यक्तियोको छोडकर उन्हे तो हम लोगोकी वाते करनी थी।" पर जहा तक मेरा खयाल है, गाधीजीने तो काग्रेस या काग्रेसके कार्यकर्त्ताओका सारी वातचीतमे कोई हवाला ही नही दिया था, पर श्रीमती सेगर यह भूल जाती है कि तमाम नैतिक उन्नति "मुट्ठी-भर आदर्शवादियो" के आचरणकी वदौलत ही हुई है। सच वात तो यह है कि गाधीजीने वतौर स्वप्न-द्रष्टा-के वात नही की थी। गाधीजी खुद एक नीति-शिक्षक है और श्रीमती सेगर भी नीति-शिक्षिका है, वे स्वय एक समाज-सेवक है और श्रीमती सेगर भी समाज-सेविका है, यह मानकर ही सारा सवाद चला था, और

यह होते हुए भी व्यवहारकी भूमिका पर खडे होकर ही उन्होने उनसे बाते की थी। उन्होने कहा, "नही, बतौर नीति-रक्षकके मेरा और आपका कर्त्तव्य तो यह है कि इस सन्तति-निग्रहको छोडकर अन्य उपायोका आयोजन करे। जीवनमे कठिन पहेलिया तो आयगी ही, पर वे किसी मनचाहे अनुकूल साधनसे हल नही की जा सकती। इन सन्तति-निग्रहके साधनोको अधर्म्य समझकर आप चलेगी तभी आपको अन्य साधन सूझेगे। तीन-चार बच्चे पैदा हो जानेके बाद मा-बापको अपनी विषय-वासना शान्त कर देनी चाहिए, इस प्रकारकी शिक्षा हम क्यो न दे, इस तरहका कानून हम क्यो न बनावे ? विषय-भोग खूब तो भोग लिया, चार-चार बच्चे हो जानेके बाद भोग-वासनाको अब क्यो न रोका जाय ? बच्चे मर जाय और बादको जरूरत हो तो सन्तान उत्पन्न करनेकी गरजसे पति-पत्नी फिरसे इकट्ठे हो सकते है। आप ऐसा करेगी तो विवाह-बन्धनको आप ऊचे दरजे पर ले जायगी। सन्तति-निग्रहकी सलाह मुझसे कोई स्त्री लेने आये तो मै उससे यही कहूगा कि 'यह सलाह, बहन, तुम्हे मेरे पास मिलनेकी नही, और किसीके पास जाओ।' पर आप तो सन्तति-निग्रह-के धर्मका आज प्रचार कर रही है। मै आपसे यह कहूगा कि इससे आप लोगोको नरकमे ले जाकर पटकेगी, क्योकि उनसे आप यह तो कहेगी नही कि 'बस, अब इससे आगे नही।' इसमे आप कोई मर्यादा तो रख नही सकेगी।"

वर्धामे जो बातचीत हुई उसमे तो श्रीमती सेगरने इतने अधिक मित्रभावसे, इतनी अधिक जिज्ञासा-वृत्तिसे बर्ताव किया कि कुछ पूछिये नही। गाधीजीसे उन्होने कहा था, "पर आप कोई उपाय भी बतलाइए। सयम मै भी चाहती हू, सयम मुझे अप्रिय नही, पर शक्य सयमका ही पालन हो सकता है न ?" सत्य-शोधककी नम्रतासे गाधीजीने कहा, "निर्बल मनुष्योके लिए एक उपाय दिखाई देता है। वह उपाय हाल हीमे एक मित्र-की भेजी हुई पुस्तकमे देखा है। उसमे यह सलाह दी है कि ऋतुकालके बाद अमुक दिनोको छोडकर विषय-सेवन किया जाय। इस तरह भी मनुष्यको महीनेमे १०–१२ दिन मिल जाते है और सन्तानोत्पादनसे वह

बच सकता है। इस उपायमे बाकीके दिन तो सयम पालनेमे ही जायगे, इसलिए मै इस उपायको सहन कर सकता हू।"

पर यह उपाय श्रीमती सेगरको तो नीरस ही मालूम हुआ होगा; क्योकि इस उपायका उन्होने न तो अपने लेखमे ही कही उल्लेख किया है, न अपने भाषणोमे ही। इस उपायकी ही बात करे तो सन्तति-निग्रहके साधन बेचनेवाले भीख मागने लगे और तीसो दिन जिन्हे भोग-वासना सताती हो, उन बेचारोकी क्या हालत हो ?

फिर श्रीमती सेगर तो ऐसे दुखियोकी दुख-भजक ठहरी। ऐसे दुखियोका मोक्ष-साधन सन्तति-निग्रहके सिवा और क्या हो सकता है। मै यह कटाक्ष नही कर रहा हू। श्रीमती सेगरने अमेरिकामे सर्वधर्म-परिषद्के आगे जो भाषण दिया था, उसमे उन्होने सन्तति-निग्रहको मोक्ष-साधनका रूप दिया है। उस भाषणमे उन्होने न तो सयमकी बात की है; न केवल विवाहित दम्पतियोकी। वहा तो उन्होने बात की है उस अमेरिका की—जहा हर साल २० लाख भ्रूण-हत्याए होती है। इतनी बाल हत्याएं रोकनेके लिए सन्तति-निग्रहके साधनोके सिवा दूसरा उपाय ही क्या !! पर अभी ज़रा और आगे बढे तो कुछ दूसरी ही बात मालूम होगी, और वह यह कि इन विदेशी प्रचारिकाओकी चढाई भारतकी स्त्रियोके हितार्थ नही, किन्तु दूसरे ही हेतुसे हो रही है। अमेरिकाके उस भाषणमे ही उन्होने स्पष्ट रीतिसे कहा था कि—"जापानकी आबादी कितनी बढ रही है! वहा तो जन-वृद्धिकी मात्रा पहले ही बढी-चढी थी, और अब तो वह उसे भी पार कर रही है। इसी तरह अगर यह बढती गई तो इन एशियाके राष्ट्रोका त्रास पृथ्वी कैसे सहन कर सकेगी ? राष्ट्रसघको इसके विरुद्ध कोई जबर्दस्त प्रतिबन्ध सहना ही होगा। अपनी इतनी बडी प्रजाके लिए खानेकी तगी होनेसे जापानको और भी देशोकी जरूरत होगी, और भी मण्डिया चाहनी पडेगी, इसीसे वह पवित्र सधियोको भग कर रहा है और विश्व-व्यापी युद्धका बीज बो रहा है।" जापान आज जिस अप्रिय रीतिसे पेश आ रहा है, उसे देखते हुए तो जापानका यह उदाहरण चतुराईसे भरा हुआ उदाहरण है; पर श्रीमती सेगरको तो इस डरका भयकर

स्वप्न दवा रहा है कि सन्तति-निग्रह न करने वाले एशियाई राष्ट्र यूरोपीय प्रजाके लिए खतरनाक हो सकते हैं। ऐसे जन-हितैषियोकी चढाईसे हम जितनी ही जल्दी सजग हो जाय उतना ही अच्छा।

—महादेव देसाई

: ४ :

श्रीमती सेंगरका पत्र

श्रीमती सेगरने मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है—

"अपने लेख ('विदेशियोके नये-नये हमले') मे मेरे और गाधीजीके बीच हुई वातचीत देते हुए आप कहते है कि 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के अपने लेखमे मैने उस वातचीतका सिर्फ एक ही पहलू रखा है। आपकी यह वात विलकुल ठीक है। उस लेखमे दरअसल, उसी पर मै विचार भी करना चाहती थी।

"मुझे यह भी वता देना चाहिए कि उस लेखको छपनेके लिए भेजनेसे पहले मैने आपकी और गाधीजीकी एक प्रिय और वफादार मित्र म्यूरियल लेस्टरको पढकर सुना दिया था और जिसे आप 'परदेकी ओटमे दुर्भाव' कहते है वह वात उन्होने ही सुझाई थी। कृपया इस वातका यकीन रखे कि जो वहादुर स्त्री-पुरुष हिन्दुस्तानकी आजादीके लिए प्रयत्न कर रहे है उन सवके प्रति मेरे मनमे अत्यधिक श्रद्धा और सम्मानका ही भाव है। मैने अभी तक जो-कुछ किया है उस पर आप नजर डाले तो हिन्दुस्तानमे आजादी प्राप्त करनेके लिए किये जानेवाले प्रयत्नोकी मदद करनेकी गरजसे १९१७ मे जो पहला दल अमेरिकामे सगठित हुआ था, उसमे मेरा भी नाम आपको मिलेगा।

"एक और वात भी आपके लेखमे ऐसी है जिसमे, मै समझती हू, आप गलती पर है। वह यह कि आप उसमे यह जाहिर करते मालूम पडते है कि हमारी वातचीतमे गाधीजीने (ऋतु-कालके बाद कुछ दिनोको छोडकर) ऐसे दिनोमे समागमके उपायको स्वीकार कर लिया है जिनमे गर्भ रहनेकी सम्भावना प्राय. नही होती। मेरे खयालसे आप बाहर दिये हुए वक्तव्यको देखे तो उसमे उनका यह वचन आपको मिलेगा,

'यह बात मुझे उतनी नही खलती जितनी कि दूसरी खलती है ।' हालाकि मैंने और निश्चित बात कहनेका आग्रह किया, लेकिन इससे आगे उन्होने कुछ नही कहा । ऐसी हालतमे आपने सार्वजनिक रूपसे जो कथन उनका बताया है, मेरे खयालमे वह आपने ठीक नही किया । और अन्तमे आपने प्रचारकोके 'व्यापार' की जो बात लिखी है, मै नही समझती कि उसमे गाधीजी आपसे सहमत होगे । वह वाक्य और जिस भावनाका वह सूचक है वह, आप-जैसे व्यक्तिके लायक नही है, जिसने कि नि स्वार्थ भावसे जन-सेवाका कार्य किया है ।

"सन्तति-निग्रहके कार्यकर्त्ता जिस बातको मानव-स्वतन्त्रता एव प्रगतिके लिए मनुष्य-मात्रका मौलिक स्वत्व मानते है, उसके लिए नि स्वार्थ भावसे और बिना किसी परिश्रमके उन्होने सग्राम किया है और अब भी कर रहे है । फिर जो अपना विरोधी हो उसके बारेमे यो ही कोई ऐसी बात कह देना सर्वथा अनुचित, असौजन्यपूर्ण और असत्य है, जो दरअसल बिलकुल बेबुनियाद हो ।"

इसमे जहा तक 'परदेकी ओटमे दुर्भाव' से सम्बन्ध है, मै प्रसन्नता-से और कृतज्ञता-पूर्वक अपनी भूल स्वीकार करता हू, लेकिन यह मानना होगा कि जिस शोखी और तुनकमिजाजीके लहजेमे वह लेख लिखा हुआ है, उससे यही भाव टपकता है, हालाकि अब मै यह मान लेना हू कि उनका ऐसा भाव नही था ।

दूसरी गलतीके बारेमे, श्रीमती सेगरको यह याद रखना चाहिए कि उन्होने तो 'बातचीतके सिर्फ एक पहलूको ही' लिया है, लेकिन मै ऐसा नही कर सकता । मै नही समझता कि यह कहकर कि ऋतु-कालके बाद-के कुछ दिनोको छोडकर ऐसे दिनोमे समागमकी बात गाधीजी सहन कर लेगे, जिनमे गर्भ रहनेकी सम्भावना प्राय नही होती, क्योकि इसमे आत्म-सयमकी थोडी-बहुत भावना तो है, मैने उन्हे किसी ऐसी स्थितिमे डाल दिया है जो उन्हे पसन्द नही है । मै तो सिर्फ यही बताना चाहता था कि अपने विरोधीकी बातको भी, जहा तक सम्भव हो, किस तत्परताके साथ गाधीजी स्वीकार कर लेते है । उन्होने जिस कारण यह कहा कि

'यह बात मुझे इतनी नही खलती जितनी कि दूसरी खलती है,' वह इस विषयमे बडी मुद्देकी बात है, क्योकि श्रीमती सेगरके उपाय (कृत्रिम सन्तति-निग्रह) से जहा महीनेके सभी दिनोमे विषय-भोगमे प्रवृत्त होनेकी छुट्टी मिल जाती है वहा इस विशेष उपायसे किसी हदतक तो आत्म-सयम होता ही है।

'व्यापार' वाली बात, मै समझता हू, श्रीमती सेगरको बहुत बुरी लगी है, लेकिन खुद श्रीमती सेगरपर मैने ऐसा कोई आरोप नही लगाया है, न मेरा ऐसा कोई इरादा ही था, क्योकि मुझे मालूम है, उन्होने अपने उद्देश्यके लिए बडी बहादुरी और निस्स्वार्थ भावसे लडाई लडी है, मगर यह बात बिलकुल गलत भी नही है कि सन्तति-निग्रहके लिए आजकल जो प्रचार हो रहा है वह तथा सन्तति-निग्रहके प्राय सभी उत्साही समर्थकोके यहा बिक्रीके लिए इस सम्बन्धका जो आकर्षक साहित्य या औज़ार आदि होते है वह सब मिलाकर बहुत भद्दा है। इन सबसे उस उद्देश्यको तो हानि ही पहुचती है जिसके लिए कि श्रीमती सेगर निस्स्वार्थ भावसे इतना उद्योग कर रही है।

—महादेव देसाई

: ५ :

स्त्रियोंको स्वर्गकी देवियां न बनाइए[1]

गाधीजी उस विषयपर आये, जिस विषयपर कि विषय-समितिमे उन्होने अपने विचार प्रकट किये थे। वायु-मण्डल अनुकूल नही था, इसलिए उस विषयपर वे कोई प्रस्ताव नही ले सके। 'ज्योति-सघ' नामक आन्दोलनकी सचालिका बहनोने उन्हे एक पत्र लिखा था। इसी-को लेकर उन्होने कुछ कहा। इस पत्रके साथ एक प्रस्ताव भी था, जिसमे उन्होने उस वृत्तिकी निन्दा की, जो आज-कल स्त्रियोका चित्रण करनेके विषयमे वर्तमान साहित्यमे चल पडी है। गाधीजीको लगा कि उनकी शिकायतमे काफी बल है और उन्होने कहा, "इस आरोपमे सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आजकलके लेखक स्त्रियोका बिलकुल झूठा चित्रण करते है। जिस अनुचित भावुकताके साथ स्त्रियोका चरित्र-चित्रण किया जाता है, उनके शरीर-सौन्दर्यका जैसा भद्दा और असभ्यतापूर्ण वर्णन किया जाता है, उसे देखकर इन कितनी बहनोको घृणा होने लग गई है। क्या उनका सारा सौन्दर्य और बल केवल शारीरिक सुन्दरता ही मे है? पुरुषोकी लालसा-भरी विकारी आखोकी तृप्ति करनेकी क्षमतामे ही है? इस पत्रकी लेखि-काए पूछती है और उनका पूछना बिलकुल न्याय्य है कि क्यो हमारा हमेशा इस तरह वर्णन किया जाता है, मानो हम कमजोर और दब्बू औरते हो, जिनका कर्तव्य केवल यही है कि घरके तमाम हलके-से-हलके काम करती रहे और जिनके एकमात्र देवता उनके पति है! जैसी वे है वैसी ही उन्हे क्यो नही बताया जाता? वे कहती है, 'न तो हम स्वर्गकी अप्सराए है, न गुडिया है, और न विकार और दुर्बलताओकी गठरी ही है।' पुरुषोकी

---

[1] गुजरात साहित्य-परिषद्की कार्यवाहीका अश

भाति हम भी तो मानव-प्राणी ही है। जैसे वे है वैसी ही हम भी है। हममे भी आत्मा की वही आग है। मेरा दावा है कि उन्हे और उनके दिलको मै काफी अच्छी तरह जानता हू। दक्षिण अफ्रिकामे एक समय मेरे आस-पास स्त्रियां-ही-स्त्रियां थी। मर्द सब उनके जेलोमे चले गये थे। आश्रममे कोई ६० स्त्रियां थी। और मै उन सब लडकियो और स्त्रियोका पिता और भाई बन गया था। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे पास रहते हुए उनका आत्मिक बल बढता ही गया, यहातक कि अन्तमे वे सब खुद-ब-खुद जेल चली गई।

अभावमे ज़रा हिन्दीकी कल्पना तो कीजिए। आजकलके साहित्यमे स्त्रियोके विषयमे जो-कुछ मिलता है, ऐसी बाते आपको तुलसीकृत रामायणमे मिलती है ?"

: ३ :

ब्रह्मचर्य–२

ब्रह्मचर्य—२

: १ :

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यकी जो व्याख्या मैने की है, वह अब भी कायम है। अर्थात्, जो मनुष्य मनसे भी विकारी होता है, समझना चाहिए कि उसका ब्रह्मचर्य स्खलित हो गया है। जो विचारमे निर्विकार नही, वह पूर्ण ब्रह्मचारी कभी नही माना जा सकता। चूकि अपनी इस व्याख्यातक मै नही पहुच सका, इसलिए अपनेको मै आदर्श ब्रह्मचारी नही मानता। पर अपने आदर्शसे दूर होते हुए भी, मै यह मानता हू कि जब मैने इस व्रतका आरभ किया तब मै जहापर था, उससे आगे बढ गया हू। विचारकी निर्विकारता तबतक कभी आती ही नही, जबतक कि 'पर' का दर्शन नही होता। जब विचारके ऊपर पूरा काबू हो जाता है, तब पुरुष स्त्रीको और स्त्री पुरुषको अपनेमे लय कर लेती है। इस प्रकारके ब्रह्मचारीके अस्तित्वमे मेरा विश्वास है, पर ऐसा कोई ब्रह्मचारी मेरे देखनेमे नही आया। ऐसा ब्रह्मचारी बननेका मेरा महान प्रयास जारी अवश्य है। जबतक यह ब्रह्मचर्य प्राप्त नही हो जाता, मनुष्य उतनी अहिसातक, जितनी कि उसके लिए शक्य है, पहुच नही सकता।

ब्रह्मचर्यके लिए आवश्यक मानी जानेवाली बाड़को मैने हमेशाके लिए आवश्यक नही माना है। जिसे किसी बाह्य रक्षाकी ज़रूरत है वह पूर्ण ब्रह्मचारी नही। इसके विपरीत, जो बाडको तोडनेके ढोगसे प्रलोभनोकी खोजमे रहता है, वह ब्रह्मचारी नही, किंतु मिथ्याचारी है।

ऐसे निर्भय ब्रह्मचर्यका पालन कैसे हो ? मेरे पास इसका कोई अचूक

उपाय नही, क्योकि मै पूर्ण दशाको नही पहुचा हू । पर मैंने अपने लिए जिस वस्तुको आवश्यक माना है, वह यह है :

विचारोको खाली न रहने देनेकी खातिर निरतर उन्हे शुभ चितनमे लगाये रहना चाहिए । रामनामका इकतारा तो चौबीसो घटे, सोते हुए भी, श्वासकी तरह स्वाभाविक रीतिसे, चलता रहना चाहिए । वाचन हो तो सदा शुभ, और विचार किया जाय, तो अपने कार्यका ही । कार्य पारमार्थिक होना चाहिए । विवाहितोको एक-दूसरेके साथ एकात-सेवन नही करना चाहिए, एक कोठरीमे एक चारपाईपर नही सोना चाहिए । यदि एक दूसरेको देखनेसे विकार पैदा होता हो, तो अलग-अलग रहना चाहिए । यदि साथ-साथ बाते करनेमे विकार पैदा होता हो, तो बाते नही करनी चाहिए । स्त्रीमात्रको देखकर जिसके मनमे विकार पैदा होता हो, वह ब्रह्मचर्य-पालनका विचार छोडकर अपनी स्त्रीके साथ मर्यादापूर्वक व्यवहार रखे, जो विवाहित न हो, उसे विवाहका विचार करना चाहिए । किसीको सामर्थ्यके बाहर जानेका आग्रह नही रखना चाहिए । सामर्थ्यसे बाहर प्रयत्न करके गिरनेवालोके अनेक उदाहरण मेरी नजरके सामने आते रहते है ।

जो मनुष्य कानसे बीभत्स या अश्लील बाते सुननेमे रस लेते है, आखसे स्त्रीकी तरफ देखनेमे रस लेते है, वे सब ब्रह्मचर्यका भग करते है । अनेक विद्यार्थी और शिक्षक ब्रह्मचर्य-पालनमे जो हताश हो जाते है, इसका कारण यह है कि वे श्रवण, दर्शन, वाचन, भाषण आदि की मर्यादा नही जानते, और मुझसे पूछते है, "हम किस तरह ब्रह्मचर्यका पालन करे ?" प्रयत्न वे जरा भी नही करते । जो पुरुष स्त्रीके चाहे जिस अगका सविकार स्पर्श करता है, उसने ब्रह्मचर्यका भग किया है, ऐसा समझना चाहिए । जो ऊपरी मर्यादा-का ठीक-ठीक पालन करता है, उसके लिए ब्रह्मचर्य सुलभ हो जाता है ।

आलसी मनुष्य कभी ब्रह्मचर्यका पालन नही कर सकता । वीर्य-सग्रह करनेवालेमे एक अमोघ शक्ति पैदा होती है । उसे अपने शरीर और मनको निरतर कार्यरत रखना ही चाहिए । अत. हरेक साधकको ऐसा सेवा-कार्य खोज लेना चाहिए कि जिससे उसे विषय-सेवन करनेके लिए रचमात्र भी समय न मिले ।

साधकको अपने आहारपर पूरा काबू रखना चाहिए। वह जो कुछ खाये, वह केवल औषधिरूपमे शरीर-रक्षाके लिए, स्वादके लिए कदापि नही। इसलिए मादक पदार्थ, मसाले वगैरा उसे खाने ही नही चाहिए। ब्रह्मचारी मिताहारी नही, किंतु अल्पाहारी होना चाहिए। सब अपनी मर्यादा बाँध ले।

उपवासादिके लिए ब्रह्मचर्य-पालनमे अवश्य स्थान है। पर आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देकर जो उपवास करता और उससे अपनेको कृतकृत्य हुआ मानता है, वह भारी गलती करता है। निराहारीके विषय उस बीचमे क्षीण भले ही हो जाये, पर उसका रस नष्ट नही होता। शरीरको नीरोगी रखनेमे उपवास बहुत सहायक है। अल्पाहारी भी भूल कर सकता है, इसलिए प्रसगोपात्त उपवास करनेमे लाभ ही है।

'क्षणिक रसके लिए मै क्यो तेजहीन होऊ ? जिस वीर्यमे प्रजोत्पत्तिकी शक्ति भरी हुई है, उसका पतन क्यो होने दू, और इस तरह ईश्वरकी दी हुई बख्शीसका दुरुपयोग करके मै ईश्वरका चोर क्यो बनू ? जिस वीर्यका सग्रह कर मै वीर्यवान् बन सकता हू, उसका पतन करके वीर्यहीन क्यो बनू ?' इस विचारका मनन यदि साधक नित्य करे, और रोज ईश्वर-कृपाकी याचना करे, तो सभवत. वह इस जन्ममे ही वीर्यपर काबू प्राप्त कर ब्रह्मचारी बन सकता है। इसी आशाको लेकर मै जी रहा हू।

'हरिजन-सेवक',
२८-१०-३६

: २ :

ब्रह्मचर्यका स्पष्टीकरण

मोण्टाना (अमरीका) से कुमारी मैबल ई० सिम्पसनने 'हरिजन' के सम्पादकको लिखा है .

"मै आपके पत्रकी प्रशसा करती हू । यह ठीक है कि आकारमे यह बहुत बडा नही है, लेकिन इसमे जो कुछ रहता है उससे इस अभावकी पूर्ति हो जाती है । गाधीजीने सन्तति-निग्रहके विपयमे सदाकी तरह स्पष्टता-पूर्वक जो लेख लिखा है, वह मुझे बहुत पसन्द आया । अगर वह बीस बरस पहले, जब कि सन्तति-निग्रहसे घृणा की जाती थी, और अब जब कि इसका बहुत जोर है, अमरीका आते तो वह यह जान जाते कि नैतिक दृष्टिसे यह कितना पतन-कारक है । लेकिन वह किसीको इस बातका विश्वास नही करा सकेगे, क्योकि यह मनुष्यको नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे भी वचित कर देता है, जिससे इस पथपर चलनेवालोके लिए उच्च नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे बुद्धिपूर्वक किसी बातका निर्णय करना असम्भव हो जाता है । इस सम्बन्धमे हिन्दुस्तानने अगर पश्चिमका अनुकरण किया तो निश्चय ही वह अपने दो अत्यन्त अमूल्य और सुन्दर रत्नोको खो देगा—एक तो छोटे बच्चोके प्रति प्रेम, और दूसरा माता-पिताके प्रति श्रद्धा । अमरीकाने इन दोनोको गँवा दिया है—और, इनका उसे कुछ पता भी नहीं । क्या आप ब्रह्मचर्यके अर्थका स्पष्टीकरण कर सकते है ? मुझसे इसके बारे-मे पूछा गया है । हालाकि मेरे मनमे इसकी कुछ कल्पना तो है, लेकिन वह इतनी निश्चित नही है कि मै दूसरोको समझानेका प्रयत्न करू ।"

पाठक और पाठिकाए इस साक्षीका जो-कुछ मूल्य आके वह आक सकते है । मगर मै कहता हू कि सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोका प्रयोग

करनेके विरुद्ध ऐसी साक्षी उन लोगोकी साक्षीसे कही ज्यादा महत्वपूर्ण है जो इनके प्रयोगसे फायदा उठानेका दावा करते है। इसका कारण स्पष्ट है। इससे बच्चोकी उत्पत्ति रुकती है, इस रूपमे तो इसके फायदेसे कोई इन्कार नही करता। कहा सिर्फ यह जाता है कि इसके प्रयोगसे जो नैतिक हानि होती है वह बेहिसाब है। कुमारी सिम्पसनने हमे ऐसी हानिका माप बताया है।

अब रही ब्रह्मचर्यके अर्थकी बात। सो उसका मूलार्थ इस प्रकार बताया जा सकता है—वह आचरण कि जिससे कोई व्यक्ति ब्रह्म या परमात्माके सम्पर्कमे आता है।

इस आचरणमे सब इन्द्रियोका सम्पूर्ण सयम शामिल है। इस शब्दका यही सच्चा और सुसगत अर्थ है।

वैसे आम तौरपर इसका अर्थ सिर्फ जननेन्द्रियका शारीरिक संयम ही लगाया जाने लगा है। इस सकीर्ण अर्थने ब्रह्मचर्यको हलका करके उसके आचरणको प्राय. बिलकुल असभव कर दिया है। जननेन्द्रियपर तबतक सयम नही हो सकता जबतक कि सभी इन्द्रियोका उपयुक्त सयम न हो। क्योकि वे सब अन्योन्याश्रित है। मन भी इन्द्रियोमे ही शामिल है। जबतक मनपर सयम न हो, खाली शारीरिक सयम चाहे कुछ समयके लिए प्राप्त भी हो जाय, पर उससे कुछ हो नही सकता।

'हरिजन सेवक',
२०-६-३६

: ३ :

लड़कीको क्या चाहिए

एक महिला लिखती है

"आपका 'ऐसी मुसीबत जिससे बच सकते है' शीर्षक लेख मुझे अधूरा-सा लगता है। माता-पिता अपनी लडकियोकी शादी करनेका क्यो आग्रह रखते है और फिर उसके लिए ऐसी अकथनीय मुसीबते क्यो उठाते है ? अगर वे अपनी लडकियोको भी लडकोकी तरह ऐसी शिक्षा देने लग जाय जिससे कि वे भी स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी आजीविका कमाने लगे तो उन्हे लडकियोके लिए वर तलाश करनेमे इतना कष्ट और चिन्ताए न करनी पडे। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब लडकियोको अपनी मानसिक उन्नति करनेका अवकाश मिल जाता है और वे इज्जतके साथ अपना भरण-पोषण करने लायक हो जाती है, तब अगर वे शादी करना चाहती है तो उन्हे अपने लायक वर तलाशनेमे कोई कठिनाई नही उठानी पडती। मेरे कहनेका कोई यह अर्थ न लगाए कि लडकियोको आजकलकी तथोक्त उच्च शिक्षा देनेकी मै सिफारिश कर रही हू। मै जानती हू कि वह तो हजारो लडकियोके लिए अप्राप्य ही है। मेरा तो मतलब यह है कि लडकियोको उपयोगी ज्ञानके साथ-साथ किसी ऐसे धन्धेकी शिक्षा भी दी जाय जिससे उन्हे यह पूरा विश्वास हो जाय कि वे अपने माता-पिता या पतिकी निरी आश्रिता बनकर नही रहेगी, बल्कि अगर मौका आया तो ससारमे अपने पैरोपर भी खडी रह सकती है। हा, मै तो ऐसी भी कुछ लडकियोको जानती हू, जो पति-द्वारा छोड दिये जानेपर आज फिर अपने पतियोके साथ सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही है, क्योकि परित्यक्ताकी दशामे उन्हे सद्भाग्यसे स्वाश्रयी बनने तथा अन्य उपयोगी

शिक्षा पानेका अवसर मिल गया था। विवाहयोग्य कन्याओके माता-पिताओकी कठिनाइयोका विचार करते समय, आप सवालके इस पहलू-पर भी जोर दे तो बडा अच्छा हो।"

पत्र-भेजनेवाली महिलाने जो भाव प्रकट किये है, उनका मै हृदयसे समर्थन करता हू। मुझे तो एक ऐसे पिताके मामलेपर विचार करना था, जिसने अपने-आपको बडी मुसीबतमे डाल लिया था—इसलिए नही कि उनकी लडकी अयोग्य थी, बल्कि इसलिए कि वे और शायद उनकी लड़की भी वरका चुनाव अपनी जातिके छोटे-से दायरेमे ही करना चाहते थे। इस मामलेमे तो लडकीका सुयोग्य होना ही एक विघ्न साबित हो रहा था। अगर लडकी निरक्षर होती तो हर किसी युवकके अनुकूल अपनेको बना लेती। पर चूकि खुद सुशिक्षिता थी, इसलिए स्वभावत. उसके लिए उतने ही सुयोग्य वरकी भी जरूरत थी। समाजमे दुर्भाग्यवश, किसी लडकीसे शादी करनेके लिए कीमतके बतौर रुपये मागना नीचता और निश्चित रूपसे बुराई नही मानते। कालेजकी अग्रेजी शिक्षाको खामखा इतना अधिक कृत्रिम महत्व प्रदान कर दिया गया है। उसमे तो न जाने कितने पाप छिपे रहते है। जिन वर्गोके युवकोमे लडकियोसे शादी करनेके प्रस्ताव मजूर करनेपर कीमते मागी जाती है, बडा अच्छा होता अगर उनमे सुयो-ग्यताकी परिभाषा बनानेमे कुछ अधिक अक्लसे काम लिया जाता। ऐसा होता तो लडकियोके लिए वर ढूढनेकी चिन्ता अगर पूरी तरह न भी दूर होती तो कम-से-कम काफी घट जाती। इसलिए पाठकोसे मै सिफारिश करूगा कि वे इन पत्र-प्रेषक महिलाके विचारोपर जरूर गौर करे। पर साथ ही, जातपातकी इन महान् हानिकर बाडोको भी तोडनेकी उन्हे मै जोरोसे सलाह दूगा। ये बाडे तोडनेपर चुनावके लिए एक विशाल क्षेत्र खुल जायगा और यह पैसे ठहरानेकी बुराई बहुत हदतक अपने-आप कम हो जायगी।

'हरिजन सेवक',

५-९-३६

: ४ :

चरित्र-बल आवश्यक है

अच्छी तरह हरिजन-सेवा करनेके लिए, यही नही बल्कि गरीब, अनाथ, असहायोकी सब तरहकी सेवाके लिए यह ज़रूरी है कि लोक-सेवक-का अपना चरित्र शुद्ध और पवित्र हो। चरित्रबल अगर न हो, तो ऊची-से-ऊची बौद्धिक और व्यवस्था-सम्बन्धी योग्यताकी भी कोई कीमत नही। वह तो उलटे अडचन भी बन सकती है, जबकि शुद्ध चरित्रके साथ-साथ ऐसी सेवाका प्रेम भी हो तो उससे आवश्यक बौद्धिक और व्यवस्था-सम्बन्धी योग्यता भी निश्चय ही बढ जायगी या पैदा हो जायगी। हरिजन-सेवामे लगे हुए दो अच्छे प्रसिद्ध कार्यकर्त्ताओकी शोचनीय चरित्र-हीनताके दो अत्यन्त दु:खद उदाहरण मेरे सामने आये है, जिनपरसे कि मै यह बात कह रहा हू। इन दोनोको जो लोग जानते थे वे सब इन्हे शुद्धचरित्रका और सदेहसे परे मानते थे। लेकिन इन दोनोने ऐसा आचरण किया है, जो, जिस पदपर ये आसीन थे, उसके बिलकुल अनुपयुक्त है। इसमे कोई शक नही कि वे अपने हृदयके अधेरे कोनेमे ज़हरीले सापकी तरह छिपी हुई विषय-वासनाके शिकार हुए है। लेकिन हम तो मर्त्यलोकके साधारण जीव ठहरे, दूसरोके मनमे क्या है यह हम नही जान सकते। हम तो मनुष्योको सिर्फ उनके उन कामोसे ही जान सकते है, और हमे उन्हीपरसे उनके बारेमे कुछ निर्णय करना चाहिए, जिन्हे कि हम देख और पूरा कर सकते है। ये दो मामले तो ऐसे हुए है कि उनके लिए हरिजन-सेवक-सघके कार्य-कर्त्ता बने रहना असम्भव हो गया है। यह कोई सज़ा नही है; लेकिन उनके खुदके लिए भी न सही, तो भी हरिजन-सेवक-सघ और उसके उद्देश्य-की रक्षाके लिए उनका उससे हट जाना ज़रूरी है। मै यह बात बडी अच्छी

तरह कह सकता हूं कि सघको उनके खिलाफ कोई कार्रवाई करनेकी आवश्यकता नही होगी, क्योकि वे कार्यकर्त्ता सघसे, बल्कि मै आशा करता हू कि सार्वजनिक प्रवृत्तिसे, खुद ही हट जायगे। यह ठीक है कि सेवा करनकी किसीको मनाही नही है। जिस आदमीका भयंकर रूपसे नैतिक पतन हो गया हो, अगर फिर भी वह सावधान हो जाय, तो वह जहा भी चाहे सेवा कर सकता है। खुद उसका सुधर जाना ही कुछ कम बात नही है, वह भी समाजकी एक सेवा ही होगी। लेकिन ऐसी सेवा, जो खुद-ब-खुद होती है और प्राय. गुप्त रूपसे की जाती है, उससे बिलकुल भिन्न है, जो किसी सस्थामे रहकर उसकी सब सुविधाओका उपयोग करते हुए की जाती है। ऐसे सार्वजनिक जीवनमे फिरसे प्रवेश पानेके लिए तो यह बहुत जरूरी है कि सर्वसाधारणका पूरा विश्वास फिरसे प्राप्त किया जाय।

आजकलके सार्वजनिक जीवनमे एक ऐसी प्रवृत्ति है कि जबतक कोई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता अपने जिम्मेके किसी व्यवस्थाकार्यको अच्छी तरह पूरा करता है, उसके चरित्रके सम्बन्धमे कोई ध्यान नही दिया जाता। कहा यह जाता है कि चरित्रपर ध्यान देना हरेकका अपना निजी काम है, हमे उसमे दखल देनेकी कोई जरूरत नही, हालाकि मै जानता हू कि यह बात अक्सर कही जाती है, लेकिन इस विचारको ग्रहण करना तो दूर, मै इसे ठीक भी कभी नही समझ सका हू। जिन सस्थाओने व्यक्तियोके निजी चरित्रको विशेष महत्त्व नही दिया, उनमे उससे कैसे-कैसे भयकर परिणाम सामने आये, इसका मुझे पता है। बावजूद इसके पाठकोको यह जान लेना ज़रूरी है कि इस समय मै जो बात कह रहा हू वह सिर्फ हरिजन-सेवक-सघ जैसी उन सस्थाओके ही बारेमे कह रहा हू, जो करोडों मूक लोगोके हितकी सरक्षक बनना चाहती है। मगर मुझे इसमे कोई शक नही है कि ऐसी किसी भी सेवाके लिए शुद्ध और निष्कलंक चरित्रका होना अनिवार्य रूपसे आवश्यक है। हरिजनसेवा अथवा खादी या ग्रामोद्योगके काममे लगे हुए कार्यकर्त्ताओके लिए तो उन बिलकुल सीधे-सादे, निर्दोष और अज्ञान स्त्री-पुरुषोके सम्पर्कमे आना बहुत ज़रूरी है, जो बौद्धिक दृष्टिसे संभवतः बच्चोके समान होगे। अगर उनमे चरित्रबल

न होगा तो अन्तमे जाकर ज़रूर उनका पतन होगा और उसके फलस्व
जिस उद्देश्यके लिए वे काम कर रहे है, उसे उस कार्यक्षेत्रमे और भी ध
लगेगा, जिसमे कि सर्वसाधारण उनसे परिचित है। ऐसे मामलोके अनु
से प्रेरित होकर ही मै यह बात लिख रहा हू। यह प्रसन्नताकी बात है
ऐसी सेवामे जितने लोग लगे हुए है उनकी सख्याके लिहाजसे ऐसे इ
दुक्के ही है। लेकिन बीच-बीचमे ऐसे मामले प्राय. होते रहते है। इस
जो सस्थाए और कार्यकर्त्ता ऐसे सेवा-कार्योमे लगे हुए है, उन्हे सार्वज
रूपमे सावधान करने और चेतावनी देनेकी ज़रूरत है। कार्यकर्त्ता
इसके लिए जितने भी अधिक सतर्क और सावधान रहे उतना ही कम

'हरिजन सेवक',
७-११-३६

एक ही शत्रु

मनुष्यमात्रका एक ही शत्रु है, एक ही मित्र है; और वह है आप खुद ही। यह मेरा वचन नही, सर्वशास्त्रोंका है। जब मनुष्य अपने-आपको धोखा देता है, तब वह आप अपना शत्रु वन जाता है। जब वह अपने अतरमे रहनेवाले परमेश्वरकी गोदमे अपने-आपको छोड देता है, तब वह खुद अपना मित्र बन जाता है। यह लिखनेका प्रयोजन है चरित्रपतनके वे दोनों मामले, जिनका कि मैने उल्लेख किया है और मेरी दृष्टिमे आनेवाले इसी प्रकारके और भी छोटे-मोटे किस्से। इन मामलोमे मै ज्यो-ज्यों गहरा उतरता जाता हू, त्यो-त्यो देखता हू कि उन व्यक्तियोने अपने-आपको धोखा दे रखा है। मेरी जाच-पड़तालका परिणाम क्या आता है, यह तो आगे मालूम होगा।

दोष तो हम सभी करते है। लेकिन जब हम दोषमे से निर्दोषता सिद्ध करनेका प्रयत्न करते है, तब हम और अधिक नीचे गिर जाते है।

एक पुरुषको दो स्त्रिया भाईके समान समझती हैं, तपस्वीके रूपमे, शुद्ध सेवकके रूपमे उसे देखती है, शिक्षक या गुरु मानती है; उन्हीके साथ उसका पतन होता है, और पीछे उनमे से एकके साथ वह शादी कर लेता है। इसे मै अपना व्यभिचार छिपानेकी युक्ति मानता हूं। इस प्रकारके सम्बन्धको विवाहका नाम देना विवाहकी मानो फजीहत करना है। मैं जानता हू कि आजकल ऐसा बहुत जगह हो रहा है। पापका गुणाकार होनेसे उसकी वृद्धि होती है, वह कुछ पुण्यरूप नही कहा जा सकता। सारा जगत पाप करता है इसलिए वह रूढ भले ही हो जाय, पर अगर पाप होगा तो वह पाप ही रहेगा, ऐसा नियम पाप समझे जानेवाले सभी कृत्योको लागू नही होगा, यह मैं जानता हूं। मेरी दृष्टिमे तो जो वस्तु

परपरासे पाप मानी जा रही है और जिसे आज समाज पाप मानता है, उस प्रकारके ये किस्से है ।

शिक्षकोके अपनी शिष्याओके साथ गुप्त सम्बन्ध हो जाय, और पीछे उन सम्बन्धोमे से किसी एकको विवह का रूप दे दिया जाय, तो इससे ऐसा सम्बन्ध पवित्र नही वन सकता । जिस प्रकार सगे भाई-बहनके बीचमे पति-पत्नीका सम्बन्ध सभव नही, उसी प्रकार शिक्षक और शिष्याके बीच होना चाहिए, यह मेरा दृढ अभिप्राय है। अगर इस सुवर्ण नियमका पूर्ण पालन न हो, तो परिणाम यह होगा कि शिक्षण-सस्था टूट जायगी; कोई लडकी शिक्षकोसे सुरक्षित न रह सकेगी । शिक्षकका पद ऐसा है कि लडकिया और लडके उसके नीचे निरतर रहते है, शिक्षकके वचनको वेदका वचन मानते है । अत. शिक्षक जो स्वतत्रता लेता है, उसके विषयमे उन्हे कोई शका नही होती । इसलिए जहा शरीरसे भिन्न आत्माका सम्मान है, वहा इस प्रकारके सम्बन्ध असह्य समझे जाते है, और समझे जाने चाहिए । जब ऐसा कोई सम्बन्ध 'हरिजन-सेवक-सघ' जैसी सस्थामे हो जाय, तब उससे होनेवाला बुरा असर बहुत दूरतक पहुचता है और उस कार्यको हानि पहुचाता है ।

कुछ लोगोको प्रकट रूपमे पाप स्वीकार करते सकोच होता है, कुछको स्वीकार करते हुए झिझक होती है । धर्म तो पुकार-पुकार कर कहता है अपने किये हुए राईके समान दिखनेवाले दोपोको पर्वतके समान देखो । यदि हृदयसे उन्हे पूर्णत. स्वीकार करोगे, तो जैसे मैला कपडा मैल दूर हो जानेसे ही शुद्ध होता और शुद्ध दीखता है, उसी तरह तुम भी शुद्ध हो जाओगे और दिखोगे । और तुम्हारा प्रकट स्वीकार और पश्चात्ताप भविष्यमे पापसे बचनेमे ढालरूप सिद्ध होगा ।

'हरिजन सेवक',
५-१२-३६

: ६ :

दृश्य तथा अदृश्य दोष

एक खादीसेवक लिखते है :

"आप कार्यकर्त्ताओके सदाचारपर बहुत ज़ोर देते आ रहे है। आपने अधिकतर कामवासनासे बचनेको ही बहुत महत्व दिया है, जो कि ठीक भी है। जब कभी इस विषयमे किसी कार्यकर्त्ताकी गिरावटका उदाहरण आपके सामने आया है, आपके हृदयको सख्त चोट लगी है और आपने उसका उल्लेख 'हरिजन' मे भी किया है। लेकिन क्या सदाचारका अर्थ केवल परस्त्रीके प्रति कामवासना न रखना ही है? क्या झूठ बोलना, ईर्ष्या व द्वेष रखना सदाचारके विरुद्ध नही है? चूकि हमारा समाज भी इन बातोको इतनी घृणासे नही देखता, जितनी घृणासे वह परस्त्रीके साथ सबधको देखता है; इसलिए शायद आप भी इन बातोपर अधिक ज़ोर नही देते। पर ये बुराइया उससे कम नही, बल्कि बाज हालातमे तो ये कही अधिक हानिकारक होती है।

"वैसे तो पापोकी तुलना ही क्या! परन्तु हमारे आजकलके समाजमे तो इन चीजोको अधिक बुरी निगाहसे नही देखा जाता। जब एक ज़िम्मेदार मुख्य कार्यकर्त्ता एक दिनमे चार-पाँच सफेद झूठ बोले और किसीपर झूठे इल्ज़ाम लगाये, तो क्या हृदय विदीर्ण नही हो जाता? क्या इससे अपनेको व समाजको वह हानि नही पहुँचाता?"

प्रश्न यह अच्छा है। दोषोमे ऊँच-नीचकी भावना नही होनी चाहिए। जहाँतक मेरा संबध है, मै तो असत्यको सब पापोकी जड़ मानता हूँ और जिस सस्थामे झूठको बर्दाश्त किया जाता है, वह सस्था कभी समाज-सेवा नही कर सकती; न उसकी हस्ती भी ज़्यादा दिनो-

तक रह सकती है। लेकिन मनुष्य झूठका प्रयोग जब करता है, तब उस झूठपर अनेक प्रकारके रग चढते हैं। वह एक प्रकारका व्यभिचार है। झूठके ही रूपमे झूठ शायद ही प्रकट होता है। व्यभिचारी तीन दोष करता है। झूठका दोष तो करता ही है, क्योकि उसके पापको छुपाता है। व्यभिचारको दोष मानता ही है और दूसरे व्यक्तिका भी पतन करता है।

जितने और दोषोका वर्णन लेखकने किया है, वे सब गुणवाचक है। इनको हम न देख सकते है, न शीघ्र पकड सकते है। जब वे मूर्तिमत होते है, अर्थात् कार्यमे परिणत होते है, तभी उनका विवेचन हो सकता है, उनके दूर करनेका उपाय भी तभी सभावित होता है। एक मनुष्य किसीसे द्वेष करता है। उसका कोई परिणाम जबतक नही आता, तबतक न उसकी कोई टीका की जाती है न द्वेषी मनुष्यका सुधार किया जा सकता है। लेकिन जब द्वेषवश कोई किसीको हानि पहुचाता है, तब उसकी टीका हो सकती है और वह दडके योग्य भी बनता है। बात यह है कि समाजमे और कानूनमे भी व्यभिचार काफी बर्दाश्त किया जाता है, अगरचे व्यभिचारसे समाजको हानि अधिक पहुचती है। चोरको सख्त सज़ा मिलती है और चोर बेचारा समाजसे बहिष्कृत हो जाता है। और व्यभिचारी सफेदपोश सब जगह देखनेमे आते है, उन्हे दड तो मिलता ही नही। कानून उनकी उपेक्षा करता है। मेरा विश्वास है कि करोडोकी सेवा करनेवाली सस्थामे जैसे चोरोको, गुडोको स्थान होना ही नही चाहिए, ठीक इसी तरह व्यभिचारियोको भी नही होना चाहिए।

'हरिजन सेवक',
२७-२-३७

: ७ :

एक युवककी दुविधा

एक विद्यार्थी पूछता है :

"मैट्रिक पास या कालेजमे पढनेवाला युवक अगर दुर्भाग्यसे दो-तीन बच्चोका पिता हो गया हो, तो उसे अपनी आजीविका प्राप्त करनेके लिए क्या करना चाहिए ? और उसकी इच्छाके विरुद्ध पच्चीस वरस पहले ही उसकी शादी करदी जाय तो उसे, उस हालतमे, क्या करना चाहिए ?"

मुझे तो सीधे-से-सीधा जवाव यह सूझता है कि जो विद्यार्थी अपनी स्त्री और बच्चोका पोषण करनेके लिए क्या करना चाहिए, यह न जानता हो, अथवा जो अपनी इच्छाके विरुद्ध शादी करता हो, उसकी पढाई व्यर्थ है। लेकिन इस विद्यार्थीके लिए तो वह भूतकालका इतिहास-मात्र है। इस विद्यार्थीको तो ऐसे उत्तरकी जरूरत है, जो उसको सहायक हो सके। उसने यह नही बताया कि उसकी जरूरते कितनी है ? वह अगर मैट्रिक पास है तो अपनी कीमत ज्यादा न आके और साधारण मजदूरोकी श्रेणीमे अपनेको रक्खेगा तो उसे अपनी आजीविका प्राप्त करनेमे कोई कठिनाई नही आवेगी। उसकी बुद्धि उसके हाथ-पैरको मदद करेगी, और इस कारण जिन मजदूरोको अपनी बुद्धिका विकास करनेका मौका नही मिला है, उनकी अपेक्षा वह अच्छा काम कर सकेगा। इसका यह अर्थ नही है कि जो मजदूर अग्रेजी नही पढा वह मूर्ख होता है। दुर्भाग्यसे मजदूरोको उनकी बुद्धिके विकासमे कभी मदद नही दी गई, और जो स्कूलोमे पढते है, उनकी बुद्धि कुछ तो विकसित होती ही है, यद्यपि उनके सामने जो विघ्न-वाधाए आती है वे इस जगतके दूसरे किसी भागमे देखनेको नही मिलती। इस मानसिक विकासका वातावरण स्कूल-कालेजमे पैदा हुए झूठी प्रतिष्ठाके खयालसे वरावर हो जाता है। इस कारण विद्यार्थी यह मानने लगते है कि कुर्सी-

मेज़पर बैठकर ही वे आजीविका प्राप्त कर सकते है । अत इस प्रश्नकर्ताको तो शरीर-श्रमका गौरव समझकर इसी क्षेत्रमेंसे अपने परिवारके लिए आजीविका प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए ।

और फिर उसकी पत्नी भी अवकाशके समयका उपयोग करके परिवारकी आमदनीको क्यो न वढावे ? इसी प्रकार अगर लडके भी कुछ काम करने जैसे हो तो उनको भी किसी उत्पादक काममे लगा देना चाहिए । पुस्तकोके पढनेसे ही बुद्धिका विकास होता है, यह खयाल गलत है । इसको दिमागमेंसे निकालकर यह सच्चा खयाल मनमे जमाना चाहिए कि शास्त्रीय रीतिसे कारीगरका काम सीखनेसे मनका विकास सबसे जल्दी होता है । हाथको या औज़ारको किस प्रकार मोडना या घुमाना पडता है, यह कदम-कदमपर उम्मीदवारको जब सिखाया जाता है तब उसके मनके सच्चे विकासकी शुरुआत होती है । विद्यार्थी अगर साधारण मजदूरोकी श्रेणीमे अपनेको खडा कर ले तो उनकी बेकारीका प्रश्न बिना मेहनतके हल हो सकता है ।

अपनी इच्छाके विरुद्ध विवाह करनके विषयमे तो मै इतना ही कह सकता हू कि अपनी इच्छाके खिलाफ जबरदस्ती किये जानेवाले विवाहका विरोध करने जितना सकल्प-बल तो विद्यार्थियोको जरूर प्राप्त करना चाहिए । विद्यार्थियोको अपने बलपर खडा रहने और अपनी इच्छाके विरुद्ध कोई भी बात—खासकर ब्याह-शादी—जबरदस्ती किय जानेके हरेक प्रयत्नका विरोध करनेकी कला सीखनी चाहिए ।

'हरिजन सेवक',
२६-१०-३७

: ८ :

साहित्यमें गंदगी

त्रावणकोरके एक हाईस्कूलके हेडमास्टर लिखते है :

"यह तो आप जानते ही है कि त्रावणकोरका राजनैतिक वातावरण इस समय बहुत दु खपूर्ण हो गया है। हाईस्कूल तकके छात्र हडताल कर रहे है और दूसरोको स्कूलमे जानेसे रोक रहे है। इन लोगोमे कुछ ऐसी भावना काम कर रही है कि आप विद्यार्थियोकी, और छात्रोकी हडतालके पक्षमें है। मै यह पसद करूगा कि इस विषयपर आप अपनी राय आम विद्यार्थियोको लिखनेकी कृपा करे। इससे स्थिति साफ हो जायगी।"

मेरा खयाल है कि विद्यार्थियो और छात्रोकी हडतालोके खिलाफ मैंने काफी मौकोपर लिखा है, बहुत ही कम प्रसग मैंने छोडे होगे। मै यह मानता हू कि विद्यार्थियोका राजनैतिक प्रदर्शनो और दलगत राजनीतिमे हिस्सा लेना बिलकुल गलत चीज़ है। इस किस्मका जोश उनके गभीर अध्ययनमे हस्तक्षेप करता है, और उन्हे होनहार नागरिकोके रूपमे काम करनेके अयोग्य बना देता है। अलबत्ता, एक चीज़ ऐसी जरूर है कि जिसके लिए विद्यार्थियो या छात्रोका हडताल करना उनका फर्ज़ है। लाहौर-के 'यूथ्स वेलफेयर असोसियेशन' के अवैतनिक मत्रीका मुझे एक पत्र मिला है। इस पत्रमे अश्लीलता और कामुकतासे भरे काफी नमूने पाठ्य पुस्तकोसे उद्धृत किये गए है, जिन्हे विभिन्न विश्वविद्यालयोने अपने पाठ्यक्रमोमे रक्खा है। यह ऐसे गदे अवतरण है कि पढनेमे घिन मालूम होती है। हालाकि यह पाठ्यक्रमकी पुस्तकोमेसे लिये गए है। मैंने जितना भी साहित्य पढा है, उसमें इतनी गदगी कभी मेरी नज़रसे नही गुज़री। इन अवतरणोको निष्पक्ष रीतिसे सस्कृत, फारसी और हिन्दीके कवियोकी रचनाओमेसे लिया गया है। मेरा ध्यान इस ओर सबसे पहले वर्धाके महिला-आश्रमकी लड़कियोंने

आकर्षित किया था, और हालमे मेरी पुत्रवधूने, जोकि देहरादूनके कन्या-गुरुकुलमे पढ रही है, इन अश्लील कविताओकी तरफ मेरा ध्यान खीचा है। उसकी कुछ पाठ्यपुस्तकोमे जैसी अश्लीलता भरी हुई है, वैसी कभी उसकी नजरसे नही गुजरी थी। उसने मेरी इसमे सहायता चाही। मै हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिकारियोसे इस सबधमे लिखा-पढी कर रहा हू। पर बडी-बडी सस्थाए धीरे-धीरे ही कदम आगे रखती है। लेखको और प्रकाशकोका स्वार्थ सुधार नही होने देता, उनका एकाधिकार आडे आ जाता है। साहित्यकी वेदी तो खास धूपकी अधिकारिणी है। मेरी पुत्रवधूने मुझे यह सुझाया और मै तुरन्त उसके साथ सहमत हो गया कि वह अपनी परीक्षामे अनुत्तीर्ण होनेकी जोखिम ले लेगी, पर अश्लील और कामुकता-पूर्ण साहित्य नही पढेगी। उसकी यह एक नर्म-सी हडताल है, पर है उसके लिए यह बिलकुल हितकर और पूरी प्रभावकारक। पर यह एक ऐसा प्रसग है जो विद्यार्थियो या छात्रो द्वारा की हुई हडतालको न सिर्फ उचित ही ठहराता है, बल्कि मेरी रायमे, उनका यह फर्ज हो जाता है कि ऐसा साहित्य अगर उनके ऊपर जबरन लादा जाय तो उसके खिलाफ वे विद्रोह भी करे।

किसीको चाहे जो पढनेकी स्वतत्रता देना, यह एक बात है। पर यह बिलकुल अलग बात है कि युवा लडके-लडकियोको ऐसे साहित्यका परिचय कराया जाय, जिससे निश्चय ही उनके काम-विकारोको उत्ते-जन मिलता हो, और ऐसी चीजोके बारेमे वाहियात कुतूहल मनमे पैदा हो कि जिनका ज्ञान आगे चलकर उचित समयपर और जरूरी हदतक उन्हे जरूर हो जायगा। बुरा साहित्य तब कही अधिक हानि पहुचाता है जबकि वह निर्दोष साहित्यके रूपमे हमारे सामने आता है और उसपर बड़े-बडे विश्वविद्यालयोके प्रकाशनकी छाप लगी होती है।

विद्यार्थियोकी शातिपूर्ण हडताल एक ऐसा तरीका है, जिससे अत्या-वश्यक सुधार जल्द-से-जल्द हो सकता है। ऐसी हडतालोमे कोई शोरगुल या उपद्रव नही होना चाहिए। सिर्फ इतना काफी होगा कि जिन परीक्षाओमे उत्तीर्ण होनेके लिए आपत्तिजनक साहित्यका अध्ययन आवश्यक हो, उनका

परीक्षार्थी बहिष्कार कर दे। अश्लीलताके विरुद्ध विद्रोह करना हरेक शुद्ध मनोवृत्तिवाले विद्यार्थीका कर्तव्य है।

उक्त असोसियेशनने मुझे लिखा है कि मै कांग्रेसी मन्त्रियोसे यह अपील करू कि वे पाठ्यक्रममेंसे ऐसी पुस्तको या उन अशोको जो आपत्तिजनक है, हटवा देनेके लिए जो भी उपाय सभव हो, वह करे। मै इस लेख द्वारा सहर्ष ऐसी अपील न केवल कांग्रेसी मन्त्रियो, बल्कि सभी प्रातोके शिक्षा-मन्त्रियोसे करता हू। निश्चय ही, विद्यार्थियोकी बुद्धिके स्वस्थ विकासमे तो सभी एक-सी दिलचस्पी रखते है।

'हरिजन सेवक',
१५-१०-३८

: ९ :

आर्यसमाज और गन्दा साहित्य

कन्यागुरुकुल देहरादूनके श्री धर्मदेव शास्त्रीने और उनके बाद गुरुकुल कागडीके आचार्य अभयदेवने मुझे लिखा है कि मैने अपने 'साहित्यमे गन्दगी' शीर्षक लेखमे जो अपनी पुत्रवधूका उल्लेख किया है, जो कन्या गुरुकुलमे अध्ययन कर रही है और जिसने अपनी परीक्षामे की कुछ पाठ्य पुस्तकोकी गन्दगीके विषयमे लिखा था, उसका कही-कही यह अर्थ लगाया गया है कि आर्यसमाजके अधिकारी इस प्रकारके गन्दे साहित्यको प्रोत्साहन देते है। इन दोनो ही सज्जनोने इसका जोरदार खडन किया है। आचार्य अभयदेवने मुझे लिखा है कि गुरुकुल तो इस विषयमे इतना सतर्क रहा है कि कालिदास-जैसे महाकवियोकी रचनाओके लिए भी उसका यह आग्रह है कि शकुन्तला जैसी प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियोके ऐसे सस्करणोका ही अध्ययन उसके विद्यार्थी करे, जिनमे से अश्लीलताके अश बिलकुल निकाल दिये गए हो। यह तो बादकी बात है कि गुरुकुलने अपने विद्यार्थियोको साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षाओमे बैठनेकी अनुमति दी। सम्मेलन ऐसी पुस्तकोको अपने पाठ्यक्रममे रखना बर्दाश्त कर रहा है, जिनमे गन्दे साहित्यको स्थान मिला हुआ है। मै समझता हू कि गुरुकुलके अधिकारियोने सम्मेलनके प्रबन्धकोका ध्यान इस विषयकी ओर आकर्षित किया है और उनसे कहा है कि वे ऐसी पुस्तकोको अपने पाठ्यक्रममे से निकाल दे, जिनमे आपत्तिजनक अंश हो। मुझे आशा है कि जबतक वे परीक्षार्थियोकी पाठ्य पुस्तकोमे के गन्दे साहित्यके खिलाफ छेडी हुई इस लडाईमे सफलता प्राप्त न कर लेगे, तबतक उन्हे सतोष न होगा।

'हरिजन सेवक',

१९-११-३८

: १० :

मेरा जीवन

'बबई क्रॉनिकल'मे उसके इलाहाबाद-स्थित सवाददाता द्वारा प्रेषित नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित हुआ है :

"गाधीजीके बारेमे कॉमन्स-सभामे जो बाते फैल रही है, उनके सम्बन्धमे बडी चौका देनेवाली खबरे प्रकाशमे आई है। कहा जाता है कि अग्रेज इतिहासकार मि० एडवर्ड टॉमसनने, जो हालहीमे इलाहाबाद आये थे, इग्लैण्डमे फैली हुई विचित्र मनोवृत्तिपर कुछ रोशनी डाली है। मि० टॉमसन यहा कुछ राजनैतिक नेताओसे भी मिले थे, जिनसे उन्होने गाधीजीके सम्वन्धमे कॉमन्स-सभामें फैली हुई इन तीन बातोके सम्बन्धमे कहा बताते है—

"१. गाधीजी ब्रिटिश सरकारके साथ बिला किसी शर्तके सहयोग करना चाहते थे।

"२. गाधीजी अब भी काग्रेसपर प्रभाव डाल सकते है।

"३. गाधीजीके कामुक जीवनके सम्बन्धमे कई कहानिया चली थी। खयाल यह था कि गाधीजी अब वह सत पुरुष नही रहे है।

"मि० टॉमसनका खयाल है कि गाधीजीके 'कामुक जीवन'के सम्बन्धमे जो धारणाए बनी है, वे कुछ मराठी-पत्रोके आधारपर है। उन्होने, जहातक कि मुझे पता है, इसकी चर्चा सर तेजबहादुर सप्रूसे की, जिन्होने इसका खडन किया। बादमे, उन्होने पडित जवाहरलाल नेहरू और श्री पी० एन० सप्रूसे भी यह चर्चा की। उन्होने भी जोरोके साथ इसका खडन किया।

"ऐसा जान पडता है कि इग्लैण्डसे रवाना होनेके पहले मि० टॉमसन कॉमन्स-सभाके कई सदस्योसे मिले थे। इलाहाबादसे रवाना होनेके पहले मि० टॉमसनने नेहरूजीकी सलाहसे, एक पत्र कॉमन्स-सभाके सदस्य मि०

ग्रीनउडके पास भेज दिया था, और इस पत्रमे उन्होने गाधीजीके वारेम फैली हुई कहानियोको बिलकुल निराधार वताया था ।"

मि० टॉमसनने सेगाव आनेकी भी कृपा की थी। उन्होने इस रिपोर्टको मूलत ठीक बताया ।

तीसरे अभियोगके वारेमे कुछ स्पष्टीकरण जरूरी है । दो दिन पहले चार-पाच गुजराती भाइयोने मेरे नाम एक चिट्ठी भेजी, उसके साथ एक समाचार-पत्र था, जिसका एकमात्र उद्देश्य यही जान पडता है कि वह मेरे चरित्रको उतना काला चित्रित करे जितना कि किसी मनुष्यका हो सकता है ।

पत्रके शीर्षकके अनुसार उसका उद्देश्य 'हिन्दुओका सगठन' करना है । मेरे खिलाफ जो इल्जाम लगाये गए है वे अधिकतर मेरे इकरारोके आधार-पर ही है और उन्हे तोडा-मरोडा गया है । दूसरे कई इल्ज़ामोके साथ कामुकताका इल्ज़ाम सबसे वडा है। कहा जाता है कि मेरा 'ब्रह्मचर्य' मेरी कामुकता छिपानेका एक साधन है । बेचारी डॉक्टर सुशीला नैयरको मेरी मालिश करने व मुझे औपचारिक स्नान करानेके अपराधपर जनताकी दृष्टिके सामने घसीटकर लाया गया है । ये दो वाते ऐसी है, जिनके लिए मेरे आस-पासके व्यक्तियोमे वह सवसे अधिक योग्य है। उत्सुक व्यक्तियोकी जानकारीके लिए यह बतला दू कि ये काम तनहाईमें कभी नही किये जाते । ये काम डेढ घटेसे भी अधिक तक होते रहते है, और इनके बीच मै प्राय सो जाता हू, और महादेव, प्यारेलाल या दूसरे साथियोके साथ काम भी करता रहता हू ।

जहातक कि मुझे पता है, इन अभियोगोका आरम्भ अस्पृश्यताके विरुद्ध चलाये गए मेरे आन्दोलनके साथ हुआ । यह उस समयकी बात है, जब कि अस्पृश्यता-निवारण कॉग्रेसके कार्यक्रममे शामिल था । मैंने इस विषयपर सभाओमे बोलना आरम्भ किया था और हरिजनोके सभाओ व आश्रमोमे आनेपर जोर देने लगा था । उस समय कुछ सनातनी, जो मेरी सहायता करते और मुझसे मित्रता रखते थे, मुझसे अलहदा हो गए, और उन्होने मुझे वदनाम करनेका एक आन्दोलन ही आरम्भ कर दिया । उसके वाद एक वहुत प्रभावशाली अग्रेज़ इस आन्दोलनमे शामिल हो गया ।

उसने स्त्रियोके साथ मेरी स्वतन्त्रतापर टीका-टिप्पणी की, और मेरे 'महात्मापन' को पापपूर्ण जीवन बताया। इस आन्दोलनमे एक-दो प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी भी शामिल थे। गोलमेज कान्फ्रेंसके अवसरपर अमरीकन अखबारोने मेरा बडा निर्दय मज़ाक उडाया था। मीराबेन, जो उस समय देखरेख करती थी, इन मजाकोका लक्ष्य बनी। मि० टॉमसन उन सज्जनोसे परिचित है, जो इन इल्ज़ामोके पीछे है, और जहातक मै उनकी बात समझ सका, साबरमती-आश्रमकी सदस्या प्रेमाबहन कटकके नाम लिखी गई मेरी चिट्ठिया भी मेरे पतनको सिद्ध करनेके लिए काममे लाई गई है। प्रेमाबहन एक ग्रेजुएट महिला और योग्य कार्यकर्तृ है। वह ब्रह्मचर्य और इसी प्रकारके दूसरे विषयोपर प्रश्न पूछा करती थी। मै उन्हे पूरे जवाब भेजता था। उन्होने यह सोचकर कि ये जवाब सर्वसाधारणके लिए भी उपयोगी होगे, मेरी इजाजतसे उन्हे प्रकाशित कर दिया। मै उन्हे बिलकुल निर्दोष और पवित्र मानता हूँ।

अभीतक मैने इन इल्जामोको नज़रन्दाज़ किया है; लेकिन मि० टॉमसन की बाते और गुजराती सवाददाताओका आग्रह, जो कहते है कि उन्होने इस तरहकी निन्दाके जो अश भेजे वे तो मेरे बारेमे जो कुछ कहा जा रहा है उसके नमूनेभर है, मुझे उनका खण्डन करनेके लिए बाध्य करते है। मेरे इस जीवनमे कोई गोपनीयता नही है। कमजोरियाँ मुझमे भी है ज़रूर। लेकिन अगर कामुकताकी ओर मेरा रुझान होता, तो मुझमे इतना साहस है कि मै उसको कबूल कर लेता। जब मेरे अन्दर अपनी पत्नीतकके साथ विषय-सम्बन्ध रखनेकी अरुचि काफी बढ गई और इस सम्बन्धमे मैने अपनी काफ़ी परीक्षा कर ली तभी, और अच्छाईके साथ देश-सेवा करनेके लिए, मैने १९०६ मे ब्रह्मचर्यका व्रत लिया था। उसी दिनसे मेरा खुला जीवन शुरू हो गया है। सिर्फ उस अवसरको छोडकर, जिसका कि मैने 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' के अपने लेखोमे उल्लेख किया है, और कभी मै अपनी पत्नी या अन्य स्त्रियोंके साथ दरवाज़ा वन्द करके सोया या रहा होऊँ, ऐसा मुझे याद नही पडता। और वे राते मेरे लिए सचमुच काली राते थी। लेकिन, जैसा कि मैने बार-बार कहा है, अपने वावजूद ईश्वरने मुझे

बचाया है। मुझमे अगर कोई गुण हो तो मै उसके श्रेयका अपने लिए कोई दावा नही करता। मेरे लिए तो सब गुणोका दाता वही तारनहार प्रभु है और उसीने अपनी सेवाके लिए सदा मेरी रक्षा की है।

जिस दिनसे मैने ब्रह्मचर्य शुरू किया, उसी दिनसे हमारी स्वतन्त्रताका आरम्भ हुआ है। मेरी पत्नी मेरे स्वामित्वके अधिकारसे मुक्त हो गई, और मै अपनी उस वासना की दासतासे मुक्त हो गया, जिसकी पूर्ति उसे करनी पडती थी। जिस भावनामे मै अपनी पत्नीके प्रति अनुरक्त था, उस भावनामे और किसी स्त्रीके प्रति मेरा आकर्षण नही रहा है। पतिके रूपमे उसके प्रति मै बहुत वफादार था और अपनी माताके सामने किसी अन्य स्त्रीका दास न बननेकी मैने जो प्रतिज्ञा की थी उसके प्रति भी मै वैसा ही वफादार था। लेकिन जिस तरह मेरे अन्दर ब्रह्मचर्यका उदय हुआ, उसके कारण अदम्य रूपसे स्त्रियोको मै मातृभावसे देखने लगा। स्त्रियाँ मेरे लिए इतनी पवित्र हो गई कि मै उनके प्रति कामुकतापूर्ण प्रेमका खयाल ही नही कर सकता। इसलिए तत्काल हरेक स्त्री मेरे लिए बहन या बेटी-की तरह हो गई। फिनिक्समे मेरे आसपास काफी स्त्रियाँ रहती थी। उनमेंसे कई तो मेरी रिश्तेदार ही थी, जो मेरे कहनेसे दक्षिण अफ्रिका आई थी। दूसरी मेरे साथियो या रिश्तेदारोकी पत्नियाँ थी। वेस्ट-परिवार तथा अन्य अग्रेज भी इन्हीमे थे। वेस्ट-परिवारमे, वेस्ट, उनकी पत्नी और सास इतने व्यक्ति थे। उनकी सास उस छोटी-सी बस्तीकी बूढी दादी बन गई थी।

जैसी कि मेरी आदत है, किसी नई और अच्छी बातको मै अपनेतक ही सीमित नही रख सकता। इसलिए मैने सभी बाशिन्दोको ब्रह्मचर्य ग्रहण करनेके लिए कहा। सभीने उसे पसन्द किया और कुछ यह व्रत लेकर इस आदर्शके प्रति सच्चे भी रहे। पर मेरा ब्रह्मचर्य उसका पालन करनेके लिए बने हुए कट्टर नियमोके बारेमे कुछ नही जानता। मैने तो जब जैसी जरूरत देखी, उसके अनुसार अपने नियम बना लिये। लेकिन मेरा यह विश्वास कभी नही रहा कि ब्रह्मचर्यका उपयुक्त रूपमे पालन करनेके लिए स्त्रियोके किसी भी तरह के ससर्गसे बिलकुल बचना चाहिए। जो

सयम अपने विपरीत वर्गके सब ससर्गसे, फिर वह कितना ही निर्दोष क्यो न हो, बचनेके लिए कहे वह बलात् सयम है, जिसका कोई महत्व नही। सलिए सेवा या कामकाजके लिए स्वाभाविक ससर्गोपर कभी कोई प्रतिबन्ध नही रहा। और मुझे तो दक्षिण अफ्रिकामे अग्रेज व हिन्दुस्तानी अनेक बहनोका विश्वास प्राप्त था। और जब दक्षिण अफ्रिकामे मैने भारतीय बहनोको निष्क्रिय प्रतिरोध-आन्दोलनमे भाग लेनेके लिए निमत्रित किया, तो मुझे लगा कि मै भी उन्हीमेसे एक हू। मुझे इस बातका पता चल गया कि स्त्री-जातिकी सेवाके लिए मै खास तौरसे उपयुक्त हूँ। इस कहानीको (जोकि मेरे लिए बड़ी रोमाचकारी है) सक्षेपमे खत्म करनेके लिए मै कहूगा कि भारत लौटनेपर यहा भी जल्दी ही मै भारतीय स्त्रियोमे हिलमिल गया। मेरे लिए यह एक रुचिकर रहस्योद्घाटन था कि मै उनके हृदयोतक किस आसानीसे पहुच जाता हू। दक्षिण अफ्रिकाकी तरह यहा भी मुसलमान स्त्रियोने मुझसे कभी परदा नही किया। आश्रममे मै स्त्रियोसे घिरा हुआ सोता हूं, क्योकि मेरे साथ वे अपनेको हर तरह सुरक्षित महसूस करती है। मुझे यह भी याद दिला देनी चाहिए कि सेगाव-आश्रममे कोई पोशीदगी नही है।

अगर स्त्रियोके प्रति मेरा कामुकतापूर्ण झुकाव होता तो, अपने जीवनके इस कालमे भी, मुझमे इतना साहस है कि मैने कई पत्नियाँ रख ली होती। गुप्त या खुले स्वतत्र प्रेममे मेरा विश्वास नही है। उन्मुक्त प्रेमको मै तो कुत्तोका प्रेम समझता हू। और गुप्त प्रेममे तो, इसके अलावा, कायरता भी है।

'हरिजन सेवक',
४-११-३६

: ११ :

स्त्री-धर्म क्या है ?

एक बहुत पढी-लिखी बहनका पत्र, कुछ हिस्से निकाल देनेके बाद, यहाँ देता हू :

"आपने अहिंसा और सत्याग्रहके ज़रिए दुनियाको आत्माका गौरव दिखा दिया है। मनुष्यके पशु-स्वभावको जीतनेकी समस्या इन्ही दो शब्दोसे हल हो सकती है।

"उद्योगके ज़रिये शिक्षा एक महान कल्पना ही नही है, बल्कि हम अपने बच्चोको स्वावलम्बी बनाना चाहते है तो शिक्षाका एकमात्र सही तरीका भी यही है। आपहीने यह बात कही है और एक ही वाक्यमे शिक्षाकी सारी विशाल समस्या हल कर दी है। उसकी तफसील तो हालात और तजरुबेसे ही तय हो सकती है।

"मेरी अर्ज़ है कि स्त्रियोका सवाल भी ज़रूर हल कर दे।

"राजाजी कहते है कि हम स्त्रियोका कोई सवाल ही नही है। शायद राजनैतिक मानेमे न हो। कदाचित्, धधेके बारेमे भी कानून द्वारा हमे निश्चिन्त बनाया जा सकता है, अर्थात् सभी पेशे औरत-मर्द सबके लिए समान रूपमे खुले कर दिये जा सकते है।

"मगर फिर भी हम स्त्री है और स्त्रीके गुण-दोष पुरुषसे भिन्न है, इस बातमे अन्तर नही पडता। हमे अपने स्वभावके दोषोको दूर करनेके लिए अहिंसा और सत्याग्रहके अलावा कुछ और सिद्धान्त भी चाहिए।

"पुरुषकी तरह स्त्रीकी आत्मा भी ऊचा उठनेकी कोशिश करती है, मगर जैसे नरको अपनी आक्रमणकारी भावना, काम-वासना और दुःख पहुचानेकी पशु-वृत्ति आदिसे छुटकारा पानेके लिए अहिसा और ब्रह्मचर्यकी ज़रूरत है, ठीक उसी तरह नारीको भी कुछ ऐसे उसूलोकी आवश्यकता है,

जिनसे वह अपने स्वभावके दोप दूर कर सके, क्योकि वे दोप पुरुपके दोपोसे अलग तरहके है और आम तौरपर कहा जाता है कि वे प्रकृतिसे ही स्त्रीके साथ लगे हुए है। स्त्री होनेके कारण ही उसके जो स्वाभाविक गुण-दोष है, उसका जिस तरह लालन-पालन और शिक्षण होता है और उसके लिए जैसा वातावरण पैदा हो जाता है वह सव उसके विरुद्ध पडता है। और ये चीजे, यानी उसका स्वभाव, उसकी तालीम, और उसका वायुमडल, उसके काममे हमेशा खलल डालते, उसका रास्ता रोकते और आमतौर-पर यह कहनेका मौका देते है कि 'आखिर तो औरत ही है।' जव मै कहती हू कि स्त्री होना ही उसके गलेका हार हो गया है, तो मेरा मतलव यही है।

"मेरे खयालसे हमारी समस्या ठीक तौरपर हल हो जाय और अपने सुधारका सही तरीका हमारे हाथ लग जाय तो सहानुभूति और कोमलता आदि जो हमारे स्वाभाविक गुण है, उन्हे वाधक होनेके वजाय हम साधक वना सकती है। जैसा आपने पुरुषो और वच्चोके वारेमे हल वताया है उसी तरह हमारा सुधार भी हमारे ही भीतरसे होना चाहिए।

"मैने स्वभाव, शिक्षा और वातावरणकी वात कही है। अपनी वात साफ समझानेके लिए मै एक मिसाल देती हू।

"कुदरतने औरतको कोमल, नरम-दिल, हमदर्द और वच्चोकी मा वनाया है। इन चीजोका असर उसपर अनजानमे भी वहुत होता है। इसलिए जव उसे कुछ करना पड़ता है तो वह वेहद भावुक हो जाती है। मर्दोके सम्पर्कमे आनेपर वह वडी-वडी गलतिया कर वैठती है। जिस वक्त उसे सख्त रहना चाहिए उस वक्त उसका दिल पिघल जाता है। वह जल्दी ही खुश और नाराज हो जाती है, उसे आसानीसे अपनेपर गर्व हो जाता है और आम तौरपर भोलेपनके काम करती है।

"जव मै आपसे मिलने आई तव, हालाकि उस मुलाकातकी मुझे वड़ी उत्सुकता थी और पहली रात उनका विचार करते-करते मुझे नीद भी नही आई थी, फिर भी जव मै आपके सामने गई और आपने मुझे वैठ जानेको कहा तो मै श्री देसाईकी लम्वी-चौडी पीठकी आड़मे जा वैठी। वहांसे न मै आपकी वात सुन सकती थी और न आपका मुंह देख सकती थी। यह

मेरा कितना भोलापन था ! इतना ही नही, मैने देख लिया कि मै अपनी बात भी नही समझा सकती, मेरी ज़बान ही नही चलती थी । इसकी वजह मै यह समझती हू कि मेरे स्वभावपर भावुकता सवार रहती है और आसानीसे काबूके बाहर हो जाती है । अवश्य ही, यह खास दोष तो उचित तालीमसे निकल जाता, मगर मै कह सकती हू कि सम्भव है, मै और कोई ऐसा ही भोलेपनका काम कर बैठू ।

"मेरी एक सखीने मुझे वे उत्तर दिखाए थे जो उसन राष्ट्रीय योजना-उपसमितिकी स्त्रियोके कामके बारेकी प्रश्नावलीपर लिख भेजे थे। आप ज़रूर जानते होगे कि ये सवाल नम्बरवार होते हैं और कुछ इस तरह-के है : देशके जिस भागमे आप रहती है वहा किस हदतक स्त्रियोको अपने हकसे सम्पत्ति रखने, हासिल करने, उत्तराधिकारमे मिलने, बेचने या दे डालनेका अधिकार है ? जिन अनेक काम-धधोमे अलग-अलग योग्यताकी स्त्रियोको लगानेकी ज़रूरत हो सकती है, उनके लिए स्त्रियोको उचित शिक्षा और तालीम देनेका क्या बन्दोबस्त और सुविधाए है ? वग़ैरह-वग़ैरह ।

"मेरी सखीने प्रश्नोका उत्तर न देकर यह लिखा है : 'यह कहना ज़रा भी सच नही है कि प्राचीनकालमे स्त्रियोको शिक्षा जैसी कोई चीज़ मिलती ही न थी ।' उसने यह भी लिखा है कि 'वैदिक युगमे विवाह होनेपर पत्नीको कुटुम्बमे तुरन्त प्रतिष्ठाका स्थान दिया जाता था और वह अपने पतिके घरकी मालिकन बन जाती थी ।' आदि, आदि । उसने मनुस्मृतिसे प्रमाण भी दिये है ।

"मैने उससे पूछा कि जब सवाल आजके ज़मानेके बारेमे पूछे गए है तो पुरान रीति-रिवाजका हाल लिखनेकी क्या ज़रूरत थी ? वह यह सोचकर कि निबन्धके रूपमे उत्तर बढ़िया रहता है, कुछ मुह-ही-मुहमे कहती रही और फिर तेज़ होकर बोली, 'श्रीमती . . . अमुकका जवाब तो मुझसे भी बुरा है ।'

"मेरी समझसे मेरी सखीकी यह भूल ठीक तालीम न मिलनेके कारण हुई है और तालीम उसे स्त्री होनेके कारण ही नही दी गई । यह तो एक मुहर्रिर भी जानता है कि जब कोई सवाल पूछा जाता है तो उसके जवाब-मे दूसरे ही विषयपर निबन्ध नही लिखना चाहिए ।

"मेरे खयालमे मुझे उदाहरण देते जाने और अपनी बात समझाते रहनेकी ज़रूरत नही है। आपको सब प्रकारकी स्त्रियोका इतना विशाल अनुभव है कि आप जान गए होगे कि मेरा यह कहना सही है या नही कि जिस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तसे स्त्रिया सुधर सकती हैं वही उन्हे मालूम नही है।

"आपने मुझे 'हरिजन' पढ़नेकी सलाह दी थी। मैं शौकसे पढती हूं। मगर अबतक अन्तरात्माके लिए कोई सलाह मेरे देखनेमे नही आई। राष्ट्रीय आज़ादीके लिए कातना और लड़ना तो उस तालीमके कुछ पहलू ही हैं। उनमे समस्याका सारा हल समाया हुआ नही दीखता, क्योकि मैंने ऐसी स्त्रिया देखी है जो कातती और काग्रेसके आदर्शोपर अमल करनेकी कोशिश तो ज़रूर करती है; लेकिन फिर भी वही बड़ी-बड़ी भूले कर बैठती है, जिनका कारण उनका स्त्री होना ही है।

"मैं पुरुषोके जैसी नही बनना चाहती। लेकिन जैसे आपने पुरुषोकी पशु-प्रकृतिके सुधारके लिए अहिंसा सिखाई है, वैसे हमे भी वह पाठ पढ़ा दीजिए जिससे हमारा भोलेपनका दोष दूर हो जाय। कृपा करके बताइए, हम कैसे अपने स्वभावका सदुपयोग करे और अपनी बाधाओको सुविधा बनाले।

"यह स्त्री होनेका भार हमेशा मेरे मनपर रहता है। जब कभी मैं किसीको नाक-भौं सिकोड़कर यह कहते सुनती हू कि 'आखिर स्त्री है' तो मेरी आत्मामे वेदना होती है (अगर आत्मामे भी वेदना हो सकती हो तो)। एक पुरुषसे मैंने इन बातोकी चर्चा की तो वह मेरी हँसी उड़ाकर कहने लगा, 'आपने हमारे मित्रके घर उस बच्चेको देखा था। वह गाड़ी बनाकर खेल रहा था और किटकिट करता जब खभेके सामने पहुचा तो उसके चौतरफ घूमनेके बजाय उसने अपने कन्धोसे धक्का देकर उसे गिरानेकी कोशिश की। वह अपने बाल-स्वभावसे यह समझता था कि मै इसे गिरा दूगा। आपकी बातसे मुझे वह याद आता है। आप जो कहती है वह मनोवैज्ञानिक बात है। आप उसे समझने और सुलझानेका जो प्रयत्न करती है, उसपर मुझे हँसी आती है।'"

मै तो यह समझकर खुश था कि सत्याग्रहकी खोजके साथ स्त्रियोके उद्धार-कार्यमे मेरी निश्चित सहायता शुरू हो गई है। मगर पत्र-लेखिकाकी यह राय है कि स्त्रियोको पुरुषोसे अलग तरहका इलाज चाहिए। अगर ऐसी बात है तो मै नही समझता कि कोई भी पुरुष सही हल निकाल सकेगा। वह कितनी ही कोशिश करे, असफल ही रहेगा, क्योकि प्रकृतिने उसे स्त्रीसे भिन्न बनाया है। जिसके लगती है वही जानता है कि पीडा कहा हो रही है। इस कारण अन्तमे तो स्त्रियोको ही यह तय करनेका अधिकार है कि उन्हे क्या चाहिए। मेरी अपनी राय तो यह है कि जैसे मूलमे स्त्री और पुरुष एक है, ठीक उसी तरह उनकी समस्याका तत्त्व भी असलमे एक ही है। दोनोमे एक ही आत्मा विराजमान है। दोनो एक ही प्रकारका जीवन बिताते है। दोनोकी एक ही भातिकी भावनाए है। दोनो एक दूसरेका पूरक है। एककी असली सहायताके बिना दूसरा जी नही सकता।

मगर किसी-न-किसी तरह अनन्त कालसे स्त्रीपर पुरुषने आधिपत्य रखा है। इस कारण स्त्रीमे अपनेको नीचा समझनेकी मनोवृत्ति आगई है। पुरुषने स्वार्थवश स्त्रीको यह सिखाया है कि वह उससे नीचे दर्जेकी है और स्त्रीने इस शिक्षाको सच्चा मान लिया है। मगर ज्ञानी पुरुषोने उसका दर्जा बराबरका ही माना है।

फिर भी इसमे कोई शक नही कि एक जगह पहुचकर दोनोके काम अलग-अलग हो जाते है। जहा यह बात सही है कि मूलमे दोनो एक है, वहा यह भी उतना ही सच है कि दोनोकी शरीर-रचना एक-दूसरेसे बहुत भिन्न है। इसलिए दोनोका काम भी अलग-अलग ही होना चाहिए। मातृत्वका धर्म ऐसा है जिसे अधिकाश स्त्रिया सदा ही धारण करती रहेगी। मगर उसके लिए जिन गुणोकी आवश्यकता है उनका पुरुषोमे होना जरूरी नही है। वह सहनेवाली है, वह करनेवाला है। वह स्वभावसे घरकी मालिकन है, वह कमानेवाला है। वह कमाईकी रक्षा करती और बाटती है। वह हर मानेमे पालक है। मानवजातिके दुधमुहे बच्चोको पाल-पोसकर बडा करनेकी कला उसीका विशेष धर्म और एकमात्र अधिकार है। वह सभाल न रखे तो मानवजाति नष्ट हो जाय।

मेरी रायमे इसमे स्त्री और पुरुष दोनोका पतन है कि स्त्रीको घर छोडकर घरकी रक्षाके लिए बन्दूक उठानेको कहा या समझाया जाय। यह तो फिरसे जगली बनना और नाशकी शुरुआत करना हुआ। जिस घोडेपर पुरुष सवार होता है उसीपर स्त्री भी चढनेकी कोशिश करती है तो वह दोनोको गिराती है। पुरुष अपनी जीवन-सगिनीसे भय या प्रलोभन दिखाकर उसका खास काम छुडायगा, तो इसका पाप पुरुषके ही सिर होगा। वीरता जितनी वाहरी हमलेसे अपने घरको बचानेमे है, उतनी ही उसे भीतरसे स्वच्छ और व्यवस्थित रखनेमे है।

मैने करोडो किसानोको उनकी स्वाभाविक हालतमे देखा है और छोटे-से सेगावमे रोज देखता हूँ, तो स्त्री और पुरुषके काम, कुदरती बंटवारे-की तरफ मेरा ध्यान जोरके साथ गया है। स्त्रिया लुहार और वढई नही है, मगर खेतोमे स्त्री-पुरुष दोनो काम करते है। अलबत्ता, भारी काम पुरुष ही करते है। स्त्रिया घरोकी देख-रेख और व्यवस्था रखती है। वे कुटुम्बके थोडेसे साधनोमे कुछ वृद्धि जरूर करती है, मगर मुख्य कमाई पुरुष ही करता है।

कामके बटवारेकी वात मान लेनेके बाद, साधारण गुणो और संस्कृतिकी जरूरत करीव-करीब दोनोके लिए एक-सी ही है।

व्यक्तिका सम्बन्ध हो या राष्ट्रका, स्त्री-पुरुषकी महान् समस्याको सुलझानेमे मैने यह सहायता दी है कि जीवनके हर पहलूमे सत्य और अहिंसा-को स्वीकृतिके लिए पेश कर दिया। मैने यह आशा बाध रखी है कि इस काममे निर्विवाद रूपसे स्त्री ही अगुआ बनेगी और मानवीय विकासमे इस तरह अपना योग्य स्थान पाकर वह अपनेको नीचा समझनेकी वृत्ति छोड देगी। ऐसा करनेमे वह सफल हो सकी तो वह दृढतापूर्वक इस नई शिक्षाको माननेसे इन्कार कर देगी कि सव वातोका फैसला और व्यवहार काम-वासनासे ही होता है। मुझे डर है कि मैने कही यह वात जरा भद्दे ढगसे तो नही कह दी। लेकिन मै आशा करता हू कि मेरा अर्थ स्पष्ट है। मुझे मालूम नही कि जो लाखो पुरुप युद्धमे क्रियात्मक भाग ले रहे है उनके मनपर कामदेवका ही भूत सवार है। न अपने खेतोमे साथ-साथ काम करनेवाले

किसानोको उसकी चिन्ता या भार ही सता रहा है। मेरे कहनेका यह मतलब नही है कि जो कामवासना प्रकृतिने ही पुरुष और स्त्री दोनोमे भर दी है उससे ये लोग मुक्त है। मगर इतना तो बिलकुल निश्चित है कि उनके जीवनमे इस चीजकी उतनी प्रधानता नही है जितनी कि उन लोगोके जीवनमे दिखाई देती है, जो आजकलके स्त्री-पुरुप-सम्बन्धी साहित्यमे डूबे हुए है। जब स्त्रीको या पुरुषको जीवनकी कठोर और भयकर सचाईका मुकाबला करना पडता है तो किसीको इन बातोके लिए फुर्सत ही नही मिलती।

—मैंने इस अखबारमे राय दी है कि स्त्री अहिंसाकी मूर्त्ति है। अहिंसाका अर्थ है अनत प्रेम और उसका अर्थ है कष्ट सहनेकी अनत शक्ति। पुरुषकी माता, स्त्रीसे बढकर इस शक्तिका परिचय अधिक-से-अधिक मात्रामे और किससे मिलता है? नौ महीनेतक बच्चेको पेटमे रखकर, उसे अपना रक्त पिलाकर और इसमे जो कष्ट होता है उसीमे आनन्द मानकर वही तो यह परिचय देती है। प्रसूतिकी वेदनासे बढकर और कौन-सी पीडा हो सकती है? मगर वह सतानकी खुशीमे इसे भूल जाती है और फिर रोज-ब-रोज बच्चेको बडा करनेमे जो तकलीफे होती है, वह कौन बर्दाश्त करता है? वह अपना यह प्रेम सारे मानव-समाजको दे डाले और भूल जाय कि वह कभी पुरुषके भोगविलासकी चीज भी हो सकती है, फिर देखे कि उसे पुरुषके बराबर, उसकी माता, जननी और मूक-पथप्रदर्शक बनकर खडे होनेका गौरवपूर्ण दर्जा मिलता है या नही? युद्धमे फँसी हुई दुनिया आज शातिका अमृतपान करनेके लिए तडप रही हैं। यह शाति-कला सिखानेका काम भगवानने स्त्रीको ही दिया है। वह सत्याग्रहमे अगुआ बन सकती है, क्योकि उसके लिए पुस्तकोसे मिलनेवाले ज्ञानकी जरूरत नही होती। उसके लिए तो तगडा दिल चाहिए, जो कष्ट-सहन और श्रद्धासे बनता है।

सासून-अस्पतालमे मेरी मेहरबान दाईने बरसो पहले, जब मै वहा बीमार पडा था, तब एक स्त्रीका किस्सा सुनाया था। उस स्त्रीको एक दुखदायी चीरा लगवाना था, मगर उसने बेहोशीकी दवा सूघनेसे इसलिए इन्कार कर दिया कि उसके पेटमे जो बच्चा था, उसकी जानकी जोखिम न हो। उसके लिए बेहोशीकी दवा अपने बच्चेका प्रेम ही था। उसको

वचानेकी खातिर वह वड़-से-वडा कष्ट सहनेको तैयार थी । स्त्रियोमें ऐसी वीरागनाएं वहुत हो सकती है, इसलिए उन्हे कभी अपने स्त्रीत्वको नीचा नही समझना चाहिए और न पुरुष न होनेपर दु:ख मानना चाहिए । अक्सर जव उस वीरागनाका खयाल आता है तो मुझे स्त्रीके दर्जेपर ईर्ष्या होती है । क्या अच्छा हो कि वह भी इसे पहचाने । स्त्रीको पुरुष-जन्म पानेकी जितनी लालसा हो सकती है उतनी पुरुपको स्त्री-जन्म पानेकी हो सकती है ! मगर यह इच्छा व्यर्थ है । हमे तो भगवानने जिस योनिमे जन्म दिया है और प्रकृतिने हमारा जो धर्म निश्चित कर दिया है उसीमे सुखी रहना चाहिए ।

सेगाव,
१२–२–४०

: १२ :

पुरुष और स्त्रियाँ

प्रश्न—मैं जानना चाहता हूं कि क्या आप पुरुष और स्त्री सत्याग्रहियोका स्वच्छंदता-पूर्वक मिलना-जुलना और उनका एकसाथ काम करना पसन्द करेंगे, अथवा अलग इकाइयोके रूपमें उनका सगठन करना और हरेकके कार्य-क्षेत्रकी स्पष्ट सीमा निर्धारित कर देना ज्यादा अच्छा होगा ? मेरा अनुभव तो यह है कि पहले ढगसे निश्चित रूपसे पर्याप्त परिणाममें अनुशासनहीनता तथा भ्रष्टता पैदा होगी, और ऐसा हुआ भी है। अगर आप मुझसे सहमत है तो इस संभवनीय बुराईका मुकाबला करनेके लिए आप कौन-से नियम सुझाएंगे ?

उत्तर—मै तो अलग इकाइया रखना ही पसन्द करूगा। औरतोके पास औरतोके बीच करनेके लिए काफीसे ज्यादा काम है। हमारा स्त्री-वर्ग बुरी तरह उपेक्षित है और उनके बीच काम करनेके लिए विशुद्ध सच्चाईवाली सैकडो बुद्धिमती स्त्री कार्य-कर्तृयोकी ज़रूरत है। सिद्धातकी दृष्टिसे भी मै स्त्री-पुरुष दोनोके अलग-अलग अपना काम करनमे विश्वास रखता हू। लेकिन इसके लिए कोई कठोर नियम नही बना सकता। दोनोके बीचके सम्बन्धपर विवेकका नियन्त्रण होना चाहिए। दोनोके बीच कोई अन्तराय न होना चाहिए। उनका परस्परका व्यवहार प्राकृतिक और स्वेच्छापूर्ण होना चाहिए।

'हरिजन सेवक',
१-६-४०

: १३ :

एक विधवाकी कठिनाई

प्रश्न—मैं एक बंगाली ब्राह्मण विधवा हूं। अपने रंड़ापेके दिनसे—इन २४ सालोंमे—अपने भोजनके बारेमे कठोर नियमोंका पालन करनेका मुझे अभ्यास है। अपने ही कुटुम्बके बीच भी मुझ विधवाका अपना अलग चौका है और बर्तन भी मेरे अलग है। मै आपके सत्य और अहिंसाके आदर्शमे विश्वास रखती हूं। १९३० से मै आदतन खादी पहनती हूं और नियमित रूपसे कातती हूं। ढाकाके एक हरिजन गांवमे हमारे महिला-समाजने एक हरिजन स्कूल खोल रखा है। मै वहां जाती और हरिजनोंमें शरीक होती हूं; मै अपनी मुसलमान बहनोसे भी खुले तौरपर मिलती-जुलती हूं, जिनके लिए मेरे हृदयमे शुभेच्छा है। लेकिन मै हरिजनो या दूसरे अ-ब्राह्मण जातियोंके साथ खा-पी नही सकती।

क्या मेरी जैसी कट्टर विधवाएं सत्याग्रहियो, निष्क्रिय या सक्रिय, में नहीं भरती हो सकतीं ?

उत्तर—काग्रेस-विधानकी दृष्टिसे भरती होनेका तुम्हे पूरा अधिकार है। तुम अपने अधिकारपर अमल भी कर सकती हो। किन्तु जब तुम मुझसे पूछती हो तो मै तुम्हे भरती होनेसे विरत करूगा। मै जानता हूं कि बगाली विधवाए कितनी बारीकीसे उन नियमोका पालन करती हैं जिन्हे कि प्रथाने उनके लिए नियत कर रखा है। लेकिन जिन विधवाओने अपनेको देशके कामके लिए समर्पित कर दिया है और वह भी अहिंसात्मक रीतिसे, उन्हे किसीके साथ खाने-पीनेमे कोई हिचक नही होनी चाहिए। मै इस बातमे विश्वास नही करता कि लोगोके साथ खानेसे, फिर चाहे वह कोई भी क्यो न हो, आध्यात्मिक उन्नतिमे कोई बाधा पड़ती है। प्रधान चीज तो मनोभाव है। अगर कोई विधवा प्रत्येक कामको सेवाकी भावना-

से करती है, तो उसका भला ही होगा। कोई विधवा खान-पान तथा अन्य नियमोका बडी सावधानीसे पालन करती है, फिर भी यदि वह पवित्र हृदयकी नही है, तो वह सच्ची विधवा नही है। इसे तुम भी जानती हो और मै भी जानता हू कि किसी समाजका नियत्रण करनेके लिए जो नियम होते है, उनका दिखाऊ तौरपर पालन करके कितने ही पाखण्डी अपनेको छिपा लेते है। इसलिए मै तुम्हे सलाह दूगा कि अन्तर्जातीय भोज तथा ऐसी ही बातोपर जो बाधाए हैं, उन्हे आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय प्रगतिमे बाधक समझकर उनकी परवा मत करो और हृदयके सस्कारपर ही ध्यान लगाओ। सत्याग्रह-दलमे मै आत्मतुष्ट आदमियोको नही बल्कि उनको लेना पसन्द करूगा, जिन्होने अपने विवेकसे काम लिया है और जीवनका एक ऐसा मार्ग चुन लिया है जो उनके मस्तिष्क और हृदय दोनोको श्रेयस्कर प्रतीत हुआ है।

'हरिजन सेवक',
　१५-६-४०

: १४ :

गृहस्थ आश्रम

एक बहनने, जो अच्छी कार्यकर्तृ है और जो अधिक अच्छी तरहसे देश-सेवा करनेके उद्देश्यसे अविवाहित रहना चाहती थी, अब अपनी पसंदका साथी पाकर हाल हीमे विवाह कर लिया है। लेकिन उनका विचार है कि ऐसा करके उन्होने गलती की और जो ऊचा आदर्श अपने सामने रखा था उससे गिर गईं। मैंने उनका यह भ्रम दूर करनेकी कोशिश की है। इसमे सदेह नही कि सेवाके लिए बालिकाओका अविवाहित रहना अच्छी बात है। लेकिन लाखोमे से एकाध ही ऐसा कर सकती है। जीवनमे विवाह एक स्वाभाविक चीज है और इसे किसी तरहकी गिरावट समझना भारी भूल है। जब आदमी किसी कामको पतन समझता है तो वह कितना ही प्रयास क्यो न करे, उससे ऊपर उठना अति कठिन हो जाता है। आदर्श यह है कि विवाहको पवित्र माना जाय और विवाहित अवस्थामे आत्म-सयमसे जीवन बिताया जाय। हिन्दू धर्ममे चार आश्रमोमेसे एक आश्रम गृहस्थ है। वस्तुत., अन्य तीन इसपर आधारित है। परन्तु दुर्भाग्यसे आजकल विवाह मात्र शारीरिक गठजोड़ माना जाता है। अन्य तीन आश्रम तो नामशेष हो गए है।

उपरोक्त बहन और अन्य बहनोका, जो उन्हीकी तरह सोचती है, कर्तव्य है कि वे विवाहको घृणित न माने, बल्कि उसे उसका उचित स्थान दे और उसकी पवित्रताको बनाये रक्खे। अगर वे आवश्यक आत्मसयमसे काम लेगी तो वे अपने भीतर सेवा-शक्ति बढती हुई पाएंगी। जो सेवा करना चाहती है, वे स्वभावत. अपने लिए वैसे ही विचारोका जीवन-साथी चुनेगी और उन दोनोकी मिली-जुली सेवाओसे देशको अधिक लाभ होगा।

यह दुखके साथ कहना पडता है कि साधारणत आजकल लडकियोको मातृत्वके कर्तव्य नही सिखाये जाते । लेकिन अगर विवाहित जीवन धर्मविधि है तो मातृत्व भी वैसा ही समझा जाना चाहिए। आदर्श मा बनना आसान चीज़ नही है। सन्तान-उत्पत्तिका कार्य पूरी जिम्मेदारीसे सभालनेकी ज़रूरत है। माताको यह पूरा ज्ञान होना चाहिए कि वच्चेके गर्भमे आनेसे लेकर उसके जन्मतक उसका क्या कर्तव्य है। और वह मा, जो देशको प्रतिभावान, स्वस्थ और सुसस्कृत वच्चे देती है, निश्चय ही देशकी सेवा करती है। वे वच्चे वडे होकर सेवामे तत्पर रहेगे।

सच तो यह है कि जिनकी आत्माए सेवाभावसे ओतप्रोत है, वे किसी भी दशामे क्यो न हो, सदा सेवा करते रहेगे। ऐसा जीवन वे कभी न अपनाएगे जो सेवामे रुकावटका कारण बने।

सेगाव,
३-३-४२

: १५ :

भरोसेकी सहायता

आत्म-सयमके लिए एक भाईने तीन तरीके बताये है, जिनमे दो बाहरी और एक अन्दरूनी है। 'अन्दरूनी' मददके बारेमे वे यो लिखते है :

"तीसरी चीज़ जो आत्म-संयममे मदद करती है, 'रामनाम' है। इसमे कामवासनाको ईश्वर-दर्शनकी पवित्र इच्छामे बदल देनेकी बहुत बडी शक्ति है। वास्तवमे अनुभवसे मुझे लगता है कि करीब-करीब सभी मनुष्योमे जो कामवासना पाई जाती है, वह एक तरहकी 'कुण्डलिनी शक्ति' है, जो अपने-आप बढती और विकसित होती रहती है। जिस तरह सृष्टिके शुरूसे ही इन्सान कुदरतके ख़िलाफ लडता आया है, उसी तरह अपनी 'कुण्डलिनी'की इस स्वाभाविक गतिके खिलाफ भी उसे लड़ना चाहिए, और उसे नीचेकी तरफ न जाने देकर ऊपरकी ओर ले जाना चाहिए—ऊर्ध्वरेता बनना चाहिए। जहा एक बार 'कुण्डलिनी' का ऊपर चलना शुरू हुआ कि वह मस्तिष्ककी तरफ चलने लगती है और आदमी धीरे-धीरे ऊर्ध्वरेता बनकर स्वय अपने-आपमे और अपने चारो तरफ दिखाई देनेवाले दूसरे आदमियोमे एक ही ईश्वरको देखने लगता है।" इसमे कोई शक नही कि 'रामनाम' सबसे ज्यादा भरोसेकी सहायता है। अगर दिलसे उसका जप किया जाय तो वह हरएक बुरे खयालको फौरन दूर कर सकता है, और जब बुरा ख़याल मिट गया तो उसका बुरा असर होना सभव नही। अगर मन कमज़ोर है तो बाहरकी सब सहायता बेकार है, और मन पवित्र है, तो वह सब अनावश्यक है। इसका यह मतलब कदापि नही समझना चाहिए कि एक पवित्र मनवाला आदमी सब तरहकी छूट लेते हुए भी बेदाग बचा रह सकता है। ऐसा आदमी ख़ुद ही अपने साथ कोई छूट न लेगा। उसका सारा जीवन उसकी अन्दरूनी पवित्रताका

सच्चा सबूत होगा। गीतामे ठीक ही कहा है कि आदमीका मन ही उसे बनाता है और वही उसे विगाडता भी है। मिल्टन जब यह कहता है कि 'इन्सानका मन ही सबकुछ है; वही स्वर्गको नरक और नरकको स्वर्ग बना देता है,' तो वह भी इसी विचारकी व्याख्या करता है।

शिमला,
२-५-४६

: १६ :

ब्याह और ब्रह्मचर्य

सूरतके पाटीदार आश्रमसे जिन भाईने श्री नरहरि परीखको 'हरिजनों और सवर्णोके ब्याह' के बारेमे सवाल पूछा है, उन्हीने यह दूसरा सवाल भी उठाया है :

"शादी करना, और जबतक स्वराज न मिले, ब्रह्मचर्यका पालन करना, ये दोनो चीजे एक साथ बैठती नही है। अगर ब्रह्मचर्य ही रखना हो तो शादी करनेकी क्या ज़रूरत ? और अगर शादी करना हो, तो ब्रह्मचर्यको बीचमे क्यो लाया जाय ? इन्सान सभ्य प्राणी है। ब्याह-जैसा पवित्र रिवाज दाखल करके उसने समाजमे व्यवस्था और इन्साफ कायम करनेकी कोशिश की है। अगर शादीका रिवाज न होता, तो जातीय सवालपर घर, बाज़ार और गांवमे तरह-तरहके झगड़े खडे होते रहते। शादी करनेके बाद कामवृत्तिकी बागडोर खुली छोड़ देनेको तो कोई नही कहता। उसमे सयमके लिए जगह है। और संयमसे ही गृहस्थाश्रमकी खूबसूरती बढ़ती है। शादीका पहला हेतु तो साथ रहकर एक-दूसरेको आगे बढाना है। यह मानना ही पड़ेगा कि इसमे कामवृत्तिको मर्यादामे रखकर उसकी प्यास बुझाना मुख्य उद्देश्य रहा है। स्वराज न मिलनेतक नये ब्याहे जोड़ेसे ब्रह्मचर्य-पालनेकी प्रतिज्ञा कराना उनकी ज़िन्दगीमे झूठ और दिखावा दाखल करना है। इससे उनमे विकृति भी पैदा हो सकती है। जो मर्द-औरत अनोखे दरजेके होगे, वे तो शादीके बन्धनमे पडेगे ही नही। शादी करनेवाले तो आम लोग ही होगे।...अच्छा हुआ कि पतिने बादमे बापूजीको कह दिया कि वह पत्नीके माता बननेके हकको छीन नही सकते। इससे बापूजीकी एक तरहसे इज्ज़त बच गई। नही तो इस तरह ब्रह्मचर्यकी बातसे झूठ और दिखावे या ढोगको मदद मिलनेके सिवा दूसरा नतीजा शायद ही निकलता।

"स्वराज मिलनेतक ब्रह्मचर्य पालनेकी प्रतिज्ञाका मर्म या भेद बापू समझावे, यह जरूरी है। मुझे तो यह एक हँसीकी बात लगती है।"

इस सवालमे यह मान लिया गया है कि ब्याह करनेमे पहली चीज़ विषय-भोग है। यह दुखकी बात है। सचमुच तो ब्याहका मतलब औरत और मर्दकी गाढी-से-गाढी मित्रता होना चाहिए, और है। उसमे विषय-भोगको तो जगह ही नही। जिस शादीमे विषय-भोगको जगह है, वह सच्ची शादी ही नही, सच्ची मित्रता ही नही। ऐसी शादिया मैने देखी है, जहा शादीका हेतु सिर्फ एक-दूसरेका साथ और सेवा ही रहा है। यह सच है कि ऐसी शादिया मैने इग्लैण्डमे ही देखी है। मेरी अपनी मिसाल यहा बेमौका न गिनी जाय, तो मै कहूगा कि भरी जवानीमे विषय-भोगको छोडनेके बाद ही हम जिन्दगीका सच्चा रस लूट सके। तभी हमारी जोडी सचमुच खिली और हम साथ मिलकर हिन्दुस्तानकी और इन्सानकी सच्ची सेवा कर सके। यह बात मै 'मेरे सत्यके प्रयोगो' मे लिख चुका हू। हमारा ब्रह्मचर्य अच्छी-से-अच्छी सेवा-भावनाओसे पैदा हुआ था।

हजारो ब्याह तो आम तौरपर जैसे हुआ करते है, हुआ करेगे। उनमे विषय-भोग पहली चीज़ रहेगी। अनगिनत लोग स्वादकी खातिर खाते है। इससे स्वाद इन्सानका धर्म नही बन जाता। थोडे ही लोग ऐसे है कि जो ज़िन्दा रहनेके लिए खाते है। वे ही खानेका धर्म जानते है। इसी तरह थोडे ही लोग औरत और मर्दके पवित्र रिश्तेका स्वाद लेनेके लिए, ईश्वरको पहचाननेके लिए शादी करते है। सच्ची शादीका धर्म तो वही पहचानते है और पालते है।

मालूम होता है कि तेन्दुलकर और इन्दुमतीके ब्याहके बारेमे पूरी बाते सवाल पूछनेवाले भाई नही जानते। उनके ब्याहकी प्रतिज्ञामे दोनो-की इच्छाकी बात थी। प्रतिज्ञा हिन्दुस्तानीमे लिखी गई थी। अखबार-वालोने अपना ही अग्रेज़ी तरजुमा छापा। इतनी बात पक्की है कि दोनो-की ब्रह्मचर्य पालनेकी इच्छा थी। वह शादी विषय-भोगकी खातिर नही थी। दोनो एक-दूसरेको बरसोसे पहचानते थे। इन्दुमतीको घरके लोगोकी इजाज़त कडी कसौटीके बाद मिली थी। बादमे तेन्दुलकरकी क़ैद उनके

रास्तेमे आई। दोनोके बडोकी ख्वाहिश थी कि शादी आश्रममे हो तो अच्छा। इन्दुमतीको आश्रममे आसरा मिला था। वहा उसे तसल्ली मिली थी। मैंने माना था कि दोनोमे खूब सेवाभाव है। मैं समझता हूँ कि अभी भी ऐसा ही है। मैंने उनके लिए ब्रह्मचर्य स्वाभाविक चीज मानी थी।

यह सब होते हुए भी ब्रह्मचर्यमे ढोगको जगह हो सकती है। इसमें क़सूर ब्रह्मचर्यका नही, ढोगका है। एक अग्रेज़ कवि ने कहा है कि ढोंग अच्छे गुणोकी तारीफ है। जहा सच्चे सिक्केकी क़ीमत है, वहां झूठा सिक्का सच्चे सिक्केकी छायामे रहेगा ही। जहा अच्छे गुणोकी कदर है वहा अच्छे गुणोका दिखावा भी रहेगा। दिखावेके डरसे अच्छे गुणोको छोड़ना, यह कैसी दु.ख और हैरानीकी बात है।

पूना जाते हुए, रेलमे,
३०-६-४६

: १७ :

बहनोंकी दुविधा

सवाल—जब बदमाश लोग किसी औरतपर हमला कर तो उसे क्या करना चाहिए ? वह भाग जाय या हिंसासे उनका सामना करे ? यानी वह भाग जानेके लिए डोंगिया तैयार रखे या हथियारोसे अपना बचाव करनेको तैयार रहे ?

जवाब—इस सवालका मेरा जवाब बहुत सीधा-सादा है, क्योकि मेरे खयालमे हिंसाकी कोई तैयारी नही हो सकती । अगर ऊची-ऊची किस्मकी हिम्मत बढानी हो तो हमे अहिंसाके लिए ही सारी तैयारी करनी चाहिए । कायरताकी अपेक्षा हिंसाको हमेशा तरजीह देनेकी निगाहसे ही हिंसा बरदाश्त की जा सकती है । इसलिए मै खतरेके समय भाग निकलनेके लिए डोगिया तैयार न रक्खूगा । अहिंसक आदमीके लिए खतरेका कोई समय होता ही नही । उसे तो मौतकी खामोश और शानदार तैयारी करनी होती है । इसीलिए कहीसे कोई मदद न मिलनेपर भी अहिंसक औरत या मर्द हँसते-हँसते मौतका सामना करेगा, क्योकि सच्ची मदद तो भगवानसे ही मिलती है । मै इसके सिवा दूसरी कोई बात सिखा नही सकता और जो मै सिखाता हू उसीपर अमल करनेके लिए यहा आया हू । मै नही जानता कि ऐसा कोई अवसर मुझे कभी मिलेगा या दिया जायगा । जो औरते गुडोके हमला करनेपर बिना हथियारके उनका सामना नही कर सकती उन्हे हथियार रखनेकी सलाह देनेकी जरूरत नही । वे तो वैसा करेगी ही । हथियार रखने या न रखनेकी इस हमेशाकी पूछताछमे जरूर ही कोई-न-कोई दोष है । लोगोको स्वाभाविक रूपसे आज़ाद रहना सीखना होगा । अगर वे मेरी इस खास नसीहतको याद रक्खे कि अहिंसासे ही सच्चा और कारगर मुकाबला किया जा सकता है तो वे इसीके अनुसार अपना व्यवहार बना लेगे । और बिना सोचे-समझे ही क्यो न हो, मगर दुनिया यही तो करती रही है, क्योकि दुनियाकी

हिम्मत ऊचे-ऊचे नमूनेकी, यानी अहिंसासे पैदा हुई हिम्मत नही है, इसलिए वह अपनेको अटम बमसे लैस रखनेकी हदतक पहुची है। जो लोग उसमे हिंसाकी व्यर्थताको नही देख पाते, वे कुदरती तौरपर अपनेको अच्छे-से-अच्छे हथियारोसे लैस रखे बिना न रहेगे।

जबसे मै दक्षिणी अफ्रीकासे लौटा हू तभीसे हिन्दुस्तानमे अहिंसाकी सोची-समझी शिक्षा बराबर दी जाती रही है और उसका जो नतीजा निकला है, सो हम देख चुके है।

सवाल—क्या किसी औरतको गुंडोंके सामने झुकनेके बजाय आत्महत्या करनेकी सलाह दी जा सकती है?

जवाब—इस सवालका ठीक-ठीक जवाब देनेकी ज़रूरत है। नोआखलीके लिए रवाना होनेके पहले मैने दिल्लीमे इसका जवाब दिया था। कोई औरत आत्म-समर्पण करनेके बजाय निश्चय ही आत्महत्या करना ज्यादा पसद करेगी। दूसरे शब्दोमे, जिन्दगीकी मेरी योजनामे आत्म-समर्पणकी कोई जगह नही। लेकिन मुझसे यह पूछा गया था कि आत्महत्या या खुदकुशी कैसे की जाय? मैने तुरंत जवाब दिया कि आत्महत्याके साधन सुझाना मेरा काम नही। और, ऐसी हालतोमे आत्महत्याकी स्वीकृति देनेके पीछे यह विश्वास था, और है कि जो आत्महत्या करनेके लिए भी तैयार है, उनमे ऐसे मानसिक विरोध और आत्माकी ऐसी पवित्रताके लिए वह ज़रूरी ताकत मौजूद है, जिसके सामने हमला करनेवाला अपने हथियार डाल देता है। मै इस दलीलको आगे नही बढा सकता, क्योंकि उसे आगे बढानेकी गुजाइश नही है। मै कबूल करता हूँ कि इसके लिए जिस पक्के सबूतकी ज़रूरत है, वह मिल नही रहा।

सवाल—अगर अपनी जान देने और हमला करनेवालेकी जान लेनेमेंसे किसी एकको चुननेका सवाल हो, तो आप क्या सलाह देंगे?

जवाब—जब अपनी जान देने या हमला करनेवालेकी जान लेनेमेंसे किसी एकको पसन्द करनेका सवाल हो तो बेशक, मै पहली चीज़को पसंद करूंगा।

पाल्ला,

२७-१-४७

: १८ :

मैंने कैसे शुरू किया ?

'हरिजन' के लिए जीवनके शाश्वत भागोपर चर्चा करना ठीक लगता है। उनमे एक ब्रह्मचर्य है। दुनिया मामूली चीजोकी तरफ दौड़ती है। शाश्वत चीजोके लिए उसके पास समय ही नही रहता। तो भी हम विचार करे तो देखेगे कि दुनिया शाश्वत चीजोंपर ही निभती है।

ब्रह्मचर्य किसे कहते है ? जो हमे ब्रह्मकी तरफ ले जाय, वह ब्रह्मचर्य है। इसमे जननेन्द्रियका सयम आ जाता है। वह संयम मन, वाणी और कर्मसे होना चाहिए। अगर कोई मनसे भोग करे और वाणी व स्थूल कर्मपर काबू रखे तो यह ब्रह्मचर्यमे नही चलेगा। 'मन चगा तो कठौतीमे गगा'। मनपर पूरा काबू हो जाय, तो वाणी और कर्मका सयम बहुत आसान हो जाता है। मेरी कल्पनाका ब्रह्मचारी स्वाभाविक रूपसे स्वस्थ होगा, उसका सिरतक नही दुखेगा, वह स्वभावत: दीर्घजीवी होगा, उसकी बुद्धि तेज़ होगी, वह आलसी नही होगा, शारीरिक या बौद्धिक काम करनेसे थकेगा नही और उसकी बाहरी सुघडता सिर्फ दिखावा न होकर भीतरका प्रतिबिम्ब होगी। ऐसे ब्रह्मचारीमे स्थितप्रज्ञके सब लक्षण देखनेमे आवेगे।

ऐसा ब्रह्मचारी हमे कही दिखाई न पड़े तो उसमे घबरानेकी कोई बात नही।

जो स्थिरवीर्य है, जो ऊर्ध्वरेता है, उनमे ऊपरके लक्षण देखनेमे आवे तो कौन बडी बात है ? मनुष्यके इस वीर्यमे अपने जैसा जीव पैदा करनेकी ताकत है, उस वीर्यको ऊचे ले जाना ऐसी-वैसी बात नही हो सकती। जिस वीर्यके एक बूदमे इतनी ताक़त है, उसके हज़ारो बूदोकी ताकतका माप कौन लगा सकता है ?

यहां एक ज़रूरी बातपर विचार कर लेना चाहिए। पातंजलि भगवानके पाच महाव्रतोमेंसे किसी एकको लेकर उसकी साधना नही की जा सकती। यह हो सकता है कि सिर्फ सत्यके बारेमे ही, क्योकि दूसरे चार तो सत्यमे छिपे हुए है, और इस युगके लिए तो पाचकी नही, ग्यारह व्रतोकी ज़रूरत है। विनोबाने उन्हे मराठीमे सूत्ररूपमे रख दिया है :

अहिसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह,
शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन।
सर्वधर्मी, समानत्व, स्वदेशी, स्पर्शभावना,
ही एकादश सेवावी नम्रत्व व्रतनिश्चये।

ये सब व्रत सत्यके पालनमेसे निकाले जा सकते है। मगर जीवन इतना सरल नही। एक सिद्धातमेंसे अनेक उपसिद्धात निकाले जा सकते हैं। तो भी एक सबसे बड़े सिद्धान्तको समझनेके लिए अनेक उप-सिद्धान्त जानने पड़ते है।

यह भी समझना चाहिए कि सब व्रत समान है। एक टूटा कि सब टूटे। हमे आदत पड गई है कि सत्य और अहिंसा व्रत-भगको हम माफ़ कर सकते है। इन व्रतोको तोडनेवालेकी तरफ हम अगुली नही उठाते। अस्तेय और अपरिग्रह क्या है, सो तो हम समझते ही नही। मगर माना हुआ ब्रह्मचर्यका व्रत टूटा तो तोडनेवालेका बुरा हाल होता है। जिस समाजमे ऐसा होता है, उसमे कोई बडा दोष होना चाहिए। ब्रह्मचर्यका सकुचित अर्थ लेनेसे वह निस्तेज बनता है, उसका कुछ पालन नही होता, सच्ची कीमत नही आकी जाती और दम्भ बढता है। कम-से-कम इस व्रतका पूरा स्थूल पालन भी अशक्य नही तो बहुत कठिन होता ही है। इसलिए सब व्रतोको एकसाथ लेना चाहिए। ऐसा हो तभी ब्रह्मचर्यकी व्याख्या सिद्ध की जा सकती है। आजकी भाषामे वही सच्चा ब्रह्मचारी है, जो एकादश व्रतका पालन मनसे, वाणीसे और कर्मसे करता है।

नई दिल्ली,
२-६-४७

: १६ :

ब्रह्मचर्यकी रक्षा

मैने पिछले हफ्ते जिस ब्रह्मचर्यकी चर्चा की थी, उसके लिए कैसी रक्षा होनी चाहिए ? जवाव तो सीधा है। जिसे रक्षाकी जरूरत हो, वह ब्रह्मचर्य ही नही। मगर यह कहना आसान है। उसे समझना और उसपर अमल करना बहुत मुश्किल है।

इतना तो साफ है कि यह बात पूर्ण ब्रह्मचारीके लिए ही सच्ची है। लेकिन जो ब्रह्मचारी बननेकी कोशिश कर रहा है उसके लिए तो अनेक बन्धनोकी ज़रूरत है। आमके छोटे पेडको सुरक्षित रखनेके लिए उसके चारो तरफ वाड़ लगानी पडती है। छोटा वच्चा पहले माकी गोदमे सोता है, फिर पालनेमे और फिर चालन-गाडी लेकर चलता है। जब वडा होकर खुद चलने-फिरने लगता है तव सव सहारा छोड देता है। न छोडे तो उसे नुकसान होता है। ब्रह्मचर्यपर भी यही चीज लागू होती है।

ब्रह्मचर्य एकादश व्रतोमेंसे एक व्रत है। यह पिछले हफ्ते मै कह चुका हू। इसपरसे यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्यकी मर्यादा या वाड एकादश व्रतोका पालन है। मगर एकादश व्रतोको कोई बाड न माने। वाड तो किसी खास हालतके लिए ही होती है। हालत बदली और बाड भी गई। मगर एकादशव्रतका पालन तो ब्रह्मचर्यका जरूरी हिस्सा है। उसके बिना ब्रह्मचर्य-पालन नही हो सकता।

आखिरमे ब्रह्मचर्य मनकी स्थिति है। बाहरी आचार या व्यवहार उसकी पहचान, उसकी निशानी है। जिस पुरुपके मनमे जरा भी विषय-वासना नही रही वह कभी विकारके वश नही होगा। वह किसी औरतको चाहे जिस हालतमे देखे, चाहे जिस रूप-रगमे देखे, तो भी उसके मनमे विकार पैदा नही होगा। यही स्त्रीके वारेमे भी समझना चाहिए।

मगर जिसके मनमे विकार उठा ही करते है उसे तो सगी बहन या बेटी-को भी नही देखना चाहिए। मैने अपने कुल मित्रोको यह नियम पालनेकी सलाह दी थी। और जिन्होने इसका पालन किया है उन्हे फायदा हुआ है। अपने बारेमे मेरा यह तजरुबा है कि जिन चीजोको देखकर दक्षिणी अफ्रीकामे मेरे मनमे कभी विकार पैदा नही हुआ था, उन्हीसे दक्षिण अफ्रीकासे वापस आनेपर मेरे मनमे विकार पैदा हुआ। और, उसे शान्त करनेमे मुझे काफी मेहनत करनी पडी।

यह बात सिर्फ जननेन्द्रियके बारेमे ही सच थी, ऐसा नही। इन्सानको शोभा न देनेवाले डरके बारेमे भी यही सच पडी और मै शरमिन्दा हुआ। बचपनमे मै स्वभावसे डरपोक था। दीयेके बिना मै आरामसे सो नही सकता था। कमरेमे अकेले सोना अपनी बहादुरीकी निशानी समझता था। मुझे पता नही कि आज अगर मै रास्ता भूल जाऊ और काली रातमें घने जगलमे भटकता होऊ तो मेरी क्या हालत हो ? मेरा राम मेरे पास है, यह ख्याल भी उस वक्त भूल जाऊ तो ? अगर बचपनका डर मेरे मनमें से बिलकुल निकल न गया हो तो मै मानता हू कि निर्जन जंगलमे निडर रहना जननेन्द्रियके सयमसे भी ज्यादा मुश्किल है। जिसकी यह हालत है, वह मेरी व्याख्याका ब्रह्मचारी तो नही ही गिना जायगा।

ब्रह्मचर्यकी जो मर्यादा हम लोगोमे मानी जाती है उसके मुताबिक ब्रह्मचारीको स्त्रियो, पशुओ और नपुसकोके बीच नही रहना चाहिए। ब्रह्मचारी अकेली स्त्री या स्त्रियोकी टोलीको उपदेश न करे। स्त्रियोके साथ, एक आसनपर न बैठे। स्त्रियोके शरीरका कोई हिस्सा न देखे। दूध, दही, घी वगैरा चिकनी चीजे न खाये। स्नान-लेपन न करे। यह सब मैने दक्षिणी अफ्रीकामे पढा था। वहा जननेन्द्रियका सयम करनेवाले पश्चिम-के स्त्री-पुरुषोके बीचमे रहता था। मै उन्हे इन सब मर्यादाओको तोड़ते देखता था। खुद भी उनका पालन नही करता था। यहा आकर भी न कर सका। दूध, दही वगैरा मै हठपूर्वक छोडता था। उसका कारण दूसरा था। इसमे मै हारा। अभी भी अगर मुझे कोई ऐसी वनस्पति मिल जाय जो दूध-घीकी जरूरत पूरी कर सके तो मै फौरन दूध वगैरा प्राणिज चीजे

छोड़ दू और मेरी खुशीका पार न रहे। मगर यह तो दूसरी बात हुई।

ब्रह्मचारी कभी निर्वीर्य नही होता। वह रोज़ वीर्य पैदा करता है और उसे इकट्ठा करके रोज-रोज़ वढाता जाता है। उसे कभी बुढापा नही आता। उसकी बुद्धि कभी कुठित नही होती।

मुझे लगता है कि जो ब्रह्मचारी बननेकी सच्ची कोशिश कर रहा है, उसे भी ऊपर बताई हुई मर्यादाओकी ज़रूरत नही है। ब्रह्मचर्य जबरदस्तीसे यानी मनसे विरुद्ध जाकर पालनेकी चीज़ नही। वह जबरदस्तीसे नही पाला जा सकता। यहा तो मनको वशमे करनेकी बात है। जो जरूरत पडनेपर भी स्त्रीको छूनेसे भागता है, वह ब्रह्मचारी बननेकी कोशिश ही नही करता।

इस लेखका मतलब यह नही कि लोग मनमानी करे। इसमें तो सच्चा सयम पालनेकी बात बताई गई है। दंभ या ढोगके लिए यहा कोई जगह हो ही नही सकती।

जो छुपे तौरसे विषय-सेवनके लिए इस लेखका इस्तेमाल करेगा, वह दभी और पापी ही गिना जायगा।

ब्रह्मचारीको नकली बाडोसे भागना चाहिए। उसे अपने लिए अपनी मर्यादा बना लेनी है। जब उसकी ज़रूरत न रहे तब उसे तोड देना चाहिए। इस लेखका उद्देश्य तो यह है कि हम सच्चे ब्रह्मचर्यको पहचाने। उसकी कीमत जान ले और ऐसे कीमती ब्रह्मचर्यका पालन करे। इसमे देशसेवाका सच्चा ज्ञान रहा है। इससे देशसेवा करनेकी शक्ति भी बढती है।

नई दिल्ली,
८-६-४७

: २० :

ईश्वर कहाँ है और कौन है ?

ब्रह्मचर्य क्या है, यह बताते हुए मैंने लिखा था कि ब्रह्म यानी ईश्वर तक पहुचनेका जो आचार होना चाहिए, वह ब्रह्मचर्य है। लेकिन इतना जान लेनेसे ईश्वरके रूपका पता नही चलता। अगर उसका ठीक पता चल जाय, तो हम ईश्वरकी तरफ जानेका ठीक रास्ता भी जान सकते है। ईश्वर मनुष्य नही है। इसलिए वह किसी मनुष्यमे उतरता है या अवतार लेता है, ऐसा कहे तो यह निरा सत्य नही है। एक तरहसे ईश्वर किसी खास मनुष्यमे उतरता है, ऐसा कहनेका मतलब सिर्फ इतना ही हो सकता है कि वह मनुष्य ईश्वरके ज्यादा निकट है। उसमे हमे ज्यादा ईश्वरपन दिखाई देता है। ईश्वर तो सब जगह विद्यमान है। वह सबमे मौजूद है, इसलिए हम सब ईश्वरके अवतार है। मगर ऐसा कहनेसे कोई मतलब हल नही होता। राम, कृष्ण इत्यादिको हम अवतार कहते है, क्योकि उनमे लोगोने ईश्वरके गुण देखे। आखिर तो राम, कृष्ण आदि मनुष्यके कल्पना-जगतमे बसते है, और उसके कल्पित चित्र ही है। इतिहासमे ऐसे लोग हो गए या नही, इसके साथ इन कल्पनाकी तस्वीरोका कोई संबध नही। कई बार हम इतिहासके राम और कृष्णको ढूढते-ढूढते मुश्किलोमे पड जाते है और हमे कई तरहके तर्कोका सहारा लेना पड़ता है।

सच बात तो यह है कि ईश्वर एक शक्ति है, तत्त्व है, शुद्ध चैतन्य है, सब जगह मौजूद है। मगर हैरानीकी बात यह है कि ऐसा होते हुए भी सबको उसका सहारा या फ़ायदा नही मिलता, या यों कहे कि सब उसका सहारा पा नही सकते।

बिजली एक बड़ी शक्ति है। मगर सब उससे फ़ायदा नही उठा सकते। उसे पैदा करनेका अटल क़ानून है। उसके अनुसार काम किया जाय तभी

विजली पैदा की जा सकती है। विजली जड है, वेजान चीज़ है। उसके इस्तेमालका कायदा चेतन मनुष्य मेहनत करके जान सकता है। जिस चेतनामय बडी भारी शक्तिको हम ईश्वर कहते है, उसके प्रयोगका भी नियम तो है ही। लेकिन यह चीज़ विलकुल साफ है कि उस नियमको ढूढनेके लिए वहुत ज्यादा परिश्रमकी जरूरत है। उस नियमका नाम है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्यको पालनेका सीधा रास्ता रामनाम है। यह मै अपने अनुभवसे कह सकता हूँ। तुलसीदास-जैसे भक्त ऋषि-मुनियोने वह रास्ता वताया ही है। मेरे अनुभवका कोई जरूरतसे ज्यादा मतलव न निकाले। रामनाम सब जगह मौजूद रहनेवाली रामवाण दवा है, यह शायद मैने पहले-पहल उरुलीकाचनमे ही साफ-साफ जाना था। जो उसका पूरा इस्तेमाल जानता है, उसे जगतमे कम-से-कम वाहरी काम करना पडता है। फिर भी उसका काम वडे-से-वडा होता है।

इस तरह विचार करते हुए मै कह सकता हू कि ब्रह्मचर्यकी रक्षाके जो नियम माने जाते है, वे तो खेल ही है। सच्ची और अमर-रक्षा तो रामनाम ही है। राम जब जीवसे उतरकर हृदयमे बढ जाता है, तभी उसका चमत्कार पूरा दिखाई देता है। यह अचूक साधन पानेके लिए एकादशव्रत तो है ही। मगर कभी साधन ऐसे होते है कि उनमेसे कौनसा साधन और कौनसा साध्य है, यह फर्क करना मुश्किल हो जाता है। एकादश-व्रतोमेसे सत्यको ही ले, तो पूछा जा सकता है कि क्या सत्य साधन है और रामनाम साध्य? या, राम साधन है और सत्य साध्य?

मगर मै सीधी वात पर आऊ। ब्रह्मचर्यका आज माना हुआ अर्थ ले तो वह यह है जननेन्द्रिय पर काबू पाना। इस संयमका सुनहला रास्ता और उसकी अमर-रक्षा रामनाम है। इस रामनामको सिद्ध करनेके कायदे या नियम तो है ही।

नई दिल्ली,
१४-६-४७

: २१ :

नाम-साधनाकी निशानियाँ

रामनाम जिसके हृदयसे निकलता है, उसकी पहचान क्या है ? अगर हम इतना न समझ ले, तो रामनामकी फजीहत हो सकती है । वैसे भी होती तो है ही । माला पहनकर और तिलक लगाकर रामनाम बडबडाने वाले बहुत मिलते है । कही मै उनकी सख्याको बढा तो नही रहा हूँ ? यह डर ऐसा वैसा नही है । आजकलके मिथ्याचारमे क्या करना चाहिए ? क्या चुप रहना ही ठीक नही ? हो सकता है । लेकिन बनावटी चुपसे कोई फायदा नही । जीते-जागते मौनके लिए तो बडी भारी साधना-की जरूरत है । उसकी अनुपस्थितिमे हृदयगत रामनामकी पहचान क्या ? इसपर हम विचार करे ।

एक वाक्यमे कहा जाय तो रामके भक्त और गीताके स्थितप्रज्ञमे कोई भेद नही । ज्यादा गहरे उतरे तो हम देखेगे कि रामभक्त पंचमहाभूतो-का सेवक होगा । वह प्रकृतिके कानूनपर चलेगा । इसलिए इसे किसी तरह-की बीमारी होगी ही नही । होगी भी तो वह उसे पच महाव्रतोकी मददसे अच्छा कर लेगा । किसी भी उपायसे भौतिक दु.ख दूर कर लेना आत्माका काम नही, शरीरका भले ही हो । इसलिए जो शरीरको ही आत्मा मानते है, जिनकी दृष्टिमे शरीरसे अलग शरीरधारी आत्मा जैसा कोई तत्त्व नही, वे तो शरीरको टिकाये रखने के लिए सारी दुनियामे भटकेगे, लका जायंगे । इससे उल्टे जो यह मानता है कि आत्मा देहमे रहते हुए भी देहसे अलग है, हमेशा स्थिर रहनेवाला तत्त्व है । अनित्य शरीरमे बसता है, शरीरकी सभाल तो रखता है, पर शरीरके जानेसे घबराता नही, दुःखी नही होता और सहज ही उसे छोड देता है, वह देहधारी डाक्टर-वैद्योके पीछे नही भटकता । वह खुद ही अपना डाक्टर बन जाता है । सब काम करते

हुए भी वह आत्माका ही ख्याल रखता है। वह मूर्छामेंसे जाग हुए की तरह बर्ताव करता है।

ऐसा इन्सान हर सासके साथ रामनाम जपता रहता है। वह सोता है, तो भी उसका राम जागता है। खाते-पीते कुछ भी काम करते हुए राम तो उसके साथ ही रहेगा। इस साथीका खो जाना ही इन्सानकी सच्ची मृत्यु है।

इस रामको अपने पास रखनेके लिए या अपने-आपको रामके पास रखनेके लिए वह पचमहाभूतोकी मदद लेकर सतोष मानेगा, यानी वह मिट्टी, हवा, पानी, सूरजकी रोशनी और आकाशका सहज और साफ और व्यवस्थित तरीकेसे इस्तेमाल करके जो पा सकेगा, उसमे सन्तोष मानेगा। यह उपयोग रामनामका पूरक नही, पर रामनामकी साधना-की निशानी है। रामनामको इन मददगारोकी ज़रूरत नही। लेकिन इसके बदले जो एकके बाद दूसरे वैद्य-हकीमोके पीछे दौडे और रामनामका दावा करे, उसकी बात कुछ जचती नही।

एक ज्ञानीने तो मेरी बात पढ़कर यह लिखा कि रामनाम ऐसा कीमिया है कि जो शरीरको बदल डालता है। वीर्यको इकट्ठा करना दबाकर रक्खे हुए धनके समान है। उसमेंसे अमोघ शक्ति पैदा करने-वाला तो रामनाम ही है। खाली सग्रह करनेसे तो घबराहट होती है। किसी भी समय उसका पतन हो सकता है। लेकिन जब रामनामके स्पर्शसे वह वीर्य गतिवान होता है, ऊर्ध्वगामी बनता है, तब उसका पतन असभव हो जाता है।

शरीरके पोषणके लिए शुद्ध खून ज़रूरी है। आत्माके पोषणके लिए शुद्ध वीर्य-शक्तिकी ज़रूरत है। इसे दिव्यशक्ति कह सकते है। यह शक्ति सारी इन्द्रियोकी शिथिलताको मिटा सकती है। इसलिए कहा है कि रामनाम हृदयमे बैठ जाय, तो नई ज़िन्दगी शुरू होती है। यह कानून जवान, बूढे, मर्द, औरत सबपर लागू होता है।

पश्चिममे भी यह ख्याल पाया जाता है। 'क्रिश्चियन साइन्स' नामका सप्रदाय बिलकुल यही नही तो करीब-करीब इसी तरहकी बात करता है।

मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्तानको एसे सहारेकी ज़रूरत नही, क्योंकि हिन्दुस्तानमे तो यह दिव्य विद्या पुराने ज़मानेसे ही चली आ रही है।

हरिद्वार,
२१-६-४७

: २२ :

एक उलझन

विलायतमे अच्छी तरह शिक्षा पाये हुए एक हिन्दुस्तानी भाईके वहासे लिखे पत्रमेसे कुछ हिस्सा नीचे देता हूँ .

"स्त्री और पुरुषके सबधोके बारेमे मेरे मनकी हालत कुछ विचित्र-सी है। मैंने आपको लिखा ही है कि कुछ बन्धन और मर्यादाए मै रखने ही वाला हूँ और रखी भी है। लेकिन जब सोचता हूँ तो अपनी हालत मुझे त्रिशकु जैसी दिखाई देती है। एक तरफसे लगता है कि स्त्री-पुरुषके सबधको ज्यादा कुदरती बनानेसे बुराई और पापाचार कम होगा। दूसरी तरफसे लगता है कि एक-दूसरेको छूनेसे बुराई पैदा हुए बिना रह नही सकती। यहाकी अदालतोमे जब भाई-बहन और बाप-बेटीके बारेमे मुकद्दमे आते है, तब भी ऐसा लगता है कि उन लोगोने एक-दूसरेका स्पर्श जब शुरू किया, तब उसमे दोष नही था। मुझे लगता है कि स्पर्श-सुखकी वजहसे आदमी बदमाश हो, तो एक महीने या एक हफ्तेमे और भला हो तो धीरे-धीरे १० बरसमे भी पापकी तरफ झुके बिना नही रह सकता। छुटपनमे जो तालीम पाई है उस परसे जो विचार बन गए है और आजकलके विचारोकी किताबे पढनेसे जो विचार आते है, उन दोनोमे हमेशा झगडा चला करता है। यह भी ख्याल आता है कि स्पर्श-मात्र छोड देनेसे क्या काम चल सकेगा? मै अभी तक किसी निर्णय पर नही पहुच पाया हूँ। लेकिन थोडेमे मेरी यही स्थिति है।"

बहुतेरे नौजवान लडके-लडकियोकी यही हालत होती है। उनके लिए सीधा रास्ता यही है : उन्हे स्पर्श मात्रका त्याग करना ही चाहिए। किताबोमे लिखी हुई मर्यादाए उस समयमे होनेवाले अनुभवसे बनाई गई है। लेखकोके लिए वे ज़रूरी भी थी। साधकको अपने लिए उनमेसे

ब्रह्मचर्य—२ : एक उलझन

कुछ मर्यादाए या दूसरी कुछ नई मर्यादाए बना लेनी होगी। आतमब्रह्मा जलका बीचमे रखकर उसके आसपास एक दायरा खीचे तो मजिल तक पहुचनेके कई रास्ते दिखाई देग। उनमेसे जिसे जो आसान मालूम हो उस पर चले और मजिल पर पहुचे।

जिस साधकको अपने-आप पर भरोसा नही वह अगर दूसरोकी नक़ल करने लगे तो ज़रूर ठोकर खायगा।

इतना सावधान कर देनेके बाद मै कहूगा कि इगलैडकी अदालतोमे चलनेवाले मुकद्दमोमे से या उपन्यास पढकर ब्रह्मचर्यका रास्ता खोजना आकाश-कुसुम लाने जैसी बेकार कोशिश है। सच्चा इगलैड वहाकी अदालतोमे या उपन्यासमे नही। इन दोनोका अपनी-अपनी जगह भले ही कुछ उपयोग हो मगर ब्रह्मचर्यकी साधना करनेवालोको इन दोनोको छूना भी नही चाहिए।

इगलैडके बड़े-बड़े साधकोके दिलमे इस पत्र लिखनेवाले भाईकी तरह उलझने नही पैदा होती, क्योकि वे सब यह जानते है कि उनका राम उनके दिलमे बसता है। वे न अपने-आपको धोखा देते है और न दूसरोको। उनकी बहन उनके लिए बहन ही है और मा मा है। ऐसे साधकके लिए सारी स्त्रिया बहन या मा है। उसे कभी यह ख़याल भी नही आता कि स्पर्श-मात्र बुरा है। उसमेसे दोष पैदा होनेका डर नही रहता। वह सारी स्त्रियोमे उसी भगवानको देखता है, जिसे वह अपनेमे पाता है।

ऐसे लोग हमने नही देखे, इसलिए यह मानना कि वे हो ही नही सकते, घमडकी निशानी है। इससे ब्रह्मचर्यकी महिमा घटती है। ईश्वरको हमने नही देखा या ईश्वरको जिसने देखा, ऐसा कोई आदमी हमे नही मिला है। इसलिए ईश्वर है ही नही यह माननेमे जितनी भूल है, उतनी ही ब्रह्मचर्यकी ताकतको अपने नापसे नापनेमे रही है।

नई दिल्ली,
२९-६-४७

: २३ :

पुराने विचारोंका बचाव

कुछ दिन पहले मैंने एक पत्रका कुछ हिस्सा 'हरिजन सेवक' मे दिया था। उस परसे पत्र लिखनेवाले भाई लिखते है :

"मेरे ग्यारह साल पहलेके लिखे हुए खतपर आपने जो विचार बताये है, उनमेंसे मै पूरी तरह सहमत हूँ। मगर उनपर चलनेकी हिम्मत मुझमे कम है। मनमे आता है कि सापकी बाबीमे हाथ डाला ही क्यो जाय? आप आदर्श पुरुषकी कल्पना जगतके सामने रखे, तो भी लोक-सग्रहकी दृष्टिसे यह अच्छा होगा कि आप लोगोको मर्यादा और बन्धन रखनेकी सलाह दे। यह ज्यादा रक्षा होगी। स्त्री-पुरुषका भेद माननेकी जरूरत नही। यह स्त्री 'मेरी है' यह भाव मनसे निकाल देने चाहिएं। बिलकुल सात्विक भूमिकाका ही प्रचार करके हिन्दुस्तानकी कम्युनिस्ट पार्टीने अनजानमे हमारे समाजको जो नुकसान पहुंचाया है, वह सचमुच भयानक है। श्री किशोरलाल भाई तो यहातक कहते है कि स्त्रीके साथ एक चटाई पर भी न बैठना चाहिए। इसमे उनका पुराण-पथीपन दीखता हो तो भी उनकी बात सोचने लायक है।

" 'यद्यदाचरते श्रेष्ठ. तत्तदेवेतरो जन'—गीताकी यह चेतावनी भूली नही जा सकती। ऊचे दरजेको पहुचे हुए लोगोको यह डर मनमे रखना चाहिए कि मामूली शक्तिवाले बिना समझे उनकी सिर्फ नकल ही करेगे। इसलिए उन्हे बधन रखकर अपने दरजेसे नीचेका ही आचरण करना चाहिए। मुझे लगता है, इसीमे समाजका भला है। हा, एक सचोट दलील आपके पक्षमे है। वह यह कि ऊचे दरजे तक पहुच सकनेकी मिसाल जगतके सामने रखनेवाला कोई न हो, तो समाजकी श्रद्धाका लोप हो जाय। इन्सानके भीतर रहनेवाली भगवानकी ज्योति किसीको तो बतानी ही होगी। इसके

जवाबमे मै इतना ही कहूगा कि इस चीजका फैसला जमाखर्चका हिसाब निकालकर बड़ोको खुद करना होगा।"

यह टीका मुझे अच्छी, लगती है। सबको अपनी कमज़ोरी पहचाननी चाहिए। जान-बूझकर उसे जो छिपाता है और बलवानकी नकल करने जाता है वह ठोकर खायगा ही। इसलिए मैंने तो कहा है कि हरेकको अपनी मर्यादा खुद बाधनी चाहिए। मुझे नही लगता कि किशोरलाल-भाई जिस चटाई पर स्त्री बैठी हो, उस पर बैठनेसे इन्कार करेंगे। ऐसा हो तो मुझे ताज्जुब होगा। मै तो ऐसी मर्यादाको समझ नही सकता। मैंने उनके मुहसे ऐसा कभी नही सुना।

स्त्रीकी निर्दोष सगतिकी तुलना सापके बिलसे करना मै तो अज्ञान ही मानता हूँ। इसमे स्त्री-जातिका और पुरुषका अपमान है। क्या जवान लड़का अपनी माके पास नही बैठेगा? बहनके पास नही बैठेगा? रेलमे उसके साथ एक पटरी पर नही बैठेगा? ऐसे संगसे भी जिसका मन चंचल होता हो, उसकी हालत कितनी दयाजनक मानी जायगी?

यह मै मानता हूँ कि लोक-सग्रहके लिए बहुत-कुछ छोड़ना चाहिए। मगर इसमे भी समझसे काम लेना होगा। यूरोपमे नगोका एक संघ है। उन्होने मुझे इसमे खीचनेकी कोशिश की। मैंने साफ़ इन्कार कर दिया और कहा :

'लोग इस तरहकी बात सहन नही कर सकते। जबतक उसके लिए ज़रूरी पवित्रता न हो तबतक ऐसी नुमायश नही की जा सकती।' तात्त्विक दृष्टिसे मै यह मानता हूँ कि स्त्री-पुरुष बिलकुल नंगे हो, तो भी उससे कुछ नुकसान न होना चाहिए। आदम और हौवा अपने निर्दोष ज़मानेमे नगे ही घूमते थे। जब उन्हे अपने नगेपनका ज्ञान हुआ, तब उन्होने अपने अंग ढकने शुरू किये और वे स्वर्गसे निकाल दिये गए। हम गिरे हुए है। इसे भूलकर चलेगे तो नुकसान ही होगा। नंगोकी मिसालको मैं लोक-संग्रहकी आवश्यकतामे गिनूगा।

मगर लोक-सग्रह की दलील देकर मुझपर दबाव डाला गया कि मैं छुआछूत मिटानेकी बात छोड़ दू। लोक-सग्रहकी दृष्टिसे नौ बरसकी लड़की-

की शादी करनेका रिवाज चालू रखनेकी बात कही गई है। लोक-सग्रहकी खातिर दरियापार जानेसे रोका जाता था। ऐसी और भी कई मिसालें दी जा सकती है। मगर घरके कुएमे हम तैरें, डूब न मरें।

बन्धन ऐसे तो नही होने चाहिए कि जिससे स्त्री-पुरुपका भेद हम भूल ही न सके। हमे याद रखना चाहिए कि हमारे अनेक कामोमे इस फर्कके लिए कोई जगह नही है। दरअसल इस भेदको याद करनेका मौका एक ही होता है, वह तब जब काम सवारी करता है। जिन स्त्री-पुरुपो पर सारे दिन ही काम सवार रहता है, उनके मन सडे हुए है। मै मानता हू कि ऐसे लोग लोक-कल्याण नही कर सकते। इन्सानकी हालत आमतौर पर ऐसी नही होती। करोडो देहाती अगर सारे दिन इसी चीजका खयाल किया करे, तो वे किसी भी शुभ कामके लायक नही रह सकते।

नई दिल्ली,
१३-७-४७

: २४ :

मुश्किलको समझना

पिछले दिनोके मेरे भाषणोको पढकर, जिनसे हिन्दुस्तानकी पिछली घटनाओके कारण मुझे होनेवाले दु खका आभास मिलता है, एक अंग्रेज़ बहन लिखती है :

"क्या इस गहरे दु.ख, इन्सानके नरककी ओर लगातार बढते जाने और वातावरणमे निराशाकी भावनाके फैलनेका यह मतलब है कि आपको १२५ बरससे भी ज्यादा अरसे तक जीना चाहिए ? मर जाना कितनी आसान बात है।...इन्सान रात-दिन नरककी तकलीफ महसूस करता है।..."

मै जानता हूँ कि यह बहन मज़ाकके बतौर मुझसे यह उम्मीद नही करती कि मुझे १२५ बरससे ज्यादा जीना चाहिए। वे भगवानमें जबरदस्त भरोसा रखनेवाली एक बहादुर महिला है। जितने दिनो जीना मेरे भागमे बदा है, उसमे एक दिन भी बढा लेनेका सवाल मेरे साथ नही है। एक भाग्यवादीके नाते मै तो मानता हूँ कि भगवानकी इच्छाके बिना एक तिनका भी नही हिलता। अभी तक मैंने जो कुछ किया है और आगे भी करना चाहूगा, वह यह है कि मै १२५ बरसकी ज़िन्दगी चाहता हूँ, बशर्ते कि वह ज़िन्दगी इन्सानकी ज्यादा-से-ज्यादा सेवा करनेमे लगे। मगर जबतक ऐसी इच्छाके साथ उसके अनुरूप ज़रूरी और सही आचरण न किया जाय, तबतक इससे कोई फायदा नही। गीतामे अर्जुनके सवाल पूछनेपर भगवान कृष्णने 'स्थितप्रज्ञ' का जो वर्णन किया है, उसका सर एडविन आरनाल्डने अंग्रेजीमे तरजुमा किया है। वह वर्णन यों है :

'अर्जुन—हे केशव, जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है और जो भगवानके ध्यानमे लीन है, उसका क्या लक्षण है ? वह कैसे बोलता है, कैसे चलता है ? कैसे बैठता या रहता है ?

कृष्ण—हे अर्जुन, जब कोई मनुष्य अपने मनमे भरी हुई सारी वासनाओको छोड देता है और अपनी आत्माके लिए आत्मामे ही पूरा सन्तोष पा जाता है, तो उसे स्थितप्रज्ञ कहते है।

'जो दु ख पानेसे घबराता नही और सुखकी इच्छा नही करता, काम, भय और क्रोध जिसके नष्ट हो गए है, उसे मुनि, साधु या स्थितधी कहते है।

'सब विषयोसे जिसका मन हट गया है और भला-बुरा कुछ भी हुआ हो, उससे जिसे न खुशी है न दु ख है, ऐसा आदमी स्थिर बुद्धिवाला होता है।

'जैसे कछुआ अपने चारो पाव सिकोड लेता है, इसी तरह जो मनुष्य अपनी इन्द्रियोको उनके विषय-भोगसे खीचकर अपने काबूमे कर लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

'इन्द्रियोको विपयोसे अलग रखनेपर वे विषय् तो नष्ट हो जाते है, मगर उनकी वासना बनी रहती है। वह भी ब्रह्मके दर्शन् होने पर नष्ट हो जाती है।

'हे अर्जुन, बुद्धिमान आदमीके अपनी इन्द्रियोको दबानेकी कोशिश करते हुए भी ये बलवान इन्द्रियाँ जबरन उसका मन अपनी तरफ खीच लेती है।

'इसलिए मनुष्यको उन्हे वशमे करके अपना मन पूरी तरह मुझमे लगाना चाहिए, क्योकि जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ उसके वशमे होती है, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है।

'इन्द्रियोके विषयोका ध्यान करते-करते उनमे प्रीति पैदा हो जाती है, उस प्रीतिसे इच्छाको ज़ोर मिलता है। जब इच्छा पूरी नही होती तो गुस्सा आने लगता है और गुस्सेसे सम्मोह यानी बेवकूफी पैदा होती है, बेवकूफीसे स्मरणशक्ति घट जाती है। इसके घटनेसे बुद्धिका नाश होता है और जब बुद्धिका नाश हो जाता है तो ऐसा व्यक्ति पूरी तरह बरबाद हो जाता है।

'मगर प्रीति और द्वेष छोड़कर जिसने अपनी इन्द्रियोको अपने वशमे कर लिया है उसके विषय-सेवन करनेपर भी उसे शान्ति ही मिलती है।

'मनके प्रसन्न होनेसे सब दुःखोका नाश हो जाता है और प्रसन्न मनवाले-की बुद्धि जल्द ही स्थिर होती है।

'जिसका मन अपने वशमे नही है, उसे आत्मज्ञान नही होता और जिसे आत्मज्ञान नही, उसे शान्ति नही मिलती और जिसे शान्ति नही मिली, उसे सुख कैसे मिलेगा?

'जिसका मन इन्द्रियोंकी इच्छानुसार चलता है, उसकी बुद्धिको मन उसी तरह नष्ट कर देता है, जिस तरह समुद्रमे पडी हुई नावको तूफान नष्ट कर देता है।

'इसलिए, हे अर्जुन, जो आदमी अपनी इन्द्रियोको उनके विषयोंसे सब तरह खीचकर उन्हे अपने वशमें कर लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

'अज्ञानी लोगोके लिए जो रात है, उसमे योगी पुरुष जागता है और जिस अज्ञानरूपी अधेरेमे, सब प्राणी जागते है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

'अज्ञानी लोगोके लिए जो रात है, उसमे योगी पुरुष जागता है और जिस अज्ञानरूपी अंधेरेमे सब प्राणी जागते है, उसे योगी पुरुष रात समझता है।

'जैसे लबालब भरे हुए समुद्रमे कई नदिया मिलती है, पर उसे अशान्त नही कर पाती उसी तरह जिस स्थिर बुद्धिवाले पुरुषमें सारे भोग किसी प्रकारका विकार पैदा किये बिना समा जाते है उसे ही पूरी शान्ति मिलती है, न कि भोगोकी इच्छा रखनेवालेको।

'जो व्यक्ति सारी कामनाओको छोडकर, ममता और अहकारको दिलसे हटाकर और इच्छा-रहित होकर बरतता है, उसे शान्ति मिलती है।

'हे अर्जुन, इस हालतको 'ब्राह्मीस्थिति' कहते है। उसके मिल जानेके बाद आदमी फिर मोहमे नही पडता। और अगर इस हालतमे रहते हुए वह मर जाय, तो 'ब्रह्मनिर्वाण' पाता है।'

मै स्वीकार करता हूँ कि इस स्थितिको पहुचनेकी कोशिश करने पर भी मैं अभी उससे बहुत दूर हूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि जब हमारे आसपास इतना तूफान मचा हुआ है, तब उस स्थितिको प्राप्त करना कितना कठिन है!

इसी पत्रमे वह वहन लिखती है :

"खुशीकी वात सिर्फ इतनी ही है कि इन्सान चाहे थोड़े ही क्यो न हो ईश्वरसे अलग रहनेमे अपनी स्वाभाविक कमज़ोरीको समझ गये है।"

इन वहनके पत्रके प्रारभमे यह आदर्श वाक्य लिखा हुआ है :

"जो दिल नन्हे वच्चोकी तरह इतने पवित्र है कि वे किसीसे दुश्मनी कर ही नही सकते, उन्हीमे इन्सानको आज़ाद करानेके उपाय भरे रहते है।"

यह बात कितनी सच है और साथ ही कितनी मुश्किल है !!

नई दिल्ली,
२२-७-४७

: २५ :

एक विद्यार्थीकी उलझन

एक विद्यार्थीने अपने शिक्षकको एक पत्र लिखा था। उसका नीचेका हिस्सा शिक्षकने मेरी राय जाननेके लिए मेरे पास भेजा है। विद्यार्थीका पत्र अग्रेजीमे है। उसकी मातृभाषा क्या होगी, यह मै नही जानता।

"मुझे दो बातोने घेर लिया है : एक तरफसे मेरे देश-प्रेमने और दूसरी तरफसे तेज विषय-वासनाने। इससे मुझमे विरोधी भावनाए पैदा होती है और मेरे निर्णय हिल जाते है। मुझे अपने देशका पहले नम्बरका सेवक बनना है। लेकिन साथ ही मुझे दुनियाका आनद भी लेना है। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि ईश्वरमे मेरी श्रद्धा नही है, हालाकि कितनी ही बार मुझे ईश्वरका डर मालूम होता है। सच पूछा जाय तो सारा जीवन ही एक समस्या है। मै क्या जानू कि इस जीवनके बाद मेरा क्या होनेवाला है? मैने बहुत-सी जलती चिताए देखी है। आखिरी चिता मैने अपनी मान ली है। जलती चिताके दृश्यने मुझपर भयंकर असर पैदा किया। क्या मेरे भी ऐसे ही हाल होगे? यह विचार भी मै सहन नही कर सकता। किसी घायलको देखता हूँ तो मेरे सिरमे चक्कर आने लगता है। बादमे मेरी कल्पना काम करने लगती है और कहती है कि तेरे शरीरका भी किसी दिन यही हाल होगा। मै जानता हूँ कि किसी शरीरको इस हालतमे से मुक्ति नही मिलती। साथ ही, ऐसा लगता है कि मौतके बाद जीवन नही है, और इसलिए मुझे मौतका डर लगता है।

"इस हालतमे मेरे पास सिर्फ दो ही रास्ते है। या तो मै इस उलझनमे फंसकर जलता रहू या दुनियाके ऐश-आराममे लिपट कर दूसरी बातोका खयाल तक न करू। दूसरे किसीके सामने मैने यह बात कबूल नही की,

लेकिन आपके सामने कबूल करता हूं कि मैंने तो दुनियाका आनंद लूटनेका रास्ता ही पकडा है।

"यह दुनिया ही सच्ची है और किसी भी कीमत पर उसका आनद लूटना ही है। मेरी पत्नी अभी-अभी मरी है। मेरे मनमे उसके लिए प्रेम था। लेकिन मैं देखता हूँ कि उस प्रेमकी जडमे उसका मरना नही था, वल्कि मेरा यह स्वार्थ था कि उसके मरनेसे मै अकेला रह गया। मरनेके वाद तो कोई गुत्थी सुलझानेको रहती नही और जीवित आदमीके लिए तो सारा जीवन ही एक गुत्थी है। शुद्ध प्रेममे मेरी श्रद्धा नहीं है। जिसे प्रेमके नामसे पहचाना जाता है वह प्रेम तो सिर्फ विषय-भोगका होता है। अगर शुद्ध प्रेम जैसी कोई चीज होती तो अपनी पत्नीकी अपेक्षा अपने मा-वापसे मेरा आकर्षण ज्यादा होना चाहिए था। लेकिन हालत तो इससे विलकुल उलटी थी, मा-वापकी अपेक्षा पत्नीमे मेरा आकर्षण ज्यादा था। यह सच हे कि मै अपनी पत्नीके प्रति वफादार था। लेकिन उसे मैं यह गारन्टी नही दिला सकता था कि उसके मरनेके वाद भी उसकी तरफ मेरा प्रेम वना रहेगा। उसके मरनेके वाद मुझे जो दुःख होगा, वह तो उसके न रहनेसे पैदा होनेवाली मुसीवतोका दु.ख होगा। आप इसे एक तरहकी बेरहमी कह सकते हैं। सो जैसा भी हो, लेकिन सच्ची हालत यही है। अब मेहरबानी करके मुझे लिखिये और रास्ता वताइये।"

पत्रके इस हिस्सेमे तीन बाते आती है। एक, विषय-वासना और देश-प्रेमके बीच खडा होनेवाला विरोध, दूसरी, ईश्वरमे और मरनेके वाद भविष्यमे श्रद्धा, और तीसरी शुद्ध प्रेम और विषय-वासनाका द्वन्द्व-युद्ध।

पहली उलझन ठीक ढगसे रखी गई मालूम होती है। उसका सार यह है कि विषय-भोगकी इच्छा सच्ची बात है और देश-प्रेम वहते प्रवाहमे खिच जानेके समान है। यहा देश-प्रेमका अर्थ होगा सत्ता पानेके प्रपचमे पडना, ताकि उसके साथ विषय-वासना पूरी करनेका मेल बैठ सके। इस तरहके वहुतसे उदाहरण मिल सकते हैं। देश-प्रेमका मेरा अर्थ यह है कि प्रजाके गरीब लोगोके लिए भी हमारे दिलमे प्रेमकी आग जलती हो। यह आग विषय-वासना जैसी चीजको हमेशा जला डालती है।

इसलिए मै देश-प्रेम और विषय-वासनाके बीच कोई झगड़ा देखता ही नही। उलटे, यह प्रेम हमेशा विषय-वासनाको जीत लेता है। ऐसे विश्व-प्रेमको, जो वृत्ति तोड़ सके, उसे पोसनेका समय भी कहा बच सकता है? इसके खिलाफ जिस आदमीको विषय-वासनाने अपने वशमे कर लिया है, उसका तो नाश ही होता है।

ईश्वरके बारेमे और मरनेके बाद भविष्यके बारेमे अश्रद्धा भी ऊपर-की वासनामे ही पैदा होती है, क्योकि यह वासना औरत और मर्दको जडसे हिला देती है। अनिश्चय उन्हे खा जाता है। विषय-वासनाके नाश हो जानेपर ही ईश्वर पर रहनेवाली श्रद्धा जीती है। दोनो चीज़े साथ-साथ नही रह सकती।

तीसरी उलझनमे पहलीको ही दुहराया गया मालूम होता है। पति और पत्नीके बीच शुद्ध प्रेम हो, तो वह दूसरे सब प्रेमोकी अपेक्षा आदमीको ईश्वरके ज्यादा पास ले जाता है। लेकिन जब पति-पत्नीके बीच के प्रेममे विषय-वासना मिल जाती है, तब वह मनुष्यको अपने भगवानसे दूर ले जाती है। इसमेसे एक सवाल पैदा होता है, अगर औरत और मर्द का भेद पैदा न हो, विषय-भोगकी इच्छा मर जाय तो शादीकी ज़रूरत ही क्या रह जाय!

अपने पत्रमे विद्यार्थीने ठीक ही स्वीकार किया है कि अपनी पत्नीकी तरफ उसका स्वार्थ-भरा प्रेम था। अगर वह प्रेम नि.स्वार्थ होता तो अपनी जीवन-सगिनीके मरनेके बाद विद्यार्थीका जीवन ज्यादा ऊचा उठता, क्योकि साथीके मरनेके बाद उसकी यादमे से पिछडे हुए लोगोकी सेवामे उस भाईकी लगन ज्यादा वडी होती।

नई दिल्ली,
१२-१०-४७

: २६ :

शंकाओंके जवाब

[१९३२-३३ के बीच श्री मणिबहन, लेडी ठाकरसी और मीराबहनके साथ यरवदा जेलमे बापूसे मुलाकात करनेका मुझे सौभाग्य मिला था। मै जब साबरमती वापस आ गया, तब बापूजीने नीचे लिखा बगैर तारीखका पत्र मेरे नाम भेजा। — पी० जी० मेथ्यु]

"फिरसे पढ़ा नही

"प्रिय मेथ्यु,

"मुझे आपके तीन पत्र मिले। बुद्धिकी अपनी जगह तो है ही, लेकिन उसे हृदयकी जगह पर नही बैठना चाहिए। आप अपने जीवनके या किसी भी पहचानके बुद्धिशाली आदमीके जीवनके किन्ही चौबीस घण्टोको जाचकर देखेगे, तो आपको मालूम होगा कि इस समयमे किये हुए करीब-करीब सभी काम भावनासे किये हुए होगे, बुद्धिसे नही। इससे यह नसीहत मिलती है कि बुद्धिका एक बार विकास हो जानेके बाद वह अपने स्वभावके अनुसार अपने-आप ही काम करती है, और अगर हृदय शुद्ध हो, तो जो कुछ भी वहमभरा या अनीतिमय हो, उसे वह छोड देती है। बुद्धि एक चौकीदार है और अगर वह अपने दरवाज़े पर सदा जाग्रत और अटल हालतमे रहे, तो कहा जा सकता है कि वह अपनी जगह पर है। और मेरा दावा है कि वह आश्रममे यह काम बजाती ही है। जीवन यानी कर्त्तव्य यानी कर्म, जब बुद्धिसे—तर्कसे कर्मोको खतम कर दिया जाता है, तब वह दूसरेकी जगह लेनेवाली बन जाती है और ऐसी बुद्धिको हटाना जरूरी है।

"अब आपका दूसरा पत्र लेता हूँ। मै यह नही कहता कि पीढी-दर-पीढी का धन्धा अख्तियार करना चाहिए। मेरा कहना तो यह है कि जिस तरह हमारे शरीरका रग और बहुतसी दूसरी बाते हमे विरासतमे मिलती

है, उसी तरह धन्धा भी मिलता है। जो कुदरतमे हो रहा है, मैने वही बात कही है। अपनी ख़ुदकी राय मैने नही बताई है। पीढी-दर-पीढीसे चले आनेवाले स्वभावके कारण शक्तिका सग्रह होता है, और नीतिमान मनुष्यके लिए वह जरूरी है। लेकिन इस नियमका मतलब इतना ही है कि हम अपने नजदीकके तथा दूरके पूर्वजोसे विरासतमे मिली हुई भौतिक और मानसिक वृत्तियोके साथ जन्म लेते है। लेकिन ये वृत्तिया बदली जा सकती है। और जब वे नुकसानदेह हो या जब उनमे अपने स्वार्थके लिए नही, बल्कि दूसरोकी सेवाके लिए परिवर्त्तन करनेकी जरूरत पैदा हो, तब उन्हे बदलना ही चाहिए।

"स्त्री और पुरुष दोनोको चाहे जब भोगसे दूर रहनेका हक है। सभोग पूरी तरहसे दोनोकी इच्छाका काम होना चाहिए। इसलिए जब दोनोमेंसे कोई एक जिन्दगी भरके लिए भोग छोड देनेका निश्चय करे, और यदि पति या पत्नी अपनी विषय-वासनाको काबूमे न रख सके तो उसे दूसरा साथी खोज लेनेकी स्वतत्रता है। लेकिन यह तो तभी हो सकता है, जब विवाह-बन्धनमे बधे हुए पति-पत्नीमे सच्चा प्रेम न हो, यानी दूसरे शब्दोमे, विवाहके सच्चे अर्थमे उनका विवाह ही न हो। विवाह-सम्बन्ध तो स्त्री-पुरुषके बीच जीवन भरकी मित्रता है। इससे उसमे उन्हे शरीर-सम्बन्ध रखनेकी स्वतत्रता भले ही हो, लेकिन फिर भी उसमे पशु-वृत्तिको रोकनेकी ओर उनकी प्रवृत्ति बढती ही रहती है। जब इस तरहकी मित्रता हो, तब राजी-खुशीसे शारीरिक तृप्ति न मिले, तो भी उससे लग्न-बन्धन नही टूटता। इसमे ऊच-नीचका सवाल ही नही है। यह नही कहा जा सकता कि जो एकके लिए ठीक है, वह सबके लिए ठीक होगा ही। लेकिन मैं इतना तो जानता हूँ कि ईश्वरके भक्तके पास पशु वासनाओको तृप्त करनेका समय ही नही रहता और इसलिए इस सबंधमे उसका सारा रस मिट जाता है। यदि ब्रह्मचर्यका यही अर्थ करे, तो वह इससे ज्यादा ऊँची स्थिति है।

"विवाह होने देने या उन्हे रोकनेका सवाल मेरे या और किसीके भी हाथमे नही है। मै तो बस इतना ही कह सकता हूँ कि पसन्दगीके क्षेत्रको

सीमित रखनेमे ही समझदारी है। इसमे अपवाद इतना ही है कि दूसरी किसी तरहकी मित्रताके समान इसमे भी मर्यादा नही है। लेकिन इसमे जीवन भरमे सिर्फ एक ही मित्र हो सकता है। इसलिए यदि विवाहके क्षेत्रको मर्यादित कर दिया जाय, और वह जाने हुए क्षेत्रमे होनेपर भी बहुत ही परिचित सम्बन्धमे न किया जाय, तो यह शोध ज्यादा आसान होती है और उसमे जोखम भी कम रहता है।

"साधारण तौरसे जन धर्ममे भी आत्मघातको पाप माना जाता है। परन्तु जब मनुष्यको आत्मघात और अधोगतिके बीच चुनाव करनेका प्रसग आवे, तब यही कहा जा सकता है कि उस हालतमे उसके लिए आत्मघात ही कर्तव्य रूप है। एक उदाहरण लीजिये। किसी पुरुषमे विकार इतना बढ जाय कि वह किसी स्त्रीकी आवरू लेनेपर उतारू हो जाय और अपने-आपको रोकनेमे असमर्थ हो, लेकिन यदि उस वक्त उसमे थोडी भी बुद्धि जाग्रत हो और वह अपनी स्थूल देहका अन्त कर दे, तो वह अपने-आपको इस नरकसे बचा सकता है।

"आश्रममे उपवासका कुछ दुरुपयोग जरूर हुआ है, लेकिन उसकी छूत अधिक फैलना सम्भव नही। क्योकि उसका दुरुपयोग करना आसान नही है। भूख बडी बलवान होती है।

"यह कभी नही हो सकता कि किसी व्यक्तिमे अहिंसाका जरूरतसे ज्यादा विकास हुआ हो। लेकिन सामान्य जैनोने अनशनकी तरह ही अहिसाकी भी विडम्बना कर रखी है। साधारण जैन तो अहिसाका छिलका ही लेता है और अन्दरका गूदा छोड देता है। अहिसा यानी सब जीवोके लिए अनन्त प्रेम। और इसलिए उसमे दूसरेको बचानेके लिए अपने जीवनकी कुरबानी करनेकी सदा तैयारी रहनी चाहिए।

"मुझे आशा है कि इससे आपको शान्ति मिलेगी। लेकिन जबतक सेवाके किसी स्थायी काममे आपको पूरा सन्तोष न मिले, तबतक सच्ची शान्ति मिलना सम्भव नही।"

'हरिजन सेवक',

१२-१२-४८

: २७ :

ब्रह्मचर्य द्वारा मातृ-भावनाका साक्षात्कार

[ब्रह्मचर्य पालनेकी इच्छा रखनेवाली एक लडकीको हिन्दीमे लिखे पत्रका अंश।]

ब्रह्मचर्य पालनेमे सबसे बडी चीज मातृ-भावनाका साक्षात्कार करना है। हम सब एक पिताके लड़के-लड़कियाँ है। उनमे विवाह कैसे ? खाना केवल औषधि रूप, स्वादके लिए नही। मनको और शरीरको सेवाकार्यमे रोके रखना। सत्यनारायणका मनन करना। बाल कटानेका धर्म स्पष्ट हो जाय, तो लोकलज्जा छोडकर कटवाना। ईश्वर-भक्तिके लिए नित्य मनुष्य सेवामे लीन रहना। मनोविकार हमारे सच्चे शत्रु है, यह समझकर उनसे नित्य युद्ध करना। इसी युद्धका महाभारतमे वर्णन है।

मंडलद्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

गाधीजी लिखित

१ आत्मकथा (सपूर्ण) ५)
२. आत्मकथा (सक्षिप्त-हिन्दी) १।।)
३ आत्मकथा (सक्षिप्त-उर्दू) १।।)
४ प्रार्थना-प्रवचन (भाग १) ३)
५. प्रार्थना-प्रवचन (भाग २) २।।)
६ गीता-माता ४)
७ धर्म-नीति २)
८. पद्रह अगस्तके बाद २)
९. द० अफ्रीकाका सत्याग्रह ३।।)
१० मेरे समकालीन ५)
११ आत्मसयम
१२ अनासक्तियोग १।।)
१३ गीताबोध ।।)
१४. मगल-प्रभात ।=)
१५ सर्वोदय ।=)
१६. आश्रमवासियोसे ।=)
१७ ग्रामसेवा ।=)
१८ नीति-धर्म ।=)
१९ हिन्द-स्वराज्य ।।।)
२० राष्ट्रवाणी १)
२१. बापूकी सीख ।।)
२२. आजका विचार ।=)
२३ सत्यवीरकी कथा ।)
२४ ब्रह्मचर्य (भाग १ व २) १), ।।।)
२५. अनीतिकी राह पर १)
२६ हृदय-मथनके पाच दिन ।)
२७. गाधी-शिक्षा (३ भाग) १=)

विनोबाजी लिखित

२८ विनोबाके विचार (दो भाग) ३)
२९ गीता-प्रवचन १।।।)
३० जीवन और शिक्षण २)
३१ शान्ति-यात्रा १।।)
३२. स्थितप्रज्ञ-दर्शन १)
३३ ईशावास्यवृत्ति ।।।)
३४ ईशावास्योपनिषद् =)
३५ सर्वोदय-विचार १=)
३६ स्वराज्य-शास्त्र ।।।)
३७ भू-दान-यज्ञ ।)
३८ गाधीजीको श्रद्धाजलि ।=)
३९. राजघाटकी सनिधिमे ।।।)
४० सर्वोदयका घोषणापत्र ।)
४१ विचार-पोथी १)
४२ जमानेकी माग =)

नेहरूजी लिखित

४३ मेरी कहानी ८)
४४ हिन्दुस्तानकी समस्याएं २)
४५ लडखडाती दुनिया २)
४६ राष्ट्रपिता २)
४७ हिन्दुस्तानकी कहानी १०)
४८. राजनीतिसे दूर २।।)
४९. हमारी समस्याये (दो भाग) १)
५० विश्व-इतिहासकी झलक २१)

अन्य लेखकोंकी

५१. गांधीजीकी देन (डा० राजेद्रप्रसाद) १।।)

५२. गांधी-मार्ग
(डा० राजेंद्रप्रसाद) =)
५३. गाधीकी कहानी (लुई फिशर) ४)
५४. भारत विभाजनकी कहानी
ए० के० (जॉनसन) ४)
५५. महाभारत-कथा (राजाजी) ५)
५६. कुब्जा सुन्दरी (राजाजी) २)
५७. शिशुपालन „ ।।)
५८. कारावास-कंहानी
(सु० नैयर) १०)
५९. बापूके चरणोमे २।।)
६०. बा, बापू और भाई ।।)
६१. गाधी-विचार-दोहन १।।)
६२. अहिसाकी शक्ति १।।)
६३. सर्वोदय-तत्व-दर्शन ७)
६४. सत्याग्रह-मीमासा ३।।)
६५. बुद्धवाणी (वियोगी हरि) १)
६६. श्रद्धाकण „ १)
६७. अयोध्याकांड „ १)
६८. संत-सुधासार „ ११)
६९. प्रार्थना „ ।।)
७०. भागवत धर्म (ह०उपा०) ६।।)
७१. श्रेयार्थी जमनालालजी „ ६।।)
७२. स्वतत्रताकी ओर „ ४)
७३. बापूके आश्रममें „ १)
७४. बापू (घन० बिड़ला) २)
७५. रूप और स्वरूप „ ।।=)
७६. डायरीके पन्ने „ १)
७७. ध्रुवोपाख्यान ।)
७८. स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय) १)
७९. मेरी मुक्तिकी कहानी „ १।।)
८०. प्रेममें भगवान „ २)

८१. जीवन-साधना (टाल्स्टाय) १।)
८२. कलवारकी करतूत „ ।)
८३. बालकोका विवेक „ ।।।)
८४. हम करे क्या ? „ ३।।)
८५. हमारे जमानेकी गुलामी „ ।।।)
८६. धर्म और सदाचार „ १।)
८७. अधेरेमे उजाला „ १।।)
८८. बुराई कैसे मिटे „ १)
८९. सामाजिक कुरीतिया „ २)
९०. जीवन-सदेश (ख० जिब्रान) १)
९१. राजनीति प्रवेशिका १)
९२. लोक-जीवन ३।।)
९३. अशोकके फूल (ह० द्विवेदी) ३)
९४. कल्पवृक्ष (डा० अग्रवाल) २)
९५. पचदशी (स० यशपाल) १।।)
९६. काग्रेसका इतिहास
(३ भाग) ३०)
९७. सप्तदशी २)
९८. रीढकी हड्डी १।।)
९९. अमिट रेखाये (सत्यवती) ३)
१००. आत्मोपदेश १)
१०१. तामिल वेद (तिरुवल्लुवर) १।।)
१०२. आत्म-रहस्य (रतन० जैन) ३)
१०३. थेरी-गाथाये १।।)
१०४. बुद्ध और बौद्धसाधक १।।)
१०५. जातक-कथा (आनंद कौ०) २।।)
१०६. हमारे गावकी कहानी १।।)
१०७. रामतीर्थ-सदेश (३ भाग) १=)
१०८. रोटीका सवाल (क्रोपाट०) ३)
१०९ नवयुवकोसे दो बाते ।=)
११०. [illegible] ३।।)
१११. [illegible] २।।)

११२. मशुओका इलाज ॥)
११३. काश्मीर पर हमला २)
११४. पुरुषार्थ (डा०भगवान्‌दास) ६)
११५. कब्ज—कारण और निवारण २)
११६. भारतीय सस्कृति ३॥)
११७. मानवताके झरने १॥)
११८ आधुनिक भारत ५)
११९. साहित्य और जीवन २)
१२०. इगलैडमे गाधीजी २)
१२१. खादी द्वारा ग्राम-विकास ॥।)
१२२. ग्राम सुधार १।)
१२३. चारादाना ।)
१२४. शिष्टाचार ॥=)
१२५. राष्ट्रीयगीत ।)
१२६. मनन १।)
१२७. गाधी डायरी २)

समाज-विकास-माला

१२८ बद्रीनाथ ।=)
१२९. जगलकी सैर ।=)
१३०. भीष्म-पितामह ।=)
१३१. शिवि और दधीचि ।=)
१३२. विनोबा और भूदान ।=)
१३३. कबीरके बोल ।=)
१३४. गाधीजीका विद्यार्थी जीवन ।=)
१३५. गगाजी ।=)
१३६. गौतम बुद्ध ।=)
१३७ निषाद और शबरी ।=)
१३८. गाव सुखी, हम सुखी ।=)
१३९. कितनी जमीन ? ।=)
१४०. ऐसे थे सरदार ।=)
१४१. चैतन्य महाप्रभु ।=)
१४२ कहावतोकी कहानिया ।=)
१४३. सरल व्यायाम ।=)
१४४. द्वारका ।=)
१४५ बापूकी बाते ।=)
१४६. बाहुबली और नेमिनाथ ।=)
१४७. तन्दुरुस्ती हजार नियामत ।=)
१४८. बीमारी कैसे दूर करे ? ।=)
१४९. माटीकी मूरत जागी ।=)
१५०. गिरिधरकी कुडलियां ।=)
१५१. रहीमके दोहे ।=)
१५२. दादूकी वाणी ।=)

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१५३. कादम्बरी ।=)
१५४. उत्तररामचरित ।=)
१५५. वेणी-संहार ।=)
१५६. शकुतला ।=)
१५७. मृच्छकटिक ।=)
१५८. मुद्राराक्षस ।=)
१५९. नलोदय ।=)
१६०. नागानद ।=)
१६१. रघुवश ।=)
१६२. मालविकाग्निमित्र ।=)
१६३. स्वप्नवासवदत्ता ।=)
१६४. हर्ष-चरित ।=)
१६५. किरातार्जुनीय ।=)